प्रकाशकः—
बिक्रमसिंह
एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज
अनूपशहर

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ।।

ऋग्वेद ५ । ५१ ।१५।।

हम सूर्य और चन्द्रमा की भाति कल्याणकारी मार्ग का
अनुसरण करें जैसे सूर्य और चन्द्र का कार्य केवल दूसरो को
प्रकाश देना और जीवन देना है वैसे ही हम स्वार्थ रहित
होकर केवल परोपकार की भावना से प्रेरित होकर
लोकहित के कार्य करे । इस कल्याण-पथ पर
चलने के लिए हम दानशील,
हिंसा न करने वाले और
ज्ञानी मनुष्यो की
सङ्गति
करे ।

(छात्रों, अध्यापको तथा हितैषियो मे विना मूल्य वितरण के लिये)

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिंटर्स प्रा० लि०
दिल्ली

यह स्मृति ग्रन्थ

एषणाओ से असपृक्त रहकर जीवन क्षेत्र मे कर्म-रत रहना महापुरुषो का लक्षण है । आशा का पाश तोड़ना सरल नही । बड़े-बड़े वीतराग भी मुक्ति एषणा के पाश मे बन्धे रते है । गृहस्थ के लिए माया-बन्धन से मुक्त रहकर सामाजिक सेवा कर सकना एक तपस्या ही है और यह तपस्या तपोबनो की तपस्या से भी अधिक महत्वपूर्ण है । जीवन के विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त किये व्यक्तियो की अनुभूतियां विश्वविद्यालयो की अनुभूतियो से कही अधिक श्रेयस्कर और स्थायी होती हैं । हिन्दी मे एक कहावत है 'मगनो भलो न बाप सो जो विधि राखे टेक', ऐसी टेक का निभा सकना कोई आसान बात नही । इस स्मृति ग्रथ के महान् चरित्रनायक महाशय दुर्गा प्रसाद जी उन प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे से है जो जीवन के सुखो की परवाह न कर, अपनी पैतृक सम्पत्ति के मोह को त्याग कर अपनी तपस्या मे लगे रहे । उन्होने अपनी शान और अपने आत्माभिमान को पिता के सामने भी झुकने नही दिया परन्तु अपनी आन की दृढतापूर्वक रक्षा करते हुए भी वे पूर्णत पितृ-भक्त थे और उनकी आज्ञाओ को एक योग्य पुत्र की भाति शिरोधार्य करते रहे । यह एक विचित्र प्रकार का विरोधाभास है ।

दानो मे सर्वश्रेष्ठ विद्या दान है । महाशय जी ने तन मन और धन से विद्या दान का कार्य पूरा किया । वे इसके लिए ही जीते रहे और अन्तिम क्षण तक उनकी यही स्पृहा रही कि वे अपने पिता द्वारा स्थापित सस्था को पूर्ण रूप से फलते फूलते देखकर अन्तिम सास लें । जिस प्रकार एक योगी के सम्मुख केवल मुक्ति-अर्जन ही चरम लक्ष्य होता हैं, उसी प्रकार एक उच्च समाज सेवी के सम्मुख समाज का सुख, समाज की उन्नति मे योग दान करना परम ध्येय होता है । उसके लिए परिवार का सुख-दुख व्यक्ति का लाभ कोई महत्व नही रखता । महाशय दुर्गाप्रसाद जी इसी प्रकार के समाज सेवी थे ।

उच्चतर या माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति स्वाध्याय से कितनी बहुमुखी प्रतिभा अर्जित कर सकता है इसके वे मूर्त रूप थे । जहां वे अग्रेजी, गणित आदि के उच्च श्रेणी के अध्यापक थे, वही उन्होंने हिन्दी व्याकरण की भी रचना की थी । जहाँ वे अधिकार के साथ हिन्दी भाषा मे अपनी मनोभावना व्यक्त कर लेते थे, वही अग्रेजी भाषा पर भी उनका विशिष्ट अधिकार था । वे बडे ही सहज रूप मे अंग्रेजी मे उच्च कोटि के निबन्ध लिखते थे । भाषा की प्रौढता और उपयुक्त शब्दो का चयन

देखकर आश्चर्य होता है। उन्हें स्वाध्याय की अभूतपूर्व लगन थी और इसी का परिणाम था कि उन्होने अपने अध्यवसाय और परिश्रम से अंग्रेजी का उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अंग्रेजी का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेने के बावजूद वे विचारो मे पूर्णत भारतीय थे और शिक्षा का भारतीय सस्कृति के अनुरूप ही पुनस्सघटन चाहते थे। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार इसके द्योतक हैं।

वे आर्यसमाजी होने हुए भी उदार थे। सम्प्रदायवाद से उनका कोई सम्बन्ध न था। वे सम्प्रदाय की अपेक्षा मानवतावाद के पोषक थे और सर्वधर्म-समन्वय की भावना मे विश्वास रखते थे। किसी भी सस्था का व्यवस्थापक और ऐसा व्यवस्थापक होना कि सबको प्रसन्न रख सके कठिन होता है। अध्यापको की स्थिति का उन्हें सदा ध्यान रहता था। इसी का प्रभाव था कि वे निश्चित तिथि पर अध्यापको का वेतन वितरित कर दिया करते थे। सस्था के हित की दृष्टि मे छोटे से छोटे काम को करने के लिए उद्यत रहते थे। ऐसा लगता है कि महाशय जी यदि वकील हुए होते तो उन्होने बड़ा यश कमाया होता। नियम और विधानो की उनकी पकड, उनका अपने प्रकार का भाष्य लोगो को चकित कर देते थे।

महाशय जी की सस्था ने केवल अनूपशहर की ही सेवा नही की है। उस सस्था के विद्यार्थी आज राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हो चुके हैं और उनकी महान राष्ट्रीय सेवाओ पर देश को गर्व हो सकता है। जहाँ उस सस्था से उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, अध्यापक निकले है वहाँ उस सस्था ने देश के मूर्धन्य आ-लोचक, लेखक और कवियो का भी सर्जन किया है। इन सभी पर महाशय जी के व्यक्तित्व, उनके उज्ज्वल चरित्र तथा निस्पृह सेवा की छाप पड़ी है। जहाँ वे अनूप-शहर मे प्रकाशस्तभ के समान ज्योतित थे, वही कस्तूरी की सुगन्धि के समान उनका यश का सौरभ सम्पूर्ण देश मे व्याप्त हो चुका था। अनेक शिक्षा शास्त्रियो ने, अनेक राजनीतिज्ञो ने मुक्तकठ से उनके गम्भीर ज्ञान का और उनकी अप्रतिम प्रतिभा का गुण-गान किया है।

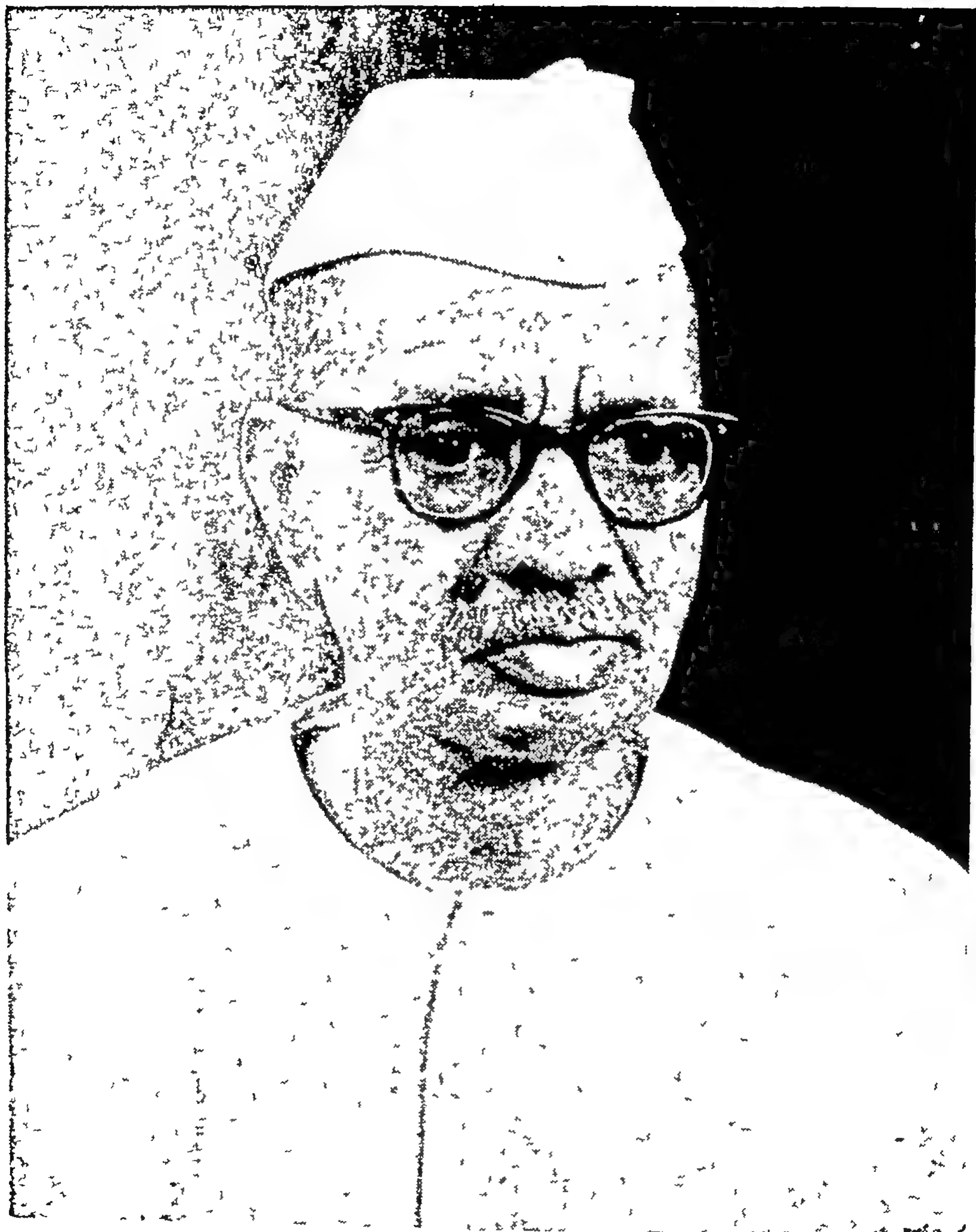
महाशय जी की कीर्ति का गुण गान तो उनके द्वारा स्थापित सस्थाएं ही कर रही है। वे ही उनकी अमर कीर्ति की प्रतीक है। इस के द्वारा तो हम उनके प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त कर रहे हैं। इस स्मृति ग्रथ के द्वारा महाशय जी नही अपितु हम गौरवान्वित हुए है। एक प्रकार से हमारा अपने पित और गुरु ऋण से उऋण होने का यह प्रयास मात्र है।

सम्पादक मडल उन सभी महानुभावो का कृतज्ञ है जिन्होंने कृपा कर इस स्मृति ग्रथ के लिये लेख या श्रद्धांजलि भेजी हैं। हम हृदय से उनके प्रति आभार

प्रकट करते हैं। हमें आशा है कि महाशय दुर्गाप्रसाद जी की महान् सेवाओं तथा उनके द्वारा स्थापित अनेक संस्थाओ का इसके द्वारा लोगो को परिचय प्राप्त होगा। हमे सतोष है कि अनेक विघ्न और बाधाओ पर विजय प्राप्त कर हम इस स्मृति ग्रथ के प्रकाशन का कार्य पूरा कर सके हैं । अन्त मे उस महान् आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हम ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी आत्मा को चिर शाति और भारत के युवको को उनके उज्वल चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करे।

१५ फरवरी, १९६३ — सम्पादक मण्डल

अनुक्रमणिका



श्रद्धेय स्वर्गीय बाबू दुर्गा प्रसाद जी

जीवन और व्यक्तित्व

डा० ओम्प्रकाश, एम० ए०, पी एच० डी०

हमारे पूर्वज अनूपशहर के रहने वाले थे। मेरे दादा स्व० लक्ष्मण प्रसाद जी नार्थ वैस्टर्न रेलवे मे वडे मालवाबू थे। उन्हे रेलवे की नौकरी के कारण अधिकतर पजाव के रावलपिण्डी आदि नगरो मे रहना पडा। मेरी दादी श्रीमती हरिदेवी जी खुर्जे के एक उच्च घराने की कन्या थी। मेरे पूज्य पिता स्व० दुर्गाप्रसाद जी के वडे भाई श्री भगवत् प्रसाद जी का स्वर्गवास हमारे दादा जी के जीवन-काल में ही हो गया था। मेरे पिता जी की एकमात्र वहन श्रीमती भगवती देवी जी थीं, जिनका विवाह हापुड निवासी श्री विश्वेश्वर दयाल जी कोठी वालो के साथ हुआ था।

बाल्य काल--पूज्य पिता जी का जन्म सन् १८९३ ई० मे खुर्जा मे हुआ। उनका वाल्यकाल पजाव मे वीता। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें खुर्जे के हाईस्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। वही से उन्होने सन् १९१० ई० मे हाई स्कूल परीक्षा पास की। उसके पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह आगरा कालिज मे प्रविष्ट हुए, परन्तु वहाँ इण्टरमीडियेट तक ही अध्ययन चल सका।

गार्हस्थ्य जीवन—हाई स्कूल परीक्षा पास करते ही इनका विवाह वुलन्दशहर निवासी बा० किशोरीलाल की सुपुत्री श्रीमती लीलावती जी से हो गया, और इनकी शिक्षा वीच ही मे समाप्त हो गई। उसी समय पिताजी का दादा जी से किसी वात पर मत-भेद हो गया। फलत पिता जी, माता जी व हमारी वडी वहन शान्ता को साथ लेकर देहरादून चले गये। वहाँ डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल श्री लक्ष्मणप्रसाद जी ने इन्हे कालिज मे रख लिया।

कुछ दिनो के बाद पिता जी के वडे भाई भगवत् प्रसाद जी का अकस्मान् स्वर्गवास हो गया। उस समय मेरे दादा जी खुर्जे में रहते थे। उन्हें वडे पुत्र की मृत्यु का वडा आघात पहुँचा, और फिर वह अधिक देर न जी सके। इसी समय दादा जी ने हमारे पिता जी को भी देहरादून से अपने पास बुला लिया।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व दादा जी ने पिता जी से पूछा कि कितनी सम्पत्ति उनके नाम कर दी जाय। इस पर पिता जी ने कहा कि मुझे कुछ नही चाहिए, आप जैसे चाहे सम्पत्ति का वटवारा करे। दादा जी ने अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग हमारी दादी श्रीमती हरिदेवी जी को, कुछ हमारी विधवा ताई श्रीमती मथुरी देवी जी को तथा कुछ भाग हमारे पिता जी को देकर शेष ६२५००) की वडी राशि से अनूपशहर में एक हाई स्कूल की स्थापना की।

दादा जी का देहान्त हो जाने के पश्चात् पिता जी को उस नये हाई स्कूल का प्रबध अपने हाथ मे लेना पडा। डी० ए० वी० कालिज, देहरादून के प्रिंसिपल श्री लक्ष्मणप्रसाद जी का अमूल्य दिग्दर्शन प्राप्त कर इस प्रबध कार्य को वह मरणपर्यंत बरावर चलाते रहे। उनके अथक प्रयत्न और नि.स्वार्थ-सेवा के फलस्वरूप आज वही स्कूल 'लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द एग्लो वैदिक कालिज' बन गया है। हजारो विद्यार्थी वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, तथा कर रहे हैं। परोपकार की इस कर्तव्यपरायणता के कारण उन्होने अपने जीविकोपार्जन की भी कभी चिन्ता नही की।

अपने पिता जी के सब मिला कर हम सात भाई-बहन जीवित रहे, चार बहनें (सर्वश्री शान्तादेवी, मनोरमा देवी, कान्ता देवी तथा प्रेम ज्योति) तथा तीन भाई (स्वय लेखक, श्री सत्यप्रकाश मिलिंद व श्री बुद्धिप्रकाश)। आज बहिनो मे केवल कान्ता और प्रेमज्योति ही जीवित है। और हमारे सबसे बडे बहनोई साहू कृष्णकुमार जी, कान्ता बहिन के पति श्री महावीरप्रसाद जी तथा प्रेमज्योति के पति श्री कान्ति चन्द्र सेन हैं।

मृत्यु—मेरे पिता जी को हर्निया तथा मूत्रकृच्छ्रता का रोग था। वे यथाशक्ति सावधानी बरतते थे, फिर भी कभी न कभी रोग उग्ररूप धारण कर लेता था। परन्तु एक विशेष लेप का प्रयोग करने से वे ठीक हो जाते थे। जून १९६१ में उन्हें प्रोस्टेट का प्रकोप हुआ। स्थानीय अस्पताल में चिकित्सा न होने पर बुलन्दशहर के सिविलसर्जन उन्हे बुलन्दशहर ले गये। परन्तु रोग की भीषणता का अनुमान कर उसी रात को उन्हे दिल्ली लाया गया। दिल्ली मे डाक्टर के० सी० महाजन के नर्सिंग होम में उनके प्रोस्टेट ग्लैंड्स का आपरेशन हुआ, परन्तु अवरुद्ध मूत्र के विष का दुष्प्रभाव इतना भयकर साबित हुआ कि वह फिर स्वास्थ्य-लाभ न कर सके। ७ जुलाई १९६१ ई० को वह सदा के लिए चिर-निद्रा में विलीन हो गए।

जीवन का ध्येय—पूज्य पिता जी ने मेरे दादा बा० लक्ष्मणप्रसाद जी की मृत्यु के पश्चात् सन् १९१५ ई० मे एक ही व्रत लिया था। वह था अपने तन, मन, धन से अनूपशहर में शिक्षा का प्रसार करना। इस कार्य को पूरा करने के लिए उनके मार्ग में भी अनेक कठिनाइयाँ आईं, परन्तु वे उन कठिनाइयो से घबराये नही, बल्कि साहस व दृढता के साथ उनका सामना किया। इस सबध में मुझे एक घटना अभी तक याद है। मेरे मामा जी क्षयरोग से पीडित थे, उनकी दशा अत्यत चिंताजनक थी। मेरी पूज्य माता जी ने आग्रह किया कि पिता जी भी उन्हें देखने बुलन्दशहर चलें, किन्तु पिता जी ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि कालिज मे कुछ नये अध्यापको की नियुक्ति का प्रश्न विचाराधीन है, अत मैं इच्छा होते हुए भी इस समय नही जा सकता, विवश हूँ।

जीवन भर उन्हे एक ही लगन रही, कालिज का हितचिन्तन। रात को यदि तीन बजे आँख खुल गई तो कालिज की किसी समस्या को हल करने में लगे है या अगले वर्ष का कार्यक्रम बनाने मे।

स्त्रियो की शिक्षा के लिए भी वह सदैव इसी प्रकार चिन्तित रहते थे। उन्होंने अपने मित्र महाशय रामस्वरूप जी को प्रेरणा दी जिससे कि अनूपशहर में एक आर्य कन्या पाठशाला की भी शीघ्र ही स्थापना हो गई। आरम्भ मे इस पाठशाला का प्रवध भी अनेक वर्षों तक पिता जी के हाथ में ही रहा। वाद मे जव प्रवन्ध कुछ अन्य व्यक्तियो के हाथ में चला गया तो पाठशाला की दशा शोचनीय हो गई। पिता जी को इससे बडा दुख हुआ, उन्होंने तुरन्त ही अपने रिश्ते के एक भाई श्री गोविन्दराम जी को प्रेरणा देकर एक और कन्या वैदिक विद्यालय स्थापित कराया, जिसमें आज भी सैंकड़ो कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

मृत्युशय्या पर पड़े हुए भी उन्हें इन दोनो सस्थाओ की ही चिन्ता लगी रहती थी। पूर्ण सज्ञा न होने पर अर्ध-मूर्छितावस्था में भी उनके मुँह से यही शब्द निकलते थे, "कालिज का काम भी अधूरा रह गया, मेरी (गोविन्दराम कन्या विद्यालय की) Inter-recognition की अर्जी का क्या हुआ।"

योग्य अध्यापक तथा व्यवस्थापक—पिता जी को अध्यापनकार्य में रुचि थी। वे अनेक वर्षों तक अनूपशहर के इस कालिज में अँग्रेजी व गणित पढाते रहे। इस सस्था के प्रारम्भिक वर्षों में तो वे स्वय विद्यार्थियो को हाई स्कूल की परीक्षा के लिए तैयार करते थे। पढाने की शैली इतनी अच्छी थी कि श्रेणी में विद्यार्थी दत्तचित्त हो शान्ति से उनकी वात सुनते थे। उनकी अध्यापन शैली से मुग्ध होकर एक बार एक ज़िला-विद्यालय-निरीक्षक ने उनसे पूछा कि क्या आपने वी० ए०, एल० एल० वी० पास किया है? अध्यापनकला में दक्ष होना तो उनकी रुचि तथा अध्यवसाय का फल था, वैसे शिक्षा तो उन्होंने केवल इण्टरमीडियेट तक ही प्राप्त की थी।

एक वार उनकी आँखो में मोतियाबिन्द उतर आया, अत अधिक देर तक अध्यापन कार्य न चल सका, तो भी वे नवी व दसवी कक्षाओ को तो प्रति सप्ताह एक दिन नैतिक शिक्षा का पाठ पढाया ही करते थे। सव धर्मों के समन्वय में उनकी विशेष आस्था थी, विभिन्न मतमतान्तरो की साप्रदायिक शिक्षा की अपेक्षा वह मानवता के मूल सिद्धान्तो की शिक्षा में अधिक विश्वास रखते थे। विद्यार्थियो को वहुधा इस विषय में डा० भगवानदास की पुस्तक *'Essential Unity of All Religions'* के उद्धरण पढ कर सुनाया करते थे।

व्यवस्थापक इतने कुशल थे, कि छोटी-से-छोटी त्रुटि को भाँप लेते थे, पाई-पाई का हिसाव मिला लेते थे। इस कालिज की आर्थिक दशा कभी भी वहुत अच्छी नहीं रही, परन्तु फिर भी वह अध्यापको का वेतन प्रतिमास निश्चित तिथि पर वटवा ही देते थे। वे कहा करते थे कि हम तो लगोटी में फाग खेलते है, दूसरी सस्थाओ से हमारा क्या मुकावला? इतना होते हुए भी कभी कोई ऐसा शुल्क विद्यार्थियो से नहीं लिया जो सरकार द्वारा स्वीकृत न हो, न कभी अध्यापको को नियत वेतन से कम वेतन दिया गया।

शिक्षा-विभाग सबधी प्राय सभी नियमो को भली-भाँति जानते थे। शिक्षा अधिकारी भी उनकी इस योग्यता से प्रभावित थे। कई बार जिले के विद्यालय निरीक्षक कई पेचीदा मामलो मे अन्य बहुत से व्यक्तियो को पिता जी के पास सलाह लेने के लिए भेजते थे। एक बार हिसाब की जाँच-पडताल करने वाले एक अधिकारी किसी एक बात को बतला न सके। पिता जी ने तुरन्त उस विषय पर निकला सरकारी प्रपत्र निकाल कर उनके सामने रख दिया। वे सज्जन उनकी इस तत्परता से अत्यन्त विस्मित हुए। इलाहाबाद जाकर उन्होने शिक्षा निदेशक के कार्यालय मे उस प्रपत्र की खोज की, परन्तु मिल न सका। तब उन्होने पिता जी से उस प्रपत्र की प्रतिलिपि मगाई।

अग्रेजी मे मसस्विदा तैयार करने में भी बडे कुशल थे। जब कभी किसी विषय में सरकार पर विशेष प्रभाव डालना होता था, तो अनूपशहर की जनता सदैव इन्ही से मसस्विदा तैयार करने का आग्रह करती थी।

निस्स्वार्थ सेवा—पिता जी ने शिक्षा के क्षेत्र मे ही नही अपितु अनूपशहर की जनता की भलाई के सभी कार्यों मे पूरा योग दिया, और वह भी बिना किसी स्वार्थ या लोभ के। वे अनेक वर्षो तक अनूपशहर की नगर पालिका के अध्यक्ष रहे तथा समाज सुधार के अनेक कार्य उनके द्वारा सपन्न हुए।

शिक्षा के क्षेत्र में तो इन्होने मरणपर्यंत एक मिशनरी की भाँति कार्य किया। विद्यालय में दो घटियाँ पढाने के कारण सरकार से ७२०) वार्षिक का अनुदान इन्हे मिलता था परन्तु अपनी उदार वृत्ति के कारण वह रुपया भी यह स्वय न लेकर स्कूल के हिसाब मे ही जमा कर दिया करते थे।

'पूज्य पिता जी जन्म भर अनूपशहर जनता की निस्स्वार्थ सेवा करते रहे' यह बात प्राय किसी से छिपी नही थी। सन् १९५३ ई० में उत्तरप्रदेश के वर्तमान मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु जी गुप्त अनूपशहर पधारे थे। स्थानीय शिक्षा सस्थाओ को देख कर उन्होने पूज्य पिता जी के विषय में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये—

"Such a person who has devoted his life to self-less, silent and solid constructive work deserves public esteem"

निर्धन छात्रो को विद्यालय के शुल्क से मुक्त कर शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें आवश्यक सुविधाएँ ही न देते थे, बल्कि योग्य छात्रो को छात्रवृत्तियाँ भी देकर प्रोत्साहित करते थे।

संस्थाओं की चिन्ता—पूज्य पिता जी का सारा जीवन इन शिक्षा संस्थाओ की प्रगति के चिन्तन मे बीता। फरवरी १९५७ मे उन्होने मुझे लिखा था —

"सो दोनो[१] सस्थाएँ सुदृढ हो जाएगी। मेरे जीवन का गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना का द्वितीय स्वप्न भी सफलीभूत होता दिखाई देता है। यह सब प्रिंसिपल[२] साहब

---

१ लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द एग्लो वैदिक कालिज, तथा गोविन्दराम कन्या वैदिक विद्यालय।
२ श्री विक्रमसिह जी।

व गर्ग* के उत्साह का परिणाम होगा। हाँ, उसमें चिपटना तो होगा ही। सो इस शरीर का और होना ही क्या है ? क्या ही अच्छा हो जो इन सस्थाओं की सेवा करते हुए ही दम निकले और शहर की शिक्षा सबधी दोनो आवश्यकताएँ मेरे सामने ही पूरी हो जाय।"

परिस्थिति वश हम तीनो भाइयो को अपनी जीविकोपार्जन के लिए दिल्ली ही रहना पडा—अत. पास रहकर उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त न कर सके। जून १९६१ में मैंने पिता जी को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिए लिखा, उन्होंने उत्तर मे मुझे लिखा—

"Don't you worry. I am taking every possible precaution God will pull me through to see the end of the construction work for which I have so long been panting. A month may bring the end in view"

किसी को क्या पता था कि वे अपनी इस दौड-धूप का फल स्वय न देख सकेंगे और मृत्युशय्या पर पडे उनके अन्तिम शब्द "कालिज का काम भी अधूरा ही रह गया" सत्य प्रमाणित होगे तथा एक महीने से पहले ही (७ जूलाई, १९६१) भगवान् पूज्य पिता जी को इस ससार से उठाकर हमें सदा के लिए उनकी अमूल्य छत्रछाया से वचित कर देंगे।

पूज्य पिता जी की उत्कट इच्छा थी कि मैं भी उन्ही की भाँति अनूपशहर कालिज की सेवा करूँ। इसी उद्देश्य से प्रेरित हो मैं सन् १९४७ ई० मे नौकरी छोड कर दिल्ली से अनूपशहर गया। वहाँ कालिज और रामस्वरूप आर्य कन्या-पाठशाला की भरसक सेवा की। परन्तु अपनी पत्नी की अस्वस्थता के कारण मुझे सन् १९५२ में फिर दिल्ली आना पडा। इसके एक वर्ष वाद पूज्य पिता जी ने मुझे फिर लिखा—

"मेरा ६० वाँ वर्ष पूरा होने में लगभग २० दिन शेष है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इसके पश्चात् तुम कार्यभार सभालो, परन्तु जब तक तुम वहाँ से सपरिवार न लौट आओ, यह कल्पनामात्र है। हाँ, यदि राजकीय पद की छाँट मे आ जाओ तो यहाँ आने का प्रश्न ही नही उठता क्योकि उसे त्यागना ठीक नही होगा। इसके अतिरिक्त और किसी भी दशा में तुम्हारा अन्यत्र रहना ठीक नही है। इस लिए नही कि मैं नितान्त अकेला नही रह सकता जैसे कि अब रह रहा हूँ, बल्कि सस्था के हित मे यह अत्यावश्यक जान पडता है।"

सस्था का कार्य उनकी मृत्यु के वाद भी ठीक तरह से चलता रहे इसे ध्यान में रख कर अप्रैल १९५४ में उन्होने मुझे फिर लिखा—

"सो वेटा, मेरा स्वास्थ्य न जाने क्यो गिर रहा बताते है। अब मैं किसी कार्य के योग्य नही रहा। यदि तुम सहमत हो तो इसी मीटिंग मे तुम्हें मैनेजर निर्वाचित

*श्री भगवतीप्रसाद जी गर्ग।

कर लें, आगे ईश्वर-इच्छा ।"

ईश्वर से आस्था—पूज्य पिता जी की ईश्वर में प्रगाढ आस्था थी । वह सच्चे आस्तिक थे । अनायास ही किसी कार्य में सफलता के दर्शन करना तथा घोर प्रयत्न करने पर भी किसी सामान्य कार्य में ही असफलता के दर्शन को वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर की लीला का चमत्कार कहते थे ।

जूलाई, १९५६ ई० में एक अवाछनीय व्यक्ति की नियुक्ति न करने मे ईश्वर का हाथ समझकर उन्होने लिखा था—

"All what God does is always in our good, though in our ignorance we may not realise this truth."

जून १९५५ ई० मे पूर्ण चिकित्सा कराने पर भी मेरी बडी बहन शान्तादेवी का स्वर्गवास हो गया । उस समय बरेली के डाक्टर पैरल के अथक परिश्रम के लिए पिता जी ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की । तब डाक्टर महोदय ने कहा —

"But in front of God we are infinitely small beings and cannot go against His wish, however much we may try."

इन शब्दो को ध्यान में रख कर पिता जी ने लिखा था—"वे वस्तुत: देवता-स्वरूप हैं ।" एक उच्च कोटि का सर्जन होते हुए भी उनकी आस्तिकता उच्चतम है । पादरी होने के नाते प्रति दिन सारे गभीर रोगियो के लिए अस्पताल के गिर्जाघर में वे अलग-अलग प्रार्थना करते है । मुझ से एक बार उन्होने कहा—

"Medical science is finished in her case. We are praying , you also pray for her."

अप्रैल १९५९ में पिताजी अपनी एक पोती श्रीमती द्रौपदी देवी को बी० ए० प्रथम वर्ष की परीक्षा दिलाने अलीगढ गए । वहाँ उन्होने दो दिन की तैयारी में ही राजनीति का प्रश्न-पत्र बहुत अच्छा कर दिया । तब पिता जी ने लिखा—

"प्रभु की माया अपार है । यदि केवल मुझ जैसे अनभिज्ञ गाइड द्वारा दो दिन के अध्ययन से सफलता हो जाती है तो सिवाय भगवान् की विशेष कृपा और अनुग्रह के क्या समझा जाय । सो यह Mission भी पूरा ही हुआ दीखता है प्रभु की कृपा से ।"

कर्त्तव्य परायणता—मई १९५७ में सेंट जास कालिज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री टण्डन अनूपशहर पधारे । अनूपशहर कालिज को देख कर उन्होने कहा—

"You are doing a sin if you are not letting the institution develop further, moreover, with such labs and buildings in general if you are not spreading science studies you are doing a national disservice, in the stage of country's industrial development."

पूज्य पिता जी सस्था की तथा अनूपशहर की आर्थिक स्थिति को देखते ; ए अनूपशहर कालिज को डिग्री कालिज वनाना सम्भव नही समझते थे, किंतु श्री टण्डन के प्रोत्साहन देने पर वडे उत्साह से इस कार्य में लग गये । उन्होने मुझे लिखा—

"I have no charm of life left for me. Perhaps it may be for any such purpose that I am pulling on. Ways of Destiny are strange and no one can look into them."

जून १९५७ मे मैंने लिखा था कि आपको अपने स्वास्थ्य का अब अधिक ध्यान रखना चाहिए। उत्तर में उन्होने मुझे लिखा—

"As for my health, I myself feel, it is on the wane but that is only natural. Nature must have its course As desired I will take the necessary precaution Rest is all in the hands of God on whom I have cast all my burdens for my deliverance I am trying to ease the situation with regard to the Girls' School as well. Let us see what comes out Any way I am prepared to lay down my life for the cause To die in harness is an unbounded joy for a man of action"

जनवरी १९६१ की बात है। जबर्दस्त ठड पड रही थी। पिता जी का स्वास्थ्य भी ठीक नही था। फिर भी उन्हें श्री भगवती प्रसाद गर्ग के साथ इलाहाबाद जाना पडा। उन्होने मुझे लिखा—

"It is bitter cold this time, but duty is duty and must be performed at all perils"

मई १९६१ में उन्होने फिर इसी विषय में लिखा--

"It is no joke to stay on in such a crisis but my sense of duty towards the institution and the fear of future mishap, in case I quit the place, keep me bound to the post in spite of a strong craving to see children."

दृढता--सन् १९३२-३३ की बात है। बुलन्दशहर के तत्कालीन जिला मैजिस्ट्रेट चाहते थे कि एक गली में बनी दीवार गिरवा कर उसे सार्वजनिक मार्ग बना दिया जाय। किन्तु पूज्य पिता जी को मालूम था कि वह एक निजी गली है, अत उन्होने किसी की निजी दीवार गिरवाने के अनुचित कार्य को करने की अपेक्षा नगर पालिका के अध्यक्षपद से त्यागपत्र देना अच्छा समझा।

सन् १९५३ ई० मे कालिज का हिसाब जाँचने वालो ने अध्यापको को दी गई विशेष वेतन वृद्धि और क्लर्क को दिये गये अवकाश पर आपत्ति की। पूज्य पिता जी जो न्यायोचित समझते थे, उसी पर डटे रहे और वही उत्तर लिख कर आडीटर महोदय को दे दिया। इस उत्तर को पढ कर वे भी उनकी दृढता से प्रभावित हुए। पिता जी ने मुझे लिखा—

"On the receipt of the reply he is said to have remarked to the clerk 'your manager seems to be a strong man' Possibly he was impressed by the draft of the replies particularly regarding special increments and the Head clerk's leave affair in which I differed with his view"

सन् १९६१ के जून की बात है, अनूपशहर नगर पालिका के अधिकारी गोविन्दराम वैदिक कन्या विद्यालय को छात्राओ की सख्याओ के अनुपात से अनुदान देने के पक्ष में नही थे। तब पूज्य पिता जी ने कहा कि अभी तो मेरे पास दो अस्त्र है, "प्रथम तो मै इस विषय में शिक्षा-विभाग को पूरा विवरण भेजूगा। आशा है मेरी न्यायोचित माग अवश्य पूरी होगी। हॉ, दूसरी बात यह है कि यदि आवश्यकता हुई तो मै आमरण अनशन करने के लिए भी उद्यत हूँ"। साधारण अवस्थाओ मे पिता जी इस प्रकार आमरण अनशन को बहुत बुरा समझते थे। अत मै उनके इन शब्दो को सुन कर अवाक् रह गया। "वे अपने मिशन की पूर्ति के लिए इतने दृढ है कि अपने प्राणो की आहुति भी देने को तत्पर है" यह उसी दिन भान हुआ।

जीवन मे अनासक्ति—जनवरी सन् १९५८ में मैने उनसे आग्रह किया कि गिरते हुए स्वास्थ्य को ध्यान मे रख कर अब आप अकेले न रहें। यहॉ दिल्ली मे ही हम तीनो भाइयो मे से जिसके साथ चाहे रहे। इसके उत्तर मे उन्होने लिखा—

"There are moments in life when one feels pangs of loneliness even though he be a recluse. They are, no doubt, his weaker moments, but it does not mean that he should succumb to them and upset his destined goal ordained by the Rishis and Shastras Renunciation and detachment are to be his goal as a necessary preparation I know how it pinches me to depart from children while coming here It was for this very reason that I didn't go to see my dear ones before leaving back for Anupshahr this time much as the chain of your filial love and devotion may pull hard, the fact remains that I may probably die a recluse's death At least that is a craving within me Rest or family comfort has never been my lot, nor is it likely to be Arrange for your quarters and I may stay with you to help the children a bit. Duty alone and not lust of comfort can bind"

सितम्बर १९५७ में उन्होने मुझे फिर लिखा था—

"It is all in the hands of God. I am pleased with my lot, though at times I feel disappointed and dissipated but on the whole there is no worry. God is giving me strength to face the ordeal Sri S. L. N. Gupta has sympathised with me about my health.

I have written to him not to worry about my health. If God wishes to take more work from me, He would spare me as long as He thinks I am needed, otherwise no harm, I am already 64 The warrant may come any time"

अपने सुख की इच्छा नहीं—सन् १९३३ का जूलाई मास था। कुछ दिन

बीमार रहने के पश्चात् मेरी माता स्वर्ग सिधार गईं। उस समय पिता जी की आयु चालीस वर्ष से भी कम थी। इष्ट मित्रो ने दूसरा विवाह करने का काफी आग्रह किया, किन्तु पिता जी अपने सुख के लिए हम भाई-बहनो के भावी जीवन को अधकारमय बनाना नही चाहते थे। उन्होने ऐसे सभी प्रस्तावो को ठुकरा दिया।

सन् १९४० ई० में मै एम० ए० की परीक्षा दे रहा था। मेरे विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आये। किन्तु पिता जी ने उन सभी को अस्वीकार कर दिया। फरवरी १९४० मे उन्होने मुझे लिखा——

"I would be the last man to deter you from a noble path for my selfish motives I may tell you frankly, I have no schemes of self-aggrandisement nor any dreams of a happy worldly life even through my sons. My only concern is that they be fit to fight the battle of life As for personal desires I have only one craving *viz* that of emancipation from the present environments and leading a free life of study, devotion, meditation and gradual solitude Even that I leave to God, for it is He who disposes all blisses

You know my views about matrimony I put finishing education as the necessary and earliest stage Establishment in life is the next and better stage Choice of a life companion necessitates agreement of views and ways of life in which 'Sacrifice' should have the first place in our case It is, therefore, to be quite an unworldly quest of ideals"

निष्पक्षता—सन् १९५३ के सितम्बर में उत्तर प्रदेश सरकार के कोई विशिष्ट अधिकारी अनूपशहर पधारे। उन्होने अनूपशहर नगर पालिका के अधिकारियो से गुप्त रूप से पता लगाया कि क्या नगर मे कोई निष्पक्ष व्यक्ति भी है। पिता जी का नाम लिये जाने पर उस विशिष्ट अधिकारी ने कहा बताते हैं, कि यह नाम मुझे डिबाई में भी बतलाया गया था। आप लोगो के द्वारा इस बात की पुष्टि होने से मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया। यह थी उनकी निष्पक्षता की ख्याति।

धैर्य—सन् १९५२ में मेरे अनूपशहर से चले आने पर घर का तथा सस्थाओ का सारा कार्य-भार पिता जी के कन्धो पर आ पडा। परन्तु वे घबराये नही, अपितु कठिनाइयो से वीरता पूर्वक जूझते रहे। सन् १९५६ में उन्होने मुझे फिर लिखा—

"Re my fate you need not worry In the words of Prisoner of Chillon, we are what long communion tends to make us I and my chains grew friends I have so long been accustomed to that sort of life that the sting is gone for me rather I don't mind it at all Despite its handicaps it has come to have a sort of charm for me though sometimes the Shylockic ways or chains do bite but it

passes off soon. Besides all that the force of duty binds me to the place, neither the 'मोह' of relationship nor of the building--though a stranger in my own house by the force of circumstances in the words of Enoch."

साहित्य प्रेम--पूज्य पिता जी को अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखको के ग्रन्थ पढने मे विशेष आनन्द आता था। अप्रैल १९५८ में उन्होने मुझे लिखा था--

"मैं आजकल बडी बहन जी प्रिंसिपल शर्मा को Milton's *Paradise Lost* का अध्ययन करा रहा हू। उस महाकाव्य में उस Master mind के Master piece का रस आ रहा है।"

मार्च १९६० में उन्होने मेरे पुत्र अनिल को लिखा था--

"Dear child, if I live till you be fit to comprehend the meaning of Bacon and Milton I shall teach you what words of wisdom these luminaries have said for the good of the posterity. There is excellence both literary as well as moral or spiritual in them. I only wish and pray 'you inherit love of knowledge or wisdom and value its acquisition above all, but as already written essence of knowledge, all wisdom is culture or mannerliness or righteousness"

स्वाभिमान और मितव्ययता--पहले बताया जा चुका है कि सन् १९१४ ई० में पूज्य पिता जी, दादा जी से किसी बात पर मत-भेद हो जाने पर देहरादून चले गये थे। वहाँ कुछ महीनो तक केवल ३०) मासिक पर अध्यापन कार्य किया। और इसी थोडी सी राशि में बडी प्रसन्नतापूर्वक अपना निर्वाह किया। स्वाभिमान के कारण दादा जी से कुछ नही मागा।

अपना जीवन यही से उन्होने इतना मितव्ययी बना लिया कि जो कुछ थोडी बहुत आय उन्हें अपनी पैतृक धन-राशि से हुई, उसी मे प्रसन्नता पूर्वक सादगी और मितव्ययता से जीवन-यापन किया। उनका जीवन तपस्वियो का जीवन था।

शिक्षा-प्रसार के महान् उद्देश्य की पूर्ति में ही उनका सारा समय बीतता था। वे जीविकोपार्जन के लिए भी अपना समय न निकाल सके, फलत उन्होंने जीविकोपार्जन का कोई प्रयत्न ही नही किया। वे अपनी पैतृक सपत्ति की मामूली सी आय पर ही सतुष्ट रहे।

पवित्र आत्मा--उनकी आत्मा वस्तुत. पवित्र आत्मा थी। और इसी कारण उन्हें बहुत बार दूर की बात का ज्ञान हो जाता था। एक बार पिता जी ने स्वप्न में देखा कि श्री होतीलाल जी व्रती (तत्कालीन प्रधानाचार्य ए० वी० हाई स्कूल) के पिता अपने गाव में बीमार पड़े है। उनकी बीमारी की सूचना पिता जी को नही थी। दूसरे दिन पिता जी ने होतीलाल जी को अपने स्वप्न का समाचार कहा। वे गांव गये और देखा कि वास्तव मे उनके पिता जी मृत्युशय्या पर पडे है।

सरस्वती के उपासक—पिता जी को शिक्षा सुधार की लगन थी। उन्होने अनेक बार समाचार पत्रो में सरकार के नाम पत्र लिखे जिनमें वर्तमान शिक्षा पद्धति को बदलने, तथा यत्र-तत्र सुधार करने के लिए सुझाव दिये। प्रस्तावो के रूप में अपने विचार अधिकारियो तक पहुँचाये। अधिकारियो ने उनके प्रस्तावो की सराहना की। इनका विस्तृत विवरण द्वितीय खण्ड में मिलेगा।

आर्य सस्कृति से प्रेम—मेरे पूज्य पिता जी आर्य विचारो के थे। स्वय उन्हें अपनी छात्रावस्था में सस्कृत पढने का अवसर नही मिला। परन्तु उन्होने मुझे और मेरी बडी बहन शान्ता जी को अष्टाध्यायी के सूत्र इस लिए कण्ठ कराये कि महर्षि दयानन्द जी का मत था कि सस्कृत व्याकरण अष्टाध्यायी द्वारा पढा जाना चाहिए। सध्या, हवन के अतिरिक्त स्वस्ति-वाचन और शान्ति-प्रकरण के मत्र भी कंठस्थ कराये गये। अनेक वर्षों तक वे अनूपशहर आर्यसमाज के प्रधान रहे। उन्ही की प्रेरणा से पूज्य माता जी स्त्री समाज मे प्रमुख भाग लेती थी।

देश प्रेम—पूज्य पिता जी ने काग्रेस के कार्यों में सक्रिय भाग चाहे न लिया हो, परन्तु उनका हृदय देश-भक्ति से भरा हुआ था। देश के लिए त्याग की भावना हृदय में जागृत थी। प्रदर्शनो में अधिक भाग न लेकर वह चुप-चाप कार्य करने वालो में थे। सन् १९२०-२१ के सत्याग्रह आन्दोलन के समय से अधिकतर वे खद्दर के ही वस्त्र पहनते थे। विदेशी कपडा उन्होने कभी नही पहना। पूज्या माता जी तो काग्रेस के कार्यों में प्रमुख भाग लेती थी।

यश की आकांक्षा नहीं—पूज्य पिता जी साधारण सामाजिक कार्यकर्ता ही न थे, शिक्षा के क्षेत्र में उन्होने अपना जीवन होम दिया। नगर पालिका के अध्यक्ष के रुप मे कार्य करते हुए उन्होने न्याय परायणता का परिचय दिया। उनकी निष्पक्षता न्याय परायणता और बुद्धिमत्ता को देख अग्रेज़ी सरकार ने उन्हें कई बार आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाना चाहा। काग्रेसी सरकार ने भी उनको यह पद प्रदान कर उनका सम्मान बढाना चाहा परन्तु उन्होने नम्रता पूर्वक इसके लिए अपनी असमर्थता प्रकट की।

मिल्टन के अनुसार महान् आत्माओ की भी एक निर्बलता यश की आकाक्षा होती है परन्तु पूज्य पिता जी को यह निर्वलता छू नही गई थी। मई १९५६ से पूर्व श्री प्रभाकर जी व श्री गर्ग ने कालिज के विज्ञान भवन का नाम उनके नाम पर रखना चाहा तो उन्होने बडी नम्रता से उस सुझाव के लिए अपनी स्वीकृति न दी। उसी समय जब तत्कालीन कलक्टर साहब के आदेशानुसार तहसीलदार श्री लारेन्स महोदय ने पूज्य पिता जी का सक्षिप्त जीवन परिचय बुलन्दशहर ज़िले के गजटियर में देना चाहा तो उन्होने लिख दिया "मेरे जीवन में कोई अनोखी सफलता नही है जिससे मेरा नाम ज़िले के प्रसिद्ध व्यक्तियो मे लिखा जाय"।

यह बात निम्नलिखित पत्र से स्पष्ट हो जायगी जिसमें उन्होने यह अनुरोध किया था कि कम से कम डेढ वर्ष तक 'ज्योत्स्ना' का विशेषाक उनके नाम से न निकाला जाय।

C/o S Milind
Chief Labour Welfare Officer,

Tele. 223391-223392-223393
223394
Birla Cotton Mills Ltd
Delhi-6

My dear Thakur Sahib,

Having heard your proposal in the Committee's Meeting and then recently through Sri Mahabir Singh Mahir and more recently through dear Milind I have to make you a personal request that you may kindly put off the proposal to the next year till when I shall be able to make up my mind finally about it and be also completing the 69th year and stepping into the 70th about March-April 1962. By that time, God willing, I hope to make a substantial advance in life and may be able to stand the strain of such an expression of affection by friends and well-wishers. At the present moment I find myself quite unable to transgress the path of avoiding fame and would stick to my life—long way and cherished goal of—

'Not a stone tell where I lie' or more aptly the Persian saying

"वर मजारे माँ गरीबां नें चिरागे ने गुले"

On the grave of we humble beings,

"Not a lamp, not a rose."

It was this feeling that inspired me when I apologised to the Govt for not accepting Magisterial honour twice (both in the British and the National regime) and more recently turning down Sri Lawrence's persistent request to subscribe my life sketch to the Distt Gazetteer being published a few years back when he happened to be the Tehsildar I have all along been following a recluse's way of life, always fearing name and having reserve or unknownness and whenever I erred, I suffered the consequences.

So, pray do not press the point and help me in keeping to my long chosen path. At least give me this one and a half year's time to think seriously about it and prepare myself to stand the ordeal if at all I know my weeknesses and hence the request according to another Persian saying—

"मन आनम कि मन दानम"

"I am what I know about myself"

Apologising for the disappointment,

Yours sincerely,

(Sd.) Durga Prasad.

इस पत्र से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि उन्हे विश्वास था कि मार्च १९६२ ई० तक वे जीवित नही रहेंगे और इस प्रकार वे अपने सामने बिना अपनी प्रशसा कराये ही इस ससार से जा सकेंगे।

प्राध्यापक, करोडीमल कालिज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली।

A W I S H*

'Like a taper one should melt in the pursuit of knowledge.' Knowledge confers untold blessings on one who woos it. But knowledge can only be useful if we have nobility of purpose & sublimity of ideals

FROM times immemorial the human mind has been yearning for knowledge. This craving has so well been expressed in the old prayer 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' 'Lead me from Darkness unto Light'. That was, so to say, the main-stay of human endeavour and the guiding principle of the Rishis of yore who devoted their lives to the attainment of knowledge in all its spheres, physical as well as spiritual There are other sayings of the old emphasising the importance of knowledge and its propogation such as 'सर्वेषामेव दानाना ब्रह्मदान विशिष्यते' 'Of all charities that of knowledge is the sublimest' This thirst for knowledge has also been called the Quest for Truth and some have gone to the extent of proclaiming it synonymous with knowledge of self or the supreme self. So wide has been the extent of knowledge that all the scientific, philosophical, ethical and spiritual advances hitherto made fall within its compass and one is bewildered at the immensity of the task, and the shortness of the span of human life. Well had Newton said, "I am gathering pebbles on the shore of knowledge". Thus it is clear that in order to gain knowledge we must constantly and persistantly devote our lives and create in us a passion for knowledge, such as would last through our various births or rebirths and lead the soul ultimately to the knowledge of Truth or the Fountain Head of all knowledge. All our efforts even in the field of Scientific research also point to the self same goal of attaining Enlightenment and dispelling Darkness or ignorance.

But there is one concomitant condition to this urge in man that it should be actuated by the noble ideal of universal good. Without it the thirst for knowledge may lead us to the dreary abyss of self-aggrandisement or self centredness Without this rudder and compass the ship of human existence may drift into dangerous waters and strike against the rock of selfish motives.

---

*Published in an earlier issue of *Jyotsna*

It was why such great stress was laid on our purpose being sublime, that the word 'शुभ' was as if coherently affixed to 'सकल्प' in our Shastras enjoining nobility of purpose as the necessary accompaniment to all human effort This sublimity of purpose is nothing but triumph over self by preferring the good of others to that of one's own. To the extent our purposes are toned up with this feeling of subordinating the self to the common good We may realise God's hand working behind our human effort bringing solace to us even when working against heavy odds or in challenging circumstances Seekers after Truth have, in all times and in all climes suffered hardships, even persecution and death, but being inspired with an elevating feeling of the nobleness of their cause they suffered these adversities boldly and so many of them attained martyrdom labouring singlemindedly for their noble pursuit.

The world today being surcharged with the materialistic trend and the goal of human life having shifted from self-effacement to self-aggrandisement or in other words mundane desires or self seekingness having taken possession of our nobler self we are in the throes of a dreary dilemma despite all our conquest of Nature and invention of the weapons of bewildering heinousness. The reason for this all round demoralisation is not far to sesk In our mad rush for advancement of Scientific knowledge we have lost sight of the necessary condition of the nobility of purpose and the ideal of universal good that should underlie all such marvellous attainments and without which these Atomic and Hydrogen Bombs and the sputnik marvels will prove nothing but slaves of the lamp turned into demons of destruction and world annihilation

May God restore good sense and amity in us and turn the present trend of the world from Power Blockism to Co-existence or Panchsheel as initiated by our illustrious Prime Minister in whose dynamic personality the world sees its Saviour May he live long to restore the humane poise and ethical values in this world of strife and dissension, so that all our dazzling progress of knowledge be directed to the achievement of abounding happiness for one and all, and the kingdom of Heaven be on Earth —

सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा

CHARACTER BUILDING*

THE aim of education from times immemorial has been two-fold. In the first place it is to develop those mental and moral faculties that, briefly speaking, go a long way to distinguish man from animal and secondly to render him capable of earning his livelihood According to the needs of the time the emphasis has shifted from one to the other of these aims Hither to the cultural aspect had dominated the mundane and inspired all poets, philosophers, scholars and scientists who cared for their particular mission of life above all and generally lived lives of poverty and hardship As the world grew materialistic the aim of education, too, underwent a change, and technical or technological studies came into prominance and the demand to give a vocational bias to education became an established principle of education and commissions after commissions have deliberated on the subject and yet the task remains incomplete to this day. Of course, it seems to be passing through the transitional stage and it may be long before it takes a definite and concrete shape The object of this article is not to turn the scales by disagreeing with the dire necessity of making education less bookish and more practical as the supreme need of the time, but it means to draw the attention of the educationists to the patent fact that all plans to bring about the change-over should be well planned not in a hurrying over-night mood but after a careful study of all the pros and cons of the matter with all the details worked out before-hand. It is no use introducing such haphazard and ill-conceived reforms, if they can at all be called reforms, as were made in our State sometime back, as it were, simply to inaugurate a change for the sake of change. How many thousands of poor students suffered at the altar of such changes as the abolition of Mathematics from the High School course or regularising the absurdity of abolishing English or introducing Elementary English while maintaining its full course for the Inter Exam By what magic were such candidates expected to cover the gap between the two ? The result has been most disastrous and heart-rending. Ask any of these victims and you will realise the height of folly

*Published in the April 1959 issue of *Jyotsna*.

perpetrated For God's sake in the sphere of education, the politician's zeal for reform be forbidden

To turn to the subject while all possible emphasis on making education suit the materialistic need of the time is desirable, importance of cultural, particularly the moral element, cannot be over-emphasised Do we not see in the present day rampant corruption and rank roguery the writing on the wall that the world despite its marvellous scientific achievements and materialistic progress is drifting towards a chaos—a total 'Annihilation of Man' Ethical values have no place in the present set-up and hypocrisy and stabbing in the back have assumed the names of statesmanship and cleverness Utter lack of discipline among students is also a pointer to that ill Callous disregard for moral and religious (liberal) element in education and the dearth of ideal teachers who can never be numerous has rendered the students' minds barren and devoid of ideals They are incapable of attempting or aspiring for anything noble and sublime Character Building is only a scriptural phrase for the majority of educational institutions which have sprung up in the wake of independance and are concentrating on mass production Pray, in this mad rush for numbers where schools have been turned into factories, do not overlook the very Corner-Stone of education 'Character Building' which comes not by the mere study of books but by constant practice of certain rules of right conduct as 'tapasya' during the 'Brahmacharya Ashram' or student life May our students, teachers and above all, educational planners be wide awake to the situation and not lose sight of the moral element without which the world would lose all its flavour and all our talk of the 'kingdom of Heaven on Earth' would be sham

Colonel Chartres was once heard to say that although he would not give one farthing for virtue, he would give ten thousand pounds for a character, because he should get a hundred thousand pounds by it

Lord Chesterfield—*Advice to his son.*

व्याकरण का शिक्षण*

प्रत्येक व्यावहारिक भाषा मे व्याकरण का स्थान एक साधन के रूप मे है। व्याकरण का ज्ञान भाषा के लिखने और बोलने में सहायक होता है। उसका ज्ञान स्वय एक लक्ष्य नही है। व्याकरण इस प्रकार पढाई जानी चाहिए और उसके व्यावहारिक पक्ष को इस प्रकार व्यक्त किया जाना चाहिए कि व्याकरण का ज्ञान शुष्क और नीरस न हो जाय। इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि विद्यार्थी सैद्धान्तिक क्लिष्टताओ और रूढियो से मुक्त रहे। व्याकरण के नित्य प्रति प्रयोग मे आने वाले विषयो का ही शिक्षण होना चाहिए। जो विद्यार्थी ११ या १२ वर्ष तक हिन्दी को मातृ भाषा के रूप में प्रयुक्त करता रहा है उसे यह व्याकरण का ज्ञान शुद्ध भाषा बोलने और लिखने में सहायक होगा।

शिक्षा विज्ञान के एक पडित का कहना है, कि मातृ भाषा के ज्ञान मे वाक्य को आधार मानकर व्याकरण का ज्ञान कराना विद्यार्थियो के लिये सुगम है। वाक्य से अलग किसी भी पद का विद्यार्थी के लिए कोई महत्त्व नही है। प्रत्येक शब्द या वाक्याश का महत्त्व उसके प्रयोग के अनुसार है। इसलिए व्याकरण की शैली वाक्य-विच्छेद की प्रणाली पर आधारित होनी चाहिए। उसी से बालको को विभिन्न शब्दों की पद व्याख्या पर ले जाया जा सकता है।

" Just as sentence was made the starting point of composition so it should be the starting point for teaching formal Grammar. . . Analysis should be dealt with before parsing, for like Composition, Grammar should be taught through the sentence. Parts of speech should be taught through Analysis The Noun should be developed from the simple subject, the Verb from the simple Predicate, the Adjective from the Enlargement of the subject, or object, the Adverb from the Exension of Predicate .. and the Conjunction as connective of sentences "

——Garlick

शिक्षा विज्ञान का यह भी मुख्य सिद्धान्त है कि उदाहरण देकर किसी नियम का ज्ञान विद्यार्थियो को कराया जाय। व्याकरण पढाते समय हमें इस बात को नही भूलना चाहिए।

हिन्दी व्याकरण के विद्यार्थी अपनी कक्षा में अंग्रेज़ी व्याकरण भी पढते ही हैं

---

*श्री दुर्गाप्रसाद जी की लिखी 'हिन्दी व्याकरण' नामक पुस्तक की भूमिका।

इसलिए मातृ-भाषा के व्याकरण का अंग्रेजी के व्याकरण से भी जहा तहा समन्वय करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

मुझे आशा है कि व्याकरण के शिक्षण के विषय में अगर उपरोक्त बातो को ध्यान में रखा जाय तो व्याकरण का विषय जिसे बहुत से विद्यार्थी बहुत शुष्क और दुरूह समझते है बहुत सरलता से समझ सकेगे। साथ ही विद्यार्थियो के हृदय में व्याकरण के प्रति अभिरुचि भी उत्पन्न होगी।

Bifurcation of Mathematics Course For High School Examination

The proposal was made for the first time by Shri Durga Prasadji to the U. P. Board, in December 1924 It remained under the consideration of the Board till 27th April, 1925 but no ultimate result was communicated This proposal was, however, published in the *Education* in May 1926

It was again sent up to the Board in March 1928 under the heading 'Reduction in the Course, suggestion re Bifurcation of Mathematics course' The Board possibly did nothing effective except replying that a questionnaire would be shortly issued

It was again moved in June 1930 and this time the Board referred it to the Curriculum Committee and to the Heads of the A V institutions through the Divisional Inspectors But it was not accepted finally —*Editorial Board*

***Copy of letter dated 27-11-45 addressed to the Secretary, Board of High School & Inter Education, United Provinces, Allahabad**

With reference to the compulsory subjects recently fixed for the High School Examination I have the honour to bring to your kind notice that although the importance of Arithmetic including Elementary Mensuration justifying it a place among the compulsory subjects for the aforesaid examination cannot be questioned, it has been found that there are many students who would prefer Algebra and Geometry to Arithmetic for their compulsory subjects should they be allowed option

It is, therefore, proposed that it may be open to students

to offer any one of the two groups as their compulsory subject I mean (i) Arithmetic including Elementary Mensuration and (ii) Algebra and Geometry may be put among compulsory subjects as two groups alternative to each other just like History and Geography and students wishing to offer both may elect one as compulsory and the other as optional according to their aptitude Of course Arithmetic course upto class VIII should then be so drawn up as to include all the elementary rules of daily use leaving out advanced things for the High section All what is intended by keeping the subject as a compulsory one is that the boys may develop a mathematical or analytical sense which I think will be equally engendered by any branch of Mathematics, and as for utility Geometry has its own significance in the growth of rudimentary creative ideas of planning and construction etc.

Hoping you would kindly put the matter before the Board

Copy of Para 5 of the proceedings of the meeting of the Curriculum Committee held on February 9, 1946 adopted by the U. P. Board at its meeting held on February 12, 1956.

5. The Committee cosidered para 5 (quoted below) of the Mathematics Courses Committee's Report dated January 26, 1946

"5 The committee considered letter no 362 dated November 27, 1945 from the Manager, L D A V Intermediate College, Anupshahr proposing that (i) Arithmetic including Elementary Mensuration be made compulsory as alternative to (ii) Algebra and Geometry for the High School Examination like History and Geography and that students intending to offer both may elect one of the two groups as compulsory and the other as optional

Resolved that it is too early to make any recommendation in this connection.

The curriculum Committee resolved that the recommendation of the Mathematics Committee be accepted"

The New Syllabus*

Girls' schools are facing a problem with the introduction of the new Syllabus Hitherto girls had only Arithmetic as a compulsory subject as a substitute for the boys course in Mathematics comprising

*Letter contributed to *The Leader*, Allahabad dated 14-9-1954

of Arithmetic, Algebra and Geometry And the majority of teachers in Girls' Middle Schools who have themselves qualified through the Vernacular Upper Middle Examination have no knowledge of Algebra and Geometry Nay, even those who have passed the High School Examination are no better in this respect The Banaras Hindu University has in the case of girl candidates not fixed even Arithmetic as a compulsory subject for its Admission Exam As such it is not understood how it has now been considered necessary and feasible to fix all the three branches of Mathematics for girl students, ninety per cent of whom will have nothing to do with Algebra and Geometry in their every day life For female teachers, of course, it is a real problem to have to learn Algebra and Geometry now in their advanced age It is hoped the authorities concerned will take pity on the girl students as well as their teachers and fix only Arithmetic instead of Mathematics for them Algebra and Geometry may, however, be fixed as an optional subject along with the existing ones to provide full course in Mathematics for those few who want to make choice of it with a view to prosecute further study of the subject or two alternative courses be fixed for girl candidates *viz* (i) Arithmetic, Algebra and Geometry similar to that for boys and (ii) Arithmetic only.

Reorientation Scheme*

Sri R R Singh has done a real service to your readers by publishing the gist of the U P. Educational Reorientation Scheme in language inspiring faith and evoking interest It is hoped even the institutions not presently joining the scheme would do well to incorporate in their co-curricular activities some of the salient features such as beautifying the school premises, laying lawns and flower beds, growing fruits and vegetables by way of gardening or horticulture, not necessarily on a large scale, and land-scaping and last though not the least imbibing the spirit of unifying the school and the community and bridging the gulf between the two which the Mudaliar Commission has repeatedly emphasised in its report on Secondary Education in the following impressive words·

"The school will, no doubt, be a small community within a larger community and its success and vitality will depend on the constant interplay of healthy influences between it and the larger

*Published in *The Leader*, Allahabad in August 1954.

community outside. In this way outside life, will flow into the school and lower, if not knock down, the walls which at present isolate it from the currents of life operating outside."

"Another advantage of such projects would be that they will break through the academic isolation of the school and bring into vital rapport with the life and the activities of the surrounding community."

All these things with their enormous educative values can be given a place on all educational schemes, in any case, as co-curricular activities as a move towards popularising the Project or Activity Methods so highly recommended by the commission.

Curriculum for Junior High School Classes*

It is a happy augury that the Education Department in revising the curriculum for Junior High Schools this year has realised the necessity of curtailing the number of periods for craft from 18 to 12 out of a total of 48 and allocating 2 of the 6 periods thus saved to English and 4 to one additional optional subject Thus English would now come into its own by getting at least six periods a week though nine should be desirable with a view to teach the foreign tongue on sound lines. Another highly redeeming feature of the revised curriculum is that Art has now been added to the list as an independent subject though only as an optional whereas its importance as a compulsory subject, as until recently, cannot be over-emphasised from the point of view of developing the aesthetic taste of the children at the proper stage Social studies would get five periods a week instead of 4 although 6 would have been more convenient (3 Geog , 2 Hist & 1 Civics) whereas 3 could suffice for General Science instead of 4

There are still a few fundamental points that need further investigation by the Department *e g* it is really necessary to give 12 periods a week to all the basic crafts—big and small,—I mean Agriculture on one hand and Book Craft or Leather Craft on the other. Do they all require equal time ? Of course, Agriculture cannot be managed with less than 12 periods a week but it would be rather making a fetish of craft if all of them are allotted the same number of periods, thereby involving waste of precious time of the students. Moreover, some of the crafts are such as boys of that tender age

*Published in *The Leader*, Allahabad

cannot handle properly *e g* Wood-Craft or Metal-Craft At any rate in class VI they are quite incapable of handling the heavy tools connected with these crafts Another point worth considering is whether a curriculum of 48 periods a week is really necessary and practicable for these classes (attached to the High Schools) when the entire time-table for IX and X classes is covered in 42 periods It would also not look well if the boys of High school classes keep at school for lesser number of periods than the younger ones belonging to the junior classes Here, too, putting other crafts at par with Agriculture seems responsible for this anomaly, otherwise all other crafts can be easily managed within six periods a week, or two continuous periods on three days and the whole time-table covered in 42 periods, and the school easily reduced to one of seven periods a day only

It is time the Department realises this hard fact and announces frankly that institutions where the craft taught is not Agriculture can have a 42 periods time-table devoting only six periods to craft. Moreover, Heads of Higher Secondary Institutions should be given some discretion to give a period or two more or less to the various subjects, according to their needs, the departmental allocation of periods acting only as a general pattern

Secondary Education*

With due deference to Principal Pandey's views published in the Leader dated April 3, 1954, I have to draw the attention of your readers to the two points Firstly that the move to have a three year Higher Secondary course followed by a three year Degree Course is based on the recommedations of the Mudaliar Commission on Secondary Education set up by the Govt of India to consider the question on an all India basis and as such the question of U P Education Board does not arise Moreover, the said Commission consisted of educationists of mark and their findings cannot be lacking the insight of the workers in the field particularly when this commission has examined a large number of persons actually engaged in the work Secondly that the preparatory class in Delhi colleges is not meant for those who have passed the Higher Secondary or clsas XI Examination but for those who come from High Schools after passing the High School or class X examination. Such schools as

*Published in *The Leader*" Allahabad dated April 9 1955

have not been able to raise themselves to the Higher Secondary Standard still exist in the rural area as High Schools and the High School Examination is also held by the Department for them as a transitional arrangement

It is after all a question of improving the standards from below which have, of late, gone so low. The Higher Secondary scheme of three years course is working so nicely in Delhi Its products compare favourably with our Inter. passed students No doubt the quality of stuff also makes a good deal of difference yet in national interest an almost uniform structure has to be devised with a little variation here and there to suit local conditions Let us hope that the new Director of Education who must be having intimate knowledge of the structure followed in Delhi, coming as he does with the Central Education Secretariat experience will help shape things in right direction

Secondary Education*

The introduction of a unified course for the Higher Secondary classes and dropping class XII and adding it to the degree course are matters which must be engaging the immediate attention of the State Govt It will not, therefore, be inopportune to make an humble suggestion in this connection that with a view to avoid retrenchment of post-graduate teachers employed in the Inter. classes grade the two top classes X and XI within the framework of the new structure be ragarded as their charge and VIII and IX that of the trained graduates For a long time past it had been the practice to entrust class VIII to trained graduates That is all the more desirable at present when J T C has replaced C T particularly in view of the lower attainments of J. T. C teachers In Delhi trained graduates are employed even for class VIII The Department here can safely fix VII as the top most class to be taught by under-graduate teachers In this way all hardship resulting from the abolition of class XII in Higher Secondary institutions can be avoided without the least reshuffling or dislocation On the other hand a great improvement of standard is expected by the proposed change which seems so desirable in these days of fast deteriorating standards.

*Letter contributed to *The Leader*, Allahabad dated 29-4-1955

Secondary Education*

The new structure of Secondary Education as envisaged by the Mudaliar Commission covers a seven year course comprising of a three year Middle or senior basic stage and a four year secondary stage while dispensing with a year at the top or the present Intermediate stage to be added to the degree course Thus in terms of the present structure classes VIII-IX will form the Secondary stage and classes V--VII the middle of Senior Basic stage The Commission has envisaged a primary or Junior Basic stage of four or five years. It is now for the U P. Government to take a decision in the matter even if it decides to allot five years to it there should be no difficulty in naming the classes concerned as Preparatory or Infant I, II, III and IV as was done sometime before and if four years are considered enough as it should be in the interest of making Primary Education Free and Compulsory there would be no need to add the Preparatory class and the present nomenclature for Primary classes could continue intact with the only difference that class IV will form the top class there and V transferred to middle or Senior Basic Schools That would lead to improvement of standard for most of the boys now joining the Secondary Schools in class VI come with very deficient attainments, the parents in big towns being averse to getting their wards admitted to primary schools even those coming after passing class V as regular students from primary schools possess much lower efficiency now a days even in mother tongue and arithmetic for which they used to be so reputed This transfer of class V to some extent will remove the grievances although that efficiency cannot be expected as was the case when class III and IV were also attached to Secondary Schools Acharya Narendra Dev Committee has very aptly remarked in this connection—

Standards have also fallen because of the removal of classes III-V from the Higher Secondary schools and want of suitable substitutive arrangement for the children of middle class parents in the cities with the result that they prefer to get their children admitted directly to class VI instead of sending them to Primary Schools which do not come up to their expectations The result is that the majority of the new entrants of class VI hardly possess the requisite knowledge for that class when they seek admission to it.

---

*Published in *The Leader*, Allahabad dated 14 5-1955

The sooner the new plan is put into effect the better it is. One year should suffice for working out the details.

Secondary Education*

Secondary Education has, of late, been undergoing marvellous changes including some for the worse. Thank God, the craze for groups and the confusion arising from main and subsidiary subjects seem to be on the wane in view of the recent recommendations of the Secondary Education Re-organization Committee whose report has just been published, which while nominally sticking to the group nomenclature virtually does not leave there anything by way of water-tight compartments or barriers smacking of over-specialisation at the early stage of class IX in as much as it lays down three compulsory subjects Hindi, English and Mathematics common to all groups and even in respect of three optionals, students offering Science will have to make choice of two other optionals out of the literary subjects and similarly those offering Agriculture or any set of the constructive subjects (taken equal to two) will have to offer one optional out of the list of the literary optionals and the same holds good in the case of aesthetic group Thus synthetically the whole plan is comparatively a much simpler thing *viz.*, six subjects in all—three compulsory and three optional with the provision that those offering Science will offer two more optionals and those Agriculture or Crafts will offer only one. As such there will be as many as four or even five subjects common to all combinations and that is what a broad-based liberal education should aim at in its pre-specialisation stages

The Committee has very nicely tried to co-ordinate general and technical education by providing for migration from one type to the other after the first two years course by a harmonious combination of humanistic with technical subjects though it is doubtful how far it will be conducive to the development of technical studies to have no Mathematics there. Of course, the study of Science will be beneficial but Mathematics too seems indispensable Better, if Mathematics and Science could be provided for as a combined subject The continuance of Mathematics no matter merely in a revisional form is also necessary in order to keep up the knowledge acquired upto the Junior High School stage it being a subject so liable to fade away for want of practice

---

*Published in *The Leader*, Allahabad dated 16-11-1953.

The view recently expressed in his letter published in the *Leader* by Principal Pandey regarding Intermediate College has been tried in this institution and classes IX to XII only retained. But the experiment had to be given up after many years' trial as it resulted in immensely lowering the standard, boys coming from Junior High Schools of recent mushroom growth being hopelessly below the mark In order to check the fast advancing deterioration it is essential that the Govt should concentrate on the improvement of Primary and Junior High Schools which are, so to say, the foundation steps of the educational ladder

In view of the present ill-staffed Primary schools Secondary institutions may, as an emergency measure, be allowed to maintain their feeder Primary sections no matter as separate Branch schools or at least classes IV and V as substitutes of the old Upper Primary classes III and IV That will counteract the baneful effect of dropping out these classes so aptly depicted by the Committee in their following remarks —

"Standards have also fallen because of the removal of classes III to V from the Higher Secondary Schools and want of suitable substitutive arrangement for the children of middle class parents in the cities with the result that they prefer to get their children admitted directly to class VI instead of sending them to Primary schools which do not come up to their expectation The result is that the majority of the new entrants to class VI hardly possess requis te knowledge for that class when they seek admission to it

The New Syllabus*

Thank God ! the new syllabus for High School and Intermediate classes has now assumed a definite form and the halo of vagueness and dubiousness that surrounded the previous announcement "the same course as for main subjects in 1953-54" is removed and at long last the necessity of retaining Elementary Hindi and curtailing the courses in English and Hindi has been recognised

It is with regard to the syllabus for the lower classes that I mean to draw the attention of all concerned to some glaring oversight in fixing subjects of study and allotting periods to each of them out of a total of 30 periods

In the first place one wonders why no place has been given to

*Published in *The Leader*, Allahabad in August 1954.

Pure Art as distinguished from Art allied to a Craft Is it presumed *that when, after the completion of the Junior High* School course in three years, the student will come to the Higher Secondary class IX he would be switched on to Pure Art from Allied Art and taught A. B C of the former ? If so, how will he be able to cover the whole course of the High School Exam. in two years only ? Or God forbid, will a subject of such educative value as Art developing Aesthetic taste and creative faculties be ultimately scrapped off ? If not, will it not be too late to commence its study in class IX from the point of view of the student's mental development ?

Secondly, it passes one's comprehension how English can at all be studied by devoting only four periods a week to it There were days when 12 periods were given to it even in class III, then nine periods and now it comes down to 4 when the subject commences in class VI. It seems a place had to be found for it willy-nilly and the available 4 periods allotted to it without, of course, taking into consideration whether or not it would mean any real teaching of the subject If necessary time could not be found why was it not dropped at this stage, for what is worth doing should be worth doing well It is no use fixing a subject and starving it for lack of necessary provision. By a little adjustment *viz*, cutting down the number of periods for (*i*) General Science and (*ii*) Physical Culture from 4 to 3 each, two periods could be easily saved and the same added to English so that the number of periods for the subject may come up to 6 at least and its present ridiculous position avoided.

As for the importance given to Agriculture, let it not be lost two reasons (*i*) that all children have not the same aptitudes and leaning and (*ii*) that institutions where the teaching of other crafts is already provided and adequate equipment for the same also exists should not be asked to close down these departments, otherwise what a collossal loss of public money it would entail Rather other existing crafts be further developed there and every encouragement given to them In our zeal for a change we should not forget to avoid waste

Secondary Education*

The thought-provoking speech delivered on Feb 10 by the Chief Minister of Uttar Pradesh to the Education Officers of the State is a happy augury The learned Chief Minister, himself an educationist

---

*Contributed to *The Leader*, Allahabad dated 16th February 1955

of mark, has stressed that due emphasis on Craft is all right but we should not make a fetish of it Importance of craft as a means of training the hand and eye as also of giving a vocational bias and establishing the dignity of manual work and rendering education less bookish cannot be denied but wholesale condemnation of present education and the possibility of making it self-supporting are extremes to be carefully avoided Again, any reform in a matter of such far reaching importance as education should be well thought-out and gradual To effect it with the fervour of a politician would be suicidal For instance, in their zeal for emphasising Craft and finding necessary time for it in the allocation of periods to the various subjects, provision of only four periods a week for English and none for Art as distinguished from Art allied to Craft has been made. It is difficult to understand how it is possible to teach English in such a short time and how the study of Pure Art could be developed at the Higher Secondary stage when the elementary course in the subject is conspicuous by its absence in the earlier stages It is hoped that other subjects will receive due proportion of time and importance and not relegated to the background

Another important question is that of the educational structure That there be a uniform pattern throughout the country is desirable and the labours of the Mudaliar Commission in this behalf should be sincerely availed of The existence of a large number of Intermediate colleges should not prevent the pattern devised for the country as a whole As a matter of fact recent multiplicity of these institutions has rendered the Intermediate stage more or less a farce The Inter. Colleges of the days of inception of the Intermediate Scheme, barring a few exceptions, are a thing of the past having lost their significance due to the rampant inefficiency and deterioration of standards in the majority of Intermediate Colleges and Higher Secondary Schools that have recently sprung up As such, there will be no harm in dropping class XII and converting them all on to Higher Secondary Schools going up to class XI. It requires the strength and courage of a personality like our Chief Minister to take a decision in the matter and facilitate the most desirable change Of course, adjustments will have to be made to avoid hardship to the teachers at present engaged for class XII and the difficulty tided over as before when class III, IV and V were dropped from High Schools.

Teaching of English to begin in class V

The proposal was published by Shri Durga Prasad ji in the *Education* in 1926 and also in *The Leader* in 1930

It was brought up before the U. P Board in 1930 under the heading "Co-ordination of English and Vernacular Education upto the Primary Stage" and the Board replied that Vernacular education was outside the purview of the Board

It was brought up before the U. P. Secondary Education Conference but was lost —*Editorial Board*

Copy of letter dated February 4, 1955 addressed to The Secretary, Board of High School and Inter. Education, United Provinces, Allahabad.

With reference to the conclusions of the Central Board of Education as embodied in its plan of Educational Reconstruction as also the Sargent Scheme I have the honour to submit my humble suggestion that the Board of High School and Intermediate Education, U P may make a move in that direction by effecting the long due reform of ridding the Primary Education of the burden of the foreign tongue (English) at the child's tender age of 7 or 8. The consequent co-ordination of Vernacular and English Education upto the Primary stage will, besides being educationallv sound, be economically most desirable in as much as it would do away with the duplication of courses in the Vernacular and English Schools and defer introduction of English till the child attains the age of 10

The present curriculum provides one period's work daily in English in classes III and IV and it is not difficult to arrange the syllabus in such a way as to get the present six years' English course of classes III to VIII distributed over four years only, *viz* in classes V to VIII thereby keeping the standard for the High Section almost in tact The example of the the Panjab and Delhi Provinces is worthy of emulation in this connection This will also provide for greater attention being paid to basic crafts in the Primary course and lead to useful continuance of the same in the middle section.

In the end I hope the new Board will very kindly give the matter its most sympathetic consideration and draw up the curriculum for A V schools for 1944-45 on such lines that the study of English may find place on it not earlier than class V thereby achieving a land-mark in the Educational progress of the Province towards National reconstruction.

Copy of D. O. letter No. 7940 dated December 16, 1944 from Mr. W. G. P. Wall, Director of Public Instruction, United Provinces to Sri Durga Prasad.

I have received your letter dated December 13, 1`44

In this connection I would refer you to the Central Advisory Board's report on Post war Educational Development in India The third para on page 9 reads as follows :—

> Careful consideration has been given to the question whether English should be introduced as a subject in the basic school. The Board are of opinion that under no circumstances should it find a place in the curriculum of the Junior Basic (primary) school Nor are they satisfied as to the desirability of introducing it at the Senior Basic (Middle) stage but they recognise that there may be a strong public demand for it in certain areas and they feel that the final decision in this case must be left in the hands of the Provincial Education Department

Para 5 on page 21 states 'entrants to High Schools will be increasingly drawn from Junior Basic (Primary) Schools, it is clearly necessary that the curriculum in the lower classes of High schools should develop naturally from that of the Junior Basic (Primary) School'

This means that no English should be taught in the Primary stage of any school

The programme of studies for the new scheme of education is still under consideration, but when it is finally drafted the recommendations of the Central Advisory Board's report will be kept in view.

It would be as well to wait a little longer until ideas on the future curriculum are more definite and clear.

Stage for Introducing English in Schools*

What an odd spectacle one witnesses these days in village schools with regard to the teaching of English Formerly it was taught as a compulsory subject in Anglo-Hindustani Schools and as an optional one in Hindustani Town Schools But with the advent of National Government and the unification of Hindustani and Anglo-

*Contributed to *The Leader*, Allahabad on 28-9-1951

Hindustani schools in the State two courses were open, *i. e.* either the Anglo-Hindustani Schools were to be run on the lines of Hindustani schools or the vice-versa from the point of view of the study of English Though the Education Re-organization Scheme had envisaged the teaching of English in Middle or Junior High Schools only as an optional subject **practically in all the District Board and Private Junior High Schools it is being taught more or less as a compulsory subject,** and even the smallest Junior High School in a village teaches English. The number of these Junior High Schools has, of late, grown as if by mushroom growth and English is spreading like any thing in every nook and corner now. This, when viewed in the context of the proposed abolition of English in 10 or 15 years and replacing it as a National Language, presents horrible picture never dreamt of by the sponsors of the Re-organization Scheme Far from restricting the study of English it has given it a great impetus and widespread progress The worst feature of the picture is that the mushroom growth of English through these ill-equipped and ill-staffed Junior High Schools has resulted in the deterioration of the standard of English by way of faulty pronunciation and absurd spellings, and it frequently pricks the IX class teachers' heart to see that boys who have passed class VIII with English from these Junior High Schools fare worse than those who would begin it, for it is difficult to correct the faults deep-rooted in them during their three years' initial course at a village school having at best a Matriculate youngster fresh from the school or even one who has taken the examination privately for an English teacher The reason why this optional subject has assumed the magnitude of a compulsory subject is not far to seek. English still holds its old sway on the minds of the ignorant rural masses and this belief is further confirmed by the presence of an English teacher in almost every village Junior High School which was heretofore restricted to a few of the town schools. Naturally they are impressed of its importance and can never think that it is bound to go shortly.

Can't our educationists, imbued with national spirit, evolve a scheme which would lead to healthy intellectual development of children by imparting all education upto the middle stage in Hindi and ridding it altogether of English, Higher Secondary classes being the proper stage for the introduction of a foreign tongue. There seems difference on the part of the educationists possibly based on the fear lest it be too late to introduce English in class IX and that may lead

to further deterioration of standard in the subject But to my mind it is rather a wrong notion based on the ignorance of the fact that the method of teaching a subject to grown-ups must differ widely from those for children I mean a method based on the comparative study of grammar as applied to translation and composition may bring about the desired result in the limited time left for the purpose in the latter case

Pray let our Middle schools impart sound education purely in Hindi so that knowledge of Hindi as well as other subjects may grow there unhampered by the overawing influence of English which relegates all subjects to a secondary position including even the mother tongue Our slavish mentality looks odd in the present national set up of the country We have long accepted the suzerainty of English, let our children be rid of it and love their Mother Tongue and National Language and study English only as a subsidiary subject in the Higher Secondary classes just as German, French or Russian is studied in the Universities as a foreign language and the English course should be such as would enable them to possess a working knowledge of the language A special effort in the choice of courses prescribed and the methods employed is all that is needed to bring about the change over.

स्वतंत्र भारत की पाठविधि में अंग्रेज़ी का स्थान*

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व मुझे यह सूझा था कि हमारे स्कूलो की तीसरी कक्षा में पढने वाले छोटे वालको पर एक विदेशी भाषा के पढने का भार लाद देना न केवल वडी भूल है वल्कि एक घोर पाप है। मैंने इसी आशय से एक योजना "एजूकेशन" में प्रकाशित की थी कि हमारे वालको की प्राइमरी शिक्षा के पाठ्यक्रम में अग्रेजी का कोई स्थान नही होना चाहिए और अग्रेजी की पढाई कक्षा ५ से प्रारम्भ की जावे। विदेशी राजसत्ता के अधीनस्थ हमारा शिक्षा विभाग तो उस समय इस योजना का समर्थन कर ही क्या सकता था क्योंकि उसका तो लक्ष्य ही यह था कि जितनी जल्दी हो सके भारतीय वालको के मस्तिष्को पर

*एक प्रस्ताव [जो २१-१०-१९४७ को भारत के तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री मौलाना अबुलकलाम आजाद को भेजा गया।

अग्रेजी भाषा का सिक्का जमा दिया जाय। इसी मे विदेशी राजनीति की सफलता थी। अग्रेजी सभ्यता पर मुग्ध अनेक भारतीय भी अपने बालको को जन्मते ही पश्चिमी सभ्यता की गोद में डालने में अपना गौरव समझते थे। उनसे भी इसके समर्थन की कोई आशा न थी। परन्तु दुख है कि तत्कालीन युक्त प्रान्तीय सेकेंड्री एजूकेशन एसोसियेशन ने भी जिसके अधिकतर सदस्य भारतीय अध्यापक है और जो शिक्षा के मर्मज्ञ समझे जाते है अन्त मे निम्नलिखित उत्तर दिया.—

"It was lost by a substantial majority. This office regrets very much that in view of the new situation it is unble to take any future steps to push the scheme."

अर्थात् आपका प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकृत हुआ अत. हम आपकी योजना को अग्रसर करने मे असमर्थ है। दस वर्ष के सतत परिश्रम का यह था परिणाम अर्थात् कोरी निष्फलता।

मुझे इस लेख मे उन एक मात्र महान् व्यक्ति का उल्लेख करते हुए हर्ष होता है जिन्होने अग्रेज होते हुए भी न केवल मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया अपितु एक कदम आगे की रूपरेखा खीच दी जिसे स्वतत्र भारत की पहली युक्त प्रान्तीय सरकार ने इस सम्वन्ध मे मानो पूर्ण रूप से मान लिया है। यह अग्रेज महोदय थे श्री एस० एच० फ्रीमेण्टल, आई० सी० एस० सीनियर मैम्बर बोर्ड आफ रैवन्यू यू० पी०। उन्होने अपने १२ जून १९२४ के पत्र मे लिखा था—

"My own idea is that there should be an Engilsh teacher in the Anupshahr Vernacular middle School, and that boys should remain in that school, until the 7th class and come on to you only in the 8th vide report of Economy Committee for this year. At any rate it would enable you to devote the whole of your efforts to classes VIII and above, and perhaps the school might then be made into an Intermediate College.

Certainly I agree with you that it would be a good thing if you could dispense with classes III and IV in the English Schools in the way you mention but as stated above I would prefer to go further"

अर्थात मेरा विचार है कि अनूपशहर के वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में एक अग्रेजी का अध्यापक होना चाहिए और लडको को ७ वी कक्षा तक वही रहना चाहिए·········मै आपसे सहमत हू कि अग्रेजी स्कूल से कक्षा ३ व ४ को अलग करना एक अच्छी वात होगी किंतु मै आपसे एक कदम आगे जाना चाहता हू। (अर्थात कक्षा ५से ७ तक में भी स्कूलो में अग्रेजी रखने की आवश्यकता नही है)

अव २५ वर्ष पश्चात् वर्तमान युग में केन्द्रीय सलाहकार समिति (Central

Advisory Board) ने अपनी रिपोर्ट मे सीनियर वेसिक स्टेज में अग्रेजी न पढाये जाने के विषय मे निम्न सम्मति दी है.—

The Board are of opinion that under no circumstances should English find a place in the curriculum of the Junior Basic (Primary) School Nor are they satisfied as to the desirability of introducing it at the Senior Basic (Middle) stage "

ऐसी दशा मे क्या हमारे राष्ट्र तथा प्रान्तो के लिए यह सम्भव नही है कि अव हम श्री फ्रीमेंटल महोदय के प्रस्ताव से भी आगे एक कदम वढा सकें। मेरी यह सम्मति है कि न केवल प्राइमरी शिक्षा को ही अग्रेजी से मुक्त किया जाय अपितु मिडिल अथवा सीनियर वेसिक कोर्स को भी हम इससे वचा रखे जिससे हमारी नीव सुदृढ वने। अग्रेजी केवल सैकड्री स्टेज में ही पढाई जाय और वह भी अच्छा हो यदि एक वैकल्पिक विषय के रूप मे ही हो।

हा इस दशा में हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलो का ढाँचा वहुत कुछ उन्नत करना होगा। सरकार को आदर्श वेसिक मिडिल स्कूल स्थापित करने होगे और वर्तमान मिडिल स्कूलो के वातावरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके नवीन स्फूर्ति भरनी होगी। उन का उद्देश्य सफल नागरिक बनाना होगा।

उक्त प्रस्ताव मै देश के समस्त शिक्षा मत्रियो के विचारार्थ अर्पित करता हू। मेरी प्रार्थना है कि इस समस्या को हल करने में जल्दी न की जाय और न निहित स्वार्थी जनो (Vested interest) की परवाह की जाय क्योकि इस चट्टान से टकराकर प्राय. वहुत से उत्तम प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत नही हो सके हैं। विचारणीय यह है कि कक्षा ७ तक बिल्कुल अग्रेजी निकाल देने से क्या वस्तुत: हमारी शिक्षा का माप गिर जायगा। यदि ऐसी आशका न हो तो क्यो न इस सुनहरे अवसर का उपयोग किया जाय और क्यो न राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास मे एक वडा कदम वढाया जाय। युक्त प्रान्त में शीघ्र ही शिक्षा सुधार सम्वन्धी विल पेश होने वाला है। आशा है इस लेख द्वारा मेरी नम्र अपील उसके निर्माताओ तक पहुच सकेगी। जिससे हमारी प्रन्तीय सरकार द्वारा निर्मित पाठविधि सर्व श्रेष्ठ और अनुकरणीय सिद्ध हो।

श्रद्धांजलि

श्री परमानन्द विद्यालकार

अनूपशहरे शान्ते-विमले जान्हवी-तटे ।
भगवच्चरण-प्रेमी सर्वस्व विततार य. ॥१॥
दीनार्तिदीर्ण-हृदयो वदान्यो विबुधाग्रणीः ।
सरस्वतीप्रसादाय जीवन स्व ददौ मुदा ॥२॥
अबोधजनताऽज्ञान परितापितमानस. ।
तत्सेवाव्रतमाददे वन्दे तम् यति-सत्तमम् ॥३॥
विजहौ सुखसम्पत्ति वैराग्य परिषस्वजे ।
नौमि दुर्गाप्रसाद त यौवनेऽपि यतिव्रतम् ॥४॥
अर्धलक्षमित द्रव्य जुहुवे यज्वनां वर. ।
विद्यालय-महायज्ञे याज्ञिक. स जयेत् सदा ॥५॥
निजरक्त-जलै सिक्त पुण्य विद्यामहीरुहम् ।
यावज्जीव सिषेवे यस्त स्मरामि नरोत्तमम् ॥६॥
भारत्या. पूजने नित्य निजात्मा नियत हुत ।
येन शश्वत्तपोनिष्ठस्त्यागी स जयताच्चिरम् ॥७॥
अल्पाऽऽरम्भ. सरस्वत्या विशालोवट-पादपः ।
फलैः सम्प्रीणयत्यद्य लक्षलक्षमितान् जनान् ॥८॥
समुपेक्ष्य सुख सर्वं लोकसेवामहाव्रती ।
ममादर्श. सदा भूयाच्छात्रकल्पतरु: शुभः ॥९॥
सस्नेहस्मितपूतास्यो विदुषामग्रनायक. ।
श्रीमान्दुर्गाप्रसादोऽस्तु मदीयो मार्ग-दर्शक: ॥१०॥
येनात्मजीवितं सर्वं विद्यार्थिजनहेतवे ।
अर्पितं त तप पूत महात्मान नमाम्यहम् ॥११॥
विविक्ते स्वर्नदीतीरे शारदाऽर्चन-तत्परम् ।
जितात्मान तमादर्शं कर्मठ नौमि सादरम् ॥१२॥
योहि दु.खान्यगणयन् विद्याविस्तारतत्पर. ।
विदेहकल्पो बभ्राम च्छात्रोद्धारकृत-व्रत: ॥१३॥

शिष्याणामतुलोबन्धु सदायुवकमानस. ।
नोपेक्षामास नारीणामुन्नतिं ज्ञानिना वर. ॥१४॥
सम्मानभीरु सत्वस्थो नक्तदिवमतन्द्रित. ।
अन्तिमोछ्वासपर्यन्त विद्यालय-हिते रत ॥१५॥
आदर्शगुरुरादर्शच्छात्रो वद्धानुशासन ।
शान्तो नि.स्वार्थसेवी स जयताद्यतिसत्तम ॥१६॥
वीतरागो जितामर्षो जीवन-मुक्त सदाशय. ।
अतुल्यनिष्ठो भारत्या भक्तोविजयतेतराम् ॥१७॥
यश.पताका यस्याद्य महाविद्यालयान्तरे ।
विराजतेऽमरः स स्यादनुत्पन्नरिपु. कृती ॥१८॥
अनूपशहरस्याद्य पत्रं-पत्रं गृहगृहम् ।
साभार यद्यशोगान कुरुते स जयेद् बुध. ॥१९॥
अमर वीर सेनानीमज्ञानरिपुमर्दनम् ।
दुर्गाप्रसादमार्यं त श्रद्धाजलिमुपाहरे ॥२०॥
तदुप्ता-ज्ञान-वल्लीय प्रचकास्तु दिवानिशम् ।
पुष्पिता फलिता भूय प्रीणीया ज्जगतीतलम् ॥२१॥
तेनैव स्वीकृत मार्गमनुगच्छन्तु सात्विकम् ।
उत्तराधिकृतास्तस्य येन तस्यास्तु तर्पणम् ॥२२॥
तत्सुताश्च तदादर्शमनुकुर्वन्तु साधव ।
ख्यापयन्तो यशस्तस्य स्वकुल चोन्निनीषव. ॥२३॥
दिव्या मनोरथास्तस्य सिध्यन्तु जगता हिता. ।
स्वर्गस्थो येन तस्यात्मा शान्ति सगच्छता ध्रुवम् ॥२४॥
श्रीमद्दुर्गाप्रसादस्य पादयो पुण्यमूलयो ।
श्रद्धाञ्जलिरय भक्त्या स्थाप्यते गुणरागत ॥२५॥

करोल वाग,

दिल्ली ।

दुर्गाप्रसाद हे अमर पुत्र ! तुम को प्रणाम, शत-शत प्रणाम ।

श्री सत्यप्रकाश मिलिंद

दु र्गम पथ पर बढने वाले ऋषिवर ! तुमको शत-शत प्रणाम ।
र म गये जहा पर तुम ऋषि थे, उन धूलि कणो को भी प्रणाम ।
गा था स्वर्णाक्षर लिख न सके, ऐसा दधीचि है तेरा त्याग ।
प्र ति क्षण अभाव है खटक रहा, आसू की रुक न सकेगी धार ।
सा दा जीवन आदर्श उच्च, तुम त्याग-मूर्ति करुणा—प्रतीक ।
द र्शन करने को स्वर्ग बढा, रो पडी धरा छिन गया यती ।
ल क्ष्मणप्रसाद के थे सुपुत्र, तुम पिता नगर भर के थे पर ।
क्ष ण अन्तिम तक चिन्ता जग की शिक्षा शास्त्री थे तुम सत्वर ।
मणि धन का किंचित लोभ नही, थे दानवीर अभिनेता थे ।
प्र ति क्षण चिन्ता सेवा की थी कलियुग के मानो त्रेता थे ।
सा धन यौवन सम्पन्न कुशल, तुम योगी थे निर्लिप्त महान् ।
द ल वन्दी से तुम दूर रहे, थे अमिट कृत्य जीवित महान् ।
दुर्गाप्रसाद तुमको प्रणाम, हे त्याग-मूर्ति तुमको प्रणाम ।
इस कालिज को मेरा प्रणाम, उस विद्यालय को भी प्रणाम ।
शिक्षा—शास्त्री तुम को प्रणाम, हे नगर—पिता तुमको प्रणाम ।
दुर्गाप्रसाद हे अमर पुत्र । तुमको प्रणाम, शत-शत प्रणाम ।

पूज्य बाबूजी

श्री प्रभाकर याज्ञिक

बा० दुर्गाप्रसाद जी आज नही है परन्तु उनकी याद हमारे सामने है । जब तक अनूपशहर है, बा० दुर्गाप्रसाद जी को कोई भूल नही सकता । हमारी सच्ची श्रद्धाजलि यही है कि उनके लगाए पौधे को हम तन, मन, धन से सीचें । जो चीज वह हमें दे गये हैं उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है । पूज्य बाबूजी के विषय मे कुछ लिखना या कहना मेरे लिए कठिन है । उनके जीवन से हम थोडी भी शिक्षा ग्रहण कर सकें तो हम सबका उद्धार हो सकता है ।

प्रधान—प्रवन्धकारिणी समिति,
लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक इण्टर कालिज,
अनूपशहर, यू. पी ।

महाशय जी

डा० नगेन्द्र

सन् १९२८ की वात है। मै अतरौली के अग्रेजी स्कूल से आठवी क्लास पास कर चुका था। नवी क्लास में भरती होने के लिए मुझे वाहर जाना था क्योकि अतरौली का स्कूल तो सिर्फ मिडिल तक ही था। वैसे अलीगढ, डिवाई आदि नगर अधिक निकट पडते थे किन्तु मेरे पिताजी ने इन जगहो को छोड अनूपशहर के एग्लो वैदिक हाई स्कूल में मुझे प्रविष्ट कराने का निश्चय कर लिया था। इसके अनेक कारण थे। एक तो यह कि अनूपशहर का प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ और शुद्ध था, शहरी जीवन के प्रलोभनो और विकृतियो से वह मुक्त था। दूसरे, एग्लो वैदिक हाई स्कूल उस समय तक अपने नैतिक तथा शैक्षिक आदर्शों के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था और तीसरे, वह आर्यसमाजी सस्थान था। ये तीनो ही कारण अपने आप में प्रवल थे, इसी लिए मेरे आदर्शवादी पिता ने यात्रा की असुविधाओ के रहते हुए भी मुझे अनूपशहर ही भेजने का निर्णय किया। हम लोग, कदाचित् पिताजी की अस्वस्थता के कारण, स्कूल खुलने के लगभग एक सप्ताह वाद वहा पहुचे। मेरे साथ मेरे छोटे चाचाजी, प्रिंसिपल हरप्रसाद नगाइच भी थे। कुछ वर्ष पूर्व उपर्युक्त कारणो से पिताजी ने उनको भी उसी स्कूल मे भेजा था और वे दो वर्ष तक वहा के अन्तेवासी रह चुके थे।

मुझे कुछ ऐसा आभास है कि अनूपशहर पहुच कर मेरी पहली प्रतिक्रिया बहुत अच्छी नही हुई। मेरे मन में हाई स्कूल की जो रजित कल्पना थी वह वहा जाकर मानो चरितार्थ नही हुई। किन्तु ज्यो-ज्यो मेरा परिचय वढता गया स्कूल का वातावरण तथा उसके निर्माता व्यक्ति मेरे किशोर मन मे रमते गये और मुझे लगता है कि आज भी वे मेरे सस्कारो में वसे हुए है। यो तो कई अध्यापक ऐसे थे जिनका सरल, सात्त्विक व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था किन्तु विद्यालय के आधारस्तम्भ दो ही थे: प्रवधक महाशय दुर्गाप्रसाद जी और मुख्याध्यापक श्री होतीलाल व्रती। महाशय जी मानो उसकी आत्मा और व्रती जी उसके हृदय थे। अपने युवाकाल मे ही महाशय जी ने सर्वस्व दान कर विद्यालय का निर्माण किया था। धन जितना था आरभ ही मे दे चुके थे, अव केवल तन और मन रह गया था जिसका दान वे निरन्तर कर रहे थे। उनके साथ मेरा कभी घनिष्ठ सम्पर्क नहीं हुआ। वे कुछ घण्टे पढाया भी करते थे, शायद सातवी कक्षा में अग्रेजी के दो-एक घण्टे उनके थे, परन्तु विद्यालय की आतरिक व्यवस्था से प्राय असलग्न होने के कारण विद्यार्थियो से उनका सीधा सम्वन्ध नही था। अतः मेरा भी कभी उनसे निकट परिचय नही हुआ। सभाओ और उत्सवो मे भी वे प्राय· मौन दर्शक ही रहते थे। उनकी स्थिति 'न्याय'-प्रतिपादित 'कर्ता' के समान थी जो प्रत्यक्ष रूप में कुछ न करता हुआ भी विश्वप्रपच का सचालन करता है।

अनूपशहर छोडने के बाद स्कूल के वे मधुर चित्र मेरे मन मे कभी धुधले नही पडे। किन्तु उन चित्रो मे जो मूर्तिया अधिक भास्वर थी वे कोई और ही थी—हैड मास्टर साहब की स्निग्ध-सरल मूर्ति उनमे सब से अधिक उज्ज्वल थी। फिर भी महाशय जी को, व्यक्तिगत सम्पर्क न होने पर भी, कोई भूल नही सकता था। प्रत्येक सस्थान का जैसे अपना कोई प्रतीक-चिह्न होता है, वैसे ही अनूपशहर की इस पवित्र सस्था के विराट् चित्र मे, पादप्रान्त से लगा हुआ एक छोटा-सा चित्र मेरे मन मे अनिवार्यतः उभर कर आता था—यह चित्र था छाता लगाए, मझोले कद के एक शान्त-सयत व्यक्ति का जिसने उन भव्य भवनो के निर्माण का वर्षा, आतप, हिम-शीत मे सतत निरीक्षण किया था। वे भवन आज से वर्षों पहले बनकर तैयार हो चुके—निरीक्षक की वह छत्रवती मूर्ति भी अब वहा नही है। परन्तु मेरी कल्पना मे एग्लो वैदिक हाई स्कूल का जो सुखद चित्र सदा के लिए अकित हो गया है उसमें महाशय जी की वह प्रतिच्छवि प्रतीक-चिह्न के रूप मे अभिन्न-रूप से खचित है। भेद केवल इतना है कि अन्य प्रतीक जहा किसी सस्थान की मूर्धा पर अकित होते है वहा आत्मदानी महाशय जी का चित्र इस सस्था के पादप्रान्त मे अधिष्ठित है।

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

स्वर्गीय भाई श्री दुर्गाप्रसादजी

डाक्टर हरिशंकर शर्मा, डी० लिट्०

बुलन्दशहर मे मेरे मित्र श्री गौरीदयाल शान्ति थे, जिनका स्वर्गवास हो गया। स्व० शान्ति जी ने ही सन् १९१२ ईस्वी मे स्व० श्री दुर्गाप्रसाद जी से मेरा परिचय कराया था। मै उन दिनो बुलन्दशहर ही रहता था। श्री प्रसाद जी अनूप-शहर से जब बुलन्दशहर आते तो मुझ से विना मिले न जाते। शान्ति जी, प्रसाद जी, और मै, हम तीनो ही समवयस्क नवयुवक थे। वार्तालाप का विषय धर्म, नैतिकता और हिन्दी प्रचार होता था। थे तो हम तीनों ही लड़के परन्तु बाते बूढो की सी करते और वैसी ही योजना बनाते थे। स्वर्गीय श्री प्रसाद जी के बुलन्दशहर नागरी-प्रचारिणी सभा में कई वार व्याख्यान भी कराये। यह सभा उन्ही दिनो स्थापित

हुई थी। उसके सस्थापन में इन पक्तियो के लेखक का भी 'यत्किचित्' सहयोग एव उद्योग था। भाई प्रसाद जी वडी गम्भीरता से अपने विचार व्यक्त करते थे। इन विचारो मे उनके अध्ययन, तथा चिन्तन की पर्याप्त मात्रा रहती थी। इस प्रकार स्वर्गीय प्रसाद जी से महीने मे दो तीन बार मिलना जुलना होता था। वडा आनन्द आता था इस मेल-मिलाप मे।

जब मैं सन् १९१६ ईस्वी मे "आर्यमित्र" का "सम्पादक" होकर आगरा आ गया तो मैंने भाई दुर्गाप्रसाद जी के कई लेख भी प्रकाशित किये। उनकी लेखन-शैली परिष्कृत थी। वे वडे सौम्य, सुशील और सभ्य थे। मिलने जुलने में विनयशील और स्नेही। एक बार आगरा पधारे, ठहरे तो कही और थे, परन्तु अचानक मुझसे मिलने आये। मैंने स्थानीय आर्य-समाज मोती कटरा में उनका प्रवचन कराया। और फिर आर्यमित्र सभा मे भी। आर्य-मित्र सभा नवयुवक कालिज छात्रो की एक प्रभाव शालिनी सस्था थी। प्रसाद जी की सौम्य भावनाओ से सब श्रोताओ को बडी प्रसन्नता हुई। उसी दिन मेरे घर पर एक साहित्यिक समिति की बैठक थी। आचार्य गुरुवर, स्वर्गीय प० पद्मसिंह शर्मा से मिलने के लिये। इस समिति मे साहित्यिक विचार धारा के रूप मे प्रसाद जी के मुख से जो शब्द नि सृत हुए उनको सबने बहुत पसन्द किया। भाई दुर्गाप्रसाद जी ने मुझे कई बार अनूपशहर आने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु मै न जा सका, इसका मुझे खेद रहा। वे मुझसे केवल डेढ दो वर्ष ही छोटे थे परन्तु अनुभव एव सेवा साधना में वडे।

भाई दुर्गाप्रसाद जी का जन्म २२ मार्च, १८९३ ईस्वी को हुआ था। आपके पूज्य पिता जी का शुभ नाम श्री लक्ष्मण प्रसाद जी था। स्व० दुर्गाप्रसाद जी की शिक्षा रावलपिण्डी, खुर्जा और आगरा में हुई थी। आगरा के वैश्य छात्रावास में निवास था। प्रारम्भ मे कुछ काल डी० ए० वी० कालिज, देहरादून में अध्यापन कार्य किया। २० वर्ष की आयु मे विवाह हुआ। आपके ज्येष्ठ पुत्र डाक्टर ओम् प्रकाश जी, एम० ए० पी० एच० डी० है। उनके दूसरे पुत्र श्री सत्यप्रकाश मिलिन्द साहित्यकार एव सुकवि है। सन् १९१५ ई० मे भाई दुर्गाप्रसाद जी ने अनूपशहर मे डी० ए० वी० हाई स्कूल की स्थापना की जो अब इण्टर कालिज है। इस शिक्षा-सस्था की सारी उन्नति-अभिवृद्धि में, भाई दुर्गाप्रसाद जी का ही हाथ रहा। वे अपने अन्तिम काल तक उसकी समुन्नति में सलग्न रहे। प्रसाद जी ने अपने स्वर्गीय पिता जी की प्राय सारी सम्पत्ति इस सस्था को सोत्साह एव सहर्ष समर्पित करदी। अनूपशहर मे रामस्वरूप आर्य कन्या पाठशाला की स्थापना भी भाई प्रसाद जी की प्रेरणा से ही हुई। और भी कई शिक्षण शालाए आपने स्थापित कराई। शिक्षा-प्रसार की आपको वडी लगन थी। इसी लिए सारा समय दे रखा था।

भाई दुर्गाप्रसाद जी आर्य-समाज के सच्चे सेवक और ऋषि दयानन्द के पक्के भक्त थे। उन्होने अपनी धर्म-भावना के अनुसार ही अपना जीवन भी पवित्र

एवं ऊचा बनाया था। आप अनूपशहर नगर-पालिका के चैयरमैन रहे और अनूपशहर आर्यसमाज के प्रधान पद पर वर्षो प्रतिष्ठित रहकर जनता की सात्विक सेवा करते रहे। आपको उत्तर प्रदेशीय सरकार "स्पेशल मजिस्ट्रेट" बनाना चाहती थी परन्तु आपने कई कारणो से यह सेवा स्वीकार नही की। दो शब्दो में भाई दुर्गाप्रसाद जी धर्म तथा सेवा-भाव-सम्पन्न सच्चे मानव थे। उन्होने शिक्षा प्रसार की दृष्टि से अमूल्य सेवाए की। धर्म-प्रचार में भी सदैव अग्रसर रहे, जन-सेवा उनके जीवन का व्रत था। वे बडे गम्भीर, धार्मिक, जन-सेवक, शिक्षा-शास्त्री और मनस्वी मानव थे। ऐसे बडे व्यक्ति का उठ जाना सार्वजनिक सेवा दृष्टि से वस्तुत. दुख की बात है। मेरा तो उनसे ५० वर्ष पुराना सम्बन्ध था। मै उनकी बडी श्रद्धा करता था। वे मेरे छोटे भाई थे परन्तु क्रिया शीलता में बहुत बड़े।

लोहा मण्डी,
आगरा।

महाशय जी

प्रोफेसर प्रकाश चन्द्र गुप्त,

मै तहसीली स्कूल अनूपशहर मे पढता था। मेरे एक चचेरे भाई, श्री रघुवीर शरण गुप्त एग्लो वैदिक स्कूल अनूपशहर में पढते थे। वे मुझे बताते थे कि अग्रेजी स्कूल में इस प्रकार की कठोरता नही होती, जैसी तहसीली स्कूल में होती थी। मैने जिद की कि मै भी अग्रेजी स्कूल में पढूगा। फलत सन् १९१८ के लगभग, जब प्रथम महासमर का अन्त हो रहा था, मै एग्लो वैदिक स्कूल में भर्ती हो गया। मै तीसरी कक्षा में बैठने लगा यद्यपि अवस्था कम होने के कारण मेरा नाम स्कूल मे न लिखा जा सका। उन दिनो स्कूल मे कोई हैड मास्टर न थे और स्वय महाशय जी इस कर्त्तव्य को पूरा कर रहे थे। रिश्ते में वे मेरे कुछ दूर के मामा लगते थे अतएव मै सदा ही प्रचुर मात्रा मे उनसे स्नेह पा सका।

मै उनके घर जा कर बराबर खेलता था। मामी भी मुझसे घर के बच्चो के समान व्यवहार करती थी। महाशय जी मेरी चाची के फुफेरे भाई थे किन्तु चाची के साथ उनका बर्ताव सगे भाई के समान था। उस जमाने मे स्कूल सराय में था। बाद में श्री होती लाल हैडमास्टर होकर आये। उन्होने अपने को पूर्ण रूप से स्कूल के वातावरण मे डुबो दिया था।

बाद में नई इमारतें बनी। स्कूल सराय से हट कर नगर के बाहरी भाग में जा पहुचा। महाशय जी भी गगा के मार्ग वाला घर छोड कर स्कूल के प्रागण में पहुच गये थे। अब तक और भी अनेक परिवर्तन हो चुके होगे, जिनका मुझे ज्ञान

नही है। सन् १९२१ के लगभग जब मैं छटी कक्षा मे पढता था, मैंने अनूपशहर छोड़ा, और बडी अभिलाषा रखते हुए भी फिर वहा वापिस नही जा सका हूँ।

इस बीच महाशय जी और उनके परिवार से मेरा स्नेह सम्बन्ध बराबर बना रहा है। महाशय जी चाहते थे कि मैं अनूपशहर जाकर अपने पुराने स्कूल की, जो अब कालिज बन चुका था, सेवा करू। साहित्य मे अति दिलचस्पी रहने के कारण मैं प्रयाग न छोड सका।

पुरानी स्मृतिया मन मे उठती हैं। सराय की छत पर स्थान की कमी के कारण फूस छाकर क्लास रूम बनाये थे। जब हम लोग खेल के मैदान में थे, खबर मिली कि फूस मे आग लग गई। पूरा स्कूल सराय की ओर दौडा। सबसे आगे महाशय जी और हैडमास्टर साहब थे। कितनी स्फूर्ति और आतुरता उस दौड़ मे थी।

याद आती है महाशय जी के सौम्य व्यक्तित्व की। धोती, सिल्क का लम्बा कोट, किस्ती की फैल्ट टोपी, बेंत, मधुर गभीर स्वभाव। शायद और छात्र उनसे डरते हो किन्तु मैं तो उन्हें "मामा जी" कहता था और उनका व्यवहार मेरे प्रति सदा ही स्नेह-सिक्त था।

सन् १९३०-३१ की बात है, मैं इलाहाबाद में एम० ए० फाइनल अंग्रेजी की कक्षा मे था। महाशय जी एक दिन अनायास ही मुझसे मिलने होस्टल आये। सिर पर रेशमी साफा बाधे थे। यही एक परिवर्तन मैंने देखा।

इसके बाद उनके दर्शन न हुए। किन्तु पत्र-व्यवहार बराबर बना रहा। जब उनके छोटे पुत्र मिलिन्द यूनीवर्सिटी मे पढने आये उनसे भी महाशय जी और पुराने स्कूल का हाल-चाल मिलता रहा।

सन् १९५३-५४ के करीब मुझे उनका गश्ती पत्र मिला जिसमें स्कूल के पुराने छात्रो से विज्ञान-शिक्षा के भवन के लिये सहायता की अपील थी। पत्र में लिखा था, "अब मैं वृद्ध हो गया हू और अपने जीवन मे अन्तिम बार आपसे स्कूल की सहायता के लिये धन माग रहा हू।" मैं यह कल्पना नही कर सकता कि स्कूल का कोई भी पुराना विद्यार्थी इस अपील की अवहेलना कर सका होगा।

महाशय जी का जीवन एकनिष्ठ सेवा और साधना का जीवन था। उन्ही के समान साधको ने हमारे देश की शिक्षा की परिधि का विस्तार किया है। ऐंग्लो-वैदिक कालिज के इतिहास मे तो उनका नाम स्वर्ण अक्षरो मे अकित रहेगा ही उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विदो मे भी उनका स्थान आदर और सम्मान से लिया जायगा।

महाशय जी आदर्श गृहपति और योग्य पिता थे। परिवार के कल्याण के लिये वे सदा चिन्तित रहते थे। जिन्हें भी जीवन मे उनसे स्नेह मिला—और इनकी सख्या अगणित होगी—वे उन्हे कभी न भूल सकेंगे।

सन् १९२१ के बाद एक बार ही मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। किन्तु लगता रहा कि वे मेरे अत्यन्त समीप हैं। अब उनकी जीवन-लीला पूरी हो चुकी किन्तु मुझे यही लगता है कि अब भी वे मेरे समीप खडे अपने सत्परामर्श से मेरा पथ-सचालन कर रहे हैं।

अंग्रेजी विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

लाला दुर्गाप्रसाद जी

श्री बाबू मुरलीधर जी डालमिया

अनूपशहर निवासी श्री लाला दुर्गाप्रसाद जी से सबसे पहली बार मेरा परिचय सन् १९५५ मे हुआ था। एक दिन यकायक श्री मिलिद का फोन मिला कि उनके छोटे भाई की शादी है और वह मुझे लेने के लिये आ रहे हैं। उसी समय वह मुझे अपने साथ लिवा ले गये थे और उन्होने मेरा परिचय अपने पिता श्री० लाला दुर्गाप्रसाद जी से भी कराया था।

इसके उपरान्त वे मुझसे तीन चार बार मिले। मुझे स्मरण पडता है कि एक बार उन्होने मुझ से अपने पिता जी की स्मृति में स्थापित लक्ष्मण प्रसाद कालेज के सस्थापक दिवस की अध्यक्षता करने का भी अनुरोध किया था, तब ही मैंने यह अनुभव किया था कि वे बडे ही सहृदय, सरल और सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे और उनमें त्याग की भावना और शिक्षा का प्रेम कूट-कूट कर भरा था। इन सद्‌गुणो के कारण ही तो उन्होने अपने जीवन की सम्पत्ति का अधिकाश भाग दान देकर अपने गाव में शिक्षा सस्थाए चालू की हुई थी।

गत वर्ष उनका सहसा निधन हो गया। मुझे इस बात का दु.ख रहा कि मै, उनके जीवन काल मे, व्यस्त अधिक रहने के कारण उनके द्‌वारा संस्थापित और सचालित सस्थाओ को न देख सका पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि उन सस्थाओ को श्री मिलिद और उनके दोनो भाई सुचारु रूप से चलाते रहेगे। दिवगत आत्मा के प्रति मैं अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।'

एक्जीक्यूटिव प्रेसीडण्ट,
बिड़ला कॉटन मिल्स
दिल्ली ६,।

जब स्वर्गीय बाबूजी ने मुझे 'चार सौ बीस' समझा।

प्रोफेसर भारतभूषण 'सरोज'

आज से लगभग उन्नीस वर्ष पूर्व १९४३ मे मैंने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। परीक्षा-परिणाम विलम्व से प्रकाशित हुआ था। मैं निराश था, कही भी प्रार्थना-पत्र भेजने का समय वीत चुका था। अचानक मुझे एक तार मिला, 'हमारे कॉलेज मे हिन्दी—प्राध्यापक का स्थान रिक्त है यदि आ सकें तो आ जाइए'। दूसरे दिन भाई सुधीन्द्र जी मेरे पास पधारे और वोले मै तुम्हे लेने आया हूँ। अनूपशहर इण्टर कॉलेज के मैनेजर साहव ने भेजा है। मेरा प्रश्न था—उनसे तो मेरा परिचय है नही, यह कृपा उन्होने कैसे की ? वोले वहाँ चल कर ज्ञात हो जायेगा। मैंने स्वीकृति का पत्र लिख भेजा और सात जूलाई १९४३ को अनूपशहर जा पहुचा।

दिन बीतते गये। मैनेजर साहव मेरे लिए अब मैनेजर साहव नही रह गये थे। वे अब वन गये थे मेरे परम श्रद्धेय पिता और मैं था उनका पुत्र। उनसे मैंने जितना वात्सल्य पाया वह औरो के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है। एक दिन मैं उनसे पूछ ही वैठा—आपसे मेरा कोई परिचय नही था, फिर मेरा पता आपने कैसे जाना और आपने इतना विश्वास कैसे कर लिया कि मै योग्य सिद्ध होऊँगा जो आपने विना मिले ही तार द्वारा नियुक्ति कर दी। वोले—कॉलेज ही मेरा जीवन है। कॉलेज को फलता-फूलता देखता हूँ तो जीवन को धन्य मानता हूँ। मेरा सदा यह प्रयत्न रहता है कि कॉलेज मे योग्यतम व्यक्ति आवे। मै प्राय: सभी विश्वविद्यालयो के 'गज़ट' देखता हूँ। प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पता लगाता हूँ और उसे लाने का यत्न करता हूँ। तुम्हारा पता तुम्हारे साहित्यरत्न के एक छात्र से मिल गया था। कुछ रुके—मुस्कराए और वोले—पर जव तुम्हारा पहला स्वीकृति सूचक पत्र मुझे मिला तव मुझे लगा—यह व्यक्ति 'चार-सौ-वीस' न हो। इसका एक कारण था तुम्हारे पत्र पर ऊपर छपा था, 'सरोज-सदन, सरोज लेन, गोकुलपुरा आगरा'। मुझे लगा—इन्होंने अभी एम० ए० की परीक्षा दी है। अधिक आयु भी नही है। इतने प्रसिद्ध व्यक्ति तो है नहीं कि म्युनिसिपैलिटी इनके नाम पर गली का नाम 'सरोज लेन' रखे। यह इनके द्वारा कोई चार-सौ-वीस की गई है। मैं उनका अन्तरग था। कुछ झिझकता-सा वोला—वावूजी हूँ तो चार-सौ-वीस ही, देखिए न आप थे तो मैनेजर साहव पर मैंने आपको वना लिया पिताजी। वे थोडा मुस्करा दिए। उनकी वह मधुर और निश्छल मुस्कान आज भी हृदयाकाश में विद्युत-सी कौंध जाती है।

अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग,
रामजस कॉलेज, दिल्ली।

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा

श्री प्यारेलाल शर्मा

किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है —

"हज़ारो साल नरगिस अपनी नाकामी पै रोती है
बडी मुशकिल से होता है चमन मे दीदावर पैदा।"

यो तो दुनिया मे रोज़ लाखो की तादाद मे पैदा होते हे और मरते है, परन्तु समाज कल्याण के लिए जीवन खपाने वाली हस्तियाँ कभी-कभी ही पैदा होती है। श्रद्धेय श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के जीवन की कहानी भी ठीक इसी से मिलती है। एक ऐसी जगह पर जहाँ दूर-दूर तक शिक्षा का कोई स्थान नही था, अग्रेजी पत्रो को दूसरी जगह ले जाकर पढवाया जाता था और बहुत से आस-पास के ग्रामो की तो यह अवस्था थी कि वहाँ हिन्दी के पत्रों तक को पढवाने व लिखवाने के लिये बडी भारी परेशानी का सामना करना पड़ता था, उस तपस्वी महात्मा ने जिसकी रग-रग मे समाज सेवा का उत्साह भरा हुआ था, इस कमी को बडे दुख के साथ अनुभव किया। समाज की हालत इतनी बिगडी हुई थी कि अनूपशहर मे स्वागो के नाम पर हर साल हजारो ही नही लाखो रुपये बरबाद हो जाते थे; परन्तु विद्या या शिक्षा के नाम पर कोई दुअन्नी देने वाला तक नही था। पर वाह रे, महापुरुष! पिता जी मृत्यु-शय्या पर बुलाते है और कहते हे कि यह रुपया जो मैने अपनी कमाई से इकट्ठा किया है तुम्हारे नाम कर रहा हूँ तो उत्तर दिया कि पिता जी——

पुत्र सुपुत्र न धन सचय
और पुत्र कुपुत्र न धन सचय

यह नारा उनके नाम से अनूपशहर के आस-पास के इलाके में आज भी गूज रहा है।

मुझे इस पैसे की जरूरत नही है। क्यो न यह सारा रुपया शिक्षा के हेतु दान कर दिया जावे। बस फिर क्या था—अनूपशहर मे जो गगा के किनारे एक तीर्थ होने के नाते प्रसिद्ध था, विद्या मन्दिर के इस भव्य-भवन का निर्माण होना शुरू हो गया और दूर-दूर से विद्यार्थी इस मन्दिर मे शिक्षा प्राप्त करने के हेतु आने लगे।

मै बाबू जी के प्रति बचपन से ही प्रगाढ आस्था रखता था और उनके लिए मेरे अन्तर्मानस मे अपरिसीम श्रद्धा थी। मै राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनो मे जब कभी भी दिल्ली से छिपकर भागा तब तब मुझे बाबू जी के दत्तचित्त एकान्त प्रिय व्यक्तित्व की याद आती और प्रेरणा प्राप्त होती रहती।

१९४४ मे मिलिंद जी विडला मिल में आ गये और फिर तो मै बाबू जी के नित्य प्रति निकट से निकटतर और अन्तत. निकटतम आ गया था।

वावू जी की विचार-धारा राष्ट्रीय थी। उस समय की गोरी नौकरशाही के घोर आतकवाद का सहर्ष मुकावला करते हुए विद्यालय सैकडो कष्टो को सहन करते हुए भी अपनी मजिल पर वरावर आगे वढता ही रहा और वावू जी ने अपना सारा जीवन उसी मन्दिर की पूजा के लिए अर्पित कर दिया। जव स्कूल शान से चलने लगा तो फिर उस बूढे कर्मयोगी का ध्यान कन्याओ की ओर गया और उन्होने एक गर्ल्स स्कूल की स्थापना की जो आज इण्टर तक शिक्षा प्रदान करता है। वे अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम दिन तक दोनो सस्थाओ का भार खुशी के साथ उठाते रहे और अपने लगाए हुए पौधो को फलता-फूलता देख कर भारी सन्तोष प्राप्त करते रहे। युवा काल में ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया था। वहुत ही छोटे-छोटे वच्चे थे परन्तु उस महापुरुष ने अपने तथा वच्चो के आराम का ध्यान करते हुए शेष जीवन स्कूलो की सेवा में लगाया। कितना सादा जीवन, तपस्वियो जैसे आचार-विचार और महान कर्मयोगी की तरह निष्काम सेवा की अटूट भावना परन्तु विधाता के नियम को कौन टाल सका है? अचानक वीमार हो गये और अचानक ही अनूपशहर की पूरी तहसील भर के हृदय में एक न मिटने वाला गम देकर इस असार ससार को छोड कर चल दिये। आज सारे इलाके के निवासी ही नही रो रहे वल्कि विद्यालय की दरो-दीवार भी उनके वियोग में रो रही है। हम तो भगवान् से यह प्रार्थना करते है कि भगवान् करे उनके लगाये हुए वृक्ष सदा फूलते-फलते रहें। मै वावू जी के दूसरे पुत्र श्री मिलिंद का भी धन्यवाद किए विना नही रह सका जिन्होने कि हमारे अनुरोध पर इस ग्रन्थ को सपादित करने का भार अपने ऊपर ओट लिया है। मुझे आशा है कि यह महान् ग्रन्थ उस दिवगत की पुण्य स्मृति की सदैव याद दिलाता रहेगा।

म्युनिसिपल काउसिलर,
दिल्ली–६।

एक प्रभावशाली व्यक्तित्व

श्री विश्वम्भर 'मानव'

यह मेरा सौभाग्य है कि जीवन में मुझे सदैव अच्छे अध्यापक मिलते रहे। उनमे वावू दुर्गाप्रसाद जी तो एक अविस्मरणीय व्यक्ति थे। वात सन् १९२८ और १९३२ के वीच की है। तव यह कॉलेज ए० वी० हाई स्कूल के नाम से प्रसिद्ध था। उन दिनो मै वहाँ हाई स्कूल करने आया था। वावू जी स्कूल में अध्यापक नही, उसके मैनेजर थे, पर मेरा उनका पहला सम्पर्क एक अध्यापक और विद्यार्थी के रूप में ही हुआ। स्कूल से जव कोई अध्यापक अधिक दिन की छुट्टी ले लेता था और शीघ्रता मे कोई प्रवध नही हो पाता था, तो वे कभी-कभी पढाने चले आते थे। एक दिन जव

मै क्लास मे घुसा तो वहाँ एक दम शाति पाई। वातावरण गभीर था। पता चला हमारे मैनेजर साहव पढाने आए है। घण्टा समाप्त हुआ तो इच्छा हुई कि पुराने अध्यापक न लौटें, तो अच्छा हो। लेकिन यह तो सभव नही था। आश्चर्य की बात यह थी कि हम सभी व्याकरण पढने से जी चुराते थे और बाबू जी अग्रेजी-व्याकरण के विशेषज्ञ थे। व्याकरण वे इस प्रकार समझाते थे जैसे कोई कविता का अर्थ समझाता हो। उसी सामान्य परिचय के आधार पर शायद ही उनके किसी विद्यार्थी ने अग्रेजी लिखने अथवा बोलने मे हीनता का अनुभव किया हो। वे अपने विद्यार्थी को इतनी शक्ति दे देते थे, जिससे उसे ऐसा विश्वास हो जाता था कि वह चाहे किसी और विषय मे अनुत्तीर्ण हो जाय, पर अग्रेज़ी मे कभी फेल नही हो सकता। अच्छे अध्यापक से मेरा तात्पर्य यही था।

बाबू दुर्गाप्रसाद आर्यसमाज के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता थे और मनुष्य के आचरण पर बहुत ज़ोर देते थे। सयोग की बात है कि उन्हे श्री होतीलाल व्रती जैसे हैडमास्टर भी मिल गये थे। हम लोग होस्टल मे रहते थे। उसकी छत पर सामूहिक रूप से 'सध्या' होती थी। हैडमास्टर तो उसमे सम्मिलित होते ही थे, कभी-कभी बाबू जी भी घूमते-फिरते उधर आ निकलते थे। उस समय उनका छोटा-सा भाषण बडा प्रभावशाली होता था।

हमारे एक 'क्लासफैलो' थे जिन्हे मै कभी विस्मरण नही कर सकता। सदा मिलनसार, परिश्रमी। वे बहुत साधारण वेशभूषा मे रहते थे, पर अपने चरित्र के कारण उस अवस्था में भी सभी की दृष्टि आकर्षित करते थे। उनके सबध में यह प्रसिद्ध था कि वे कभी झूठ नही बोलते। स्कूल के लडके शरारती होते ही है अत. वे कुछ-न-कुछ ऊधम मचाते ही रहते थे। वैसी दशा में वास्तविक बात का पता लगाने के लिए बात आकर टूटती थी हमारे मित्र पर। जब उन्हें कोई बात नही बतानी होती थी, तो वे चुप हो जाते थे, पर झूठ किसी भी दशा में नही बोलते थे। नाम उनका ओम्प्रकाश था और बाद मे मुझे पता चला कि वे बाबू दुर्गाप्रसाद जी के सुपुत्र है। इस प्रसग को मैने इसलिए उठाया कि बाबू जी केवल बाहर के आदमियो को ही उपदेश नही देते थे, वे अपने बच्चो को भी आदर्श के साचे में ढालने का प्रयत्न करते थे। उनके परिवार के अन्य सदस्यो से मेरी कभी भेंट नही हो पाई, पर ओम्प्रकाश जी को मैने देखा और परखा है। जिन दिनो मै अध्यापन का काम करता था, उन दिनो उनकी चर्चा एक आदर्श विद्यार्थी के रूप मे प्राय. करता रहता था।

मै छोटी कक्षा का विद्यार्थी था और बाबू दुर्गाप्रसाद जी स्कूल के व्यवस्थापक, अत उनसे बातचीत करने मे डर लगता था। एक दिन साहस करके मै उनके निकट जा खड़ा हुआ। बुद्धि अपरिपक्व थी और जीवन का अनुभव कुछ था नही। फिर भी न जाने कितने प्रश्न उस दिन मैने उनसे किये। प्रश्न जीवन की कठिनाइयो को लेकर ही थे। तर्क करने का मेरा प्रारभ से ही स्वभाव था, लेकिन वे बडे सयम से उत्तर देते रहे। उस वाद-विवाद में से एक बात मै कभी नही भुला पाया। उन्होने कहा था,

"चरित्रहीन व्यक्ति से कभी भी भयभीत होने की आवश्यकता नही है"। जीवन में अकारण मेरा बहुत विरोध हुआ है और हानि भी मैंने कम नही उठाई, लेकिन मेरे बहुत से सस्कारो मे एक सस्कार किसी से भी न डरने का है। और वह कहाँ से आया है, इसके सूत्र का जब एक दिन मैंने पता लगाना चाहा तो किशोरावस्था की अपनी प्रिय सस्था और उसके मनोबल-सम्पन्न मैनेजर की याद मेरे अत.करण मे सहसा विद्युत-सी कौंध उठी।

इलाहाबाद।

वह पुनीत आत्मा

डाक्टर स्वरूप सिह, एम० ए०, पी-एच० डी०

पारस्परिक वैमनस्य, द्वेष, स्वार्थपरता तथा अन्य सकुचित मनोवृत्तियो के विषाक्त वातावरण से आवृत इस ससार में कुछ बिरले ही ऐसे होते हैं जो उदात्त आदर्शों से अनुप्राणित होकर उन्हे अपने जीवन में ढालने की कोशिश करते हैं। कुछ व्यक्ति अपने देश क्या समस्त विश्व को प्रगति की एक नई दिशा देते हैं किन्तु हमें उन्हें भी नही भूलना चाहिए जिन्होने अपने सीमित कार्यक्षेत्र में ही अपनी सारी शक्ति लगा कर जन-जीवन में नई चेतना और एक नई स्फूर्ति भरने का पावन व्रत लिया हो। बाबू दुर्गाप्रसाद जी ऐसे ही व्यक्ति थे। उनका यह दृढ सकल्प था कि वह अधिक-से-अधिक व्यक्तियो को विकासोन्मुख और प्रबुद्ध बना सकें। छोटे बच्चो से उन्हें असीम स्नेह था और उन्हें शिक्षित करना अपने जीवन का परम ध्येय समझते थे। उस दिन उनका एक स्वप्न ही साकार हुआ था जब उन्होने अनूपशहर में एल० डी० ए०, वी० विद्यालय की स्थापना की। उनके स्वभाव की मृदुता उन सभी को विदित है जो उनके सम्पर्क में आये। मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ है कि कालिज-पत्रिका "ज्योत्स्ना" उनके सम्मान मे, "बाबू दुर्गाप्रसाद स्मृति विशेषाक" निकाल रही है। मेरी यह कामना है कि दिवगत आत्मा की पावन स्मृति सदैव ही अनूपशहर के नगर-निवासियो के लिए प्रेरणा का अमर स्रोत बनी रहे और उन्हें आगे बढने की शक्ति दे।

प्रिंसिपल
करोड़ीमल कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

स्वर्गीय महाशय दुर्गाप्रसाद जी

श्री गगाप्रसाद महता एम० ए०

मेरे परम श्रद्धेय मित्र महाशय दुर्गाप्रसाद जी के आकस्मिक निधन का समाचार सुन कर मुझे अत्यन्त शोक हुआ। मेरा उनका सम्मिलन प्रथम बार सन् १९१४ मे हुआ था जब उनके पूज्य पिता जी और देहरादून के डी० ए० वी० स्कूल के हैडमास्टर श्री लक्ष्मणप्रसाद जी एम० ए० एक शिक्षण सस्था की स्थापना का उद्देश्य लेकर अनूपशहर पधारे थे। अनूपशहर महाशय दुर्गाप्रसाद जी के पूर्वजो की जन्म-भूमि थी। उनके पिता स्वर्गीय लाला लक्ष्मणप्रसाद जी अपनी रेलवे की नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् विद्या-दान की पुण्य भावना से प्रेरित होकर, अपनी कमाई का अधिकाँश देने का सकल्प कर, अपनी पुण्य जन्म-भूमि की सेवा में तन, मन, धन से तत्पर हो गये।

अनूपशहर में उस समय अग्रेजी शिक्षा का कोई हाई स्कूल नही था। हम लोगो ने आपस मे चन्दा करके एक मिडिल स्कूल चला रखा था जिसकी आर्थिक स्थिति बडी डावाडोल रहती थी। जब कोई बडा आदमी या अफसर अनूपशहर में आता तभी उस स्कूल की प्रबन्ध समिति उसे मान-पत्र देकर स्कूल के लिये चन्दे की सहायता मागती किन्तु इस प्रकार की आकाशीय वृत्ति से वह स्कूल दृढ भिति पर खडा न हो सका। इस आर्थिक कष्ट के कारण मुझे सन् १९१४ में अपनी एम० ए० परीक्षा का अध्ययन स्थगित कर इस सस्था के सचालन का भार अपने ऊपर लेना पडा। यह मेरा तथा सस्था का सौभाग्य था कि इसी वर्ष हमें बाबू लक्ष्मणप्रसाद जी का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। उनकी समर्पित निधि के आधार पर एक नई प्रबन्ध समिति सगठित हुई जिसके सचालन मे अनूपशहर के प्रमुख नागरिको ने बडे उत्साह से अपना सहयोग दिया। दानवीर लाला लक्ष्मणप्रसाद जी द्वारा समर्पित निधि का एक आजीवन ट्रस्टी मनोनीत होने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। एक हाईस्कूल के सचालनार्थ स्थायी कोष बनाकर उसके निर्माण और उन्नति की सागोपाग व्यवस्था करने का बहुत कुछ श्रेय स्वर्गीय लाला लक्ष्मणप्रसाद जी को है। किन्तु इससे भी अधिक बहुमूल्य अवदान तो यही था कि उन्होने अपने प्रिय पुत्र और उत्तराधिकारी महाशय दुर्गाप्रसाद जी को अपनी स्थापित शिक्षण-सस्था की आजीवन सेवा और सवर्धन करने की प्रेरणा दी। अपने पूज्य पिता के आदेश को महाशय जी ने सर्वात्मना—तन, मन, धन से कार्यान्वित किया। यदि वे चाहते तो किसी दूसरे व्यवसाय या कार्यक्षेत्र में उन्हे लगा कर अपने कुटुम्ब की सुख-समृद्धि के विपुल साधन चिरकाल के लिए जुटा सकते थे। किन्तु उनका परम अभीष्ट तो अपने जीवन मे सच्चा आत्मोत्सर्ग करना ही था।

महाशय दुर्गाप्रसाद जी ने ४५ वर्ष तक अपने अनूपशहर के विद्यालय की निरन्तर सेवा की, उसकी उन्नति और विस्तार में वे नि स्वार्थ भाव से सदा मलग्न



बाबू जी के पिता जी



बाबू जी स्वर्गारोहण से दस वर्ष पूर्व



बाबू जी के
अग्रज
स्व० श्री भगवत् प्रसाद जी



बाबू जी
आगरा कालिज के विद्यार्थी
के रूप मे
(ग्रुप फोटो से उद्धृत)

रहे। वे उस संस्था के सचमुच प्राण और प्रकाश-स्तम्भ थे। वे स्कूल के अध्यापकों के लिए कर्त्तव्य निष्ठा की प्रेरणा के अजस्र स्रोत थे। मैंने उन्हें सदा विद्यालय की अभिवृद्धि की विविध योजनाओं को पूरा करने में प्रयत्नशील पाया। वे अपनी मितव्ययता और हिकमत अमली से उस निर्माण कार्य को जो दूसरे लोग विपुल धन से कर पाते कम-से-कम द्रव्य से कर लेते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे क्रमशः उन्होंने स्कूल, छात्रावास, कालिज, लाइब्रेरी, विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, व्यायामशाला, खेल के मैदान, कन्या पाठशाला आदि के निर्माण-कार्य स्वयं अपनी देख-रेख में सुचारू रूप से सम्पन्न किये। निःसन्देह अपने अथक परिश्रम और लगन से उन्होंने एक विशाल विद्या मन्दिर का निर्माण कर अनूपशहर की जनता का महान् उपकार किया। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी सुन्दर कृति और कीर्ति चिरकाल तक उस प्रदेश में जीवित रहेगी। "कीर्तिर्यस्य स जीवति"—सुकृतोपार्जित कीर्ति जिसे मिली हो वह जीता है मरता नहीं—"To live in minds we leave behind is not to die".

मित्रवर महाशय जी का भौतिक शरीर न भी रहा हो तथापि उनका यशः-शरीर अनूपशहर के सुन्दर विद्यापीठ के रूप में चिरकाल तक रहेगा। जैसे एक सुपुष्पित वृक्ष की गन्ध दूर-दूर तक फैलती है वैसे ही पुण्य कर्म का सौरभ दीर्घ काल तक व्याप्त रहता है। महाशय जी के व्यक्तित्व में अनेक असाधारण गुण थे। वे बड़े ही विनम्र, निरभिमान, मितभाषी, शिष्टाचार और सौजन्य की मूर्ति थे। अपने नगर के सार्वजनिक कार्यों में सहयोग देने के लिए वे सदा उद्यत रहते थे। उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए हमारी यही प्रार्थना है कि परम पिता परमात्मा परलोक में उन्हें शाश्वत सुख और शान्ति दें और इस लोक में उनके सरोपित पुण्यमय पादप को पल्लवित और पुष्पित करते रहें।

भूतपूर्व रजिस्ट्रार,
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,
कलकत्ता।

मैं भी अनाथ हो गया

साहू कृष्णकुमार*

मैं साहू दुर्गा प्रसाद जी के सम्पर्क में सबसे पहली बार तब आया जब उनकी सबसे बड़ी पुत्री शान्ता जी का मेरे साथ सन् १९३४ में विवाह हुआ। दुर्भाग्य की

* श्रद्धेय साहू कृष्णकुमार जी हमारे बोर्ड आफ ट्रस्टीज के सम्मानित सदस्य हैं और स्वर्गीय बाबू जी के ये सबसे बड़े जामाता हैं। —सम्पादक मंडल

बात है कि आज न शान्ता जी ही हैं, और न परम श्रद्धेय पिताजी—साहू दुर्गाप्रसाद साहिब ही।

राजनीतिक जन-सेवा और विशेषकर शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में उस अमर सेनानी के ओजपूर्ण व्यक्तित्व, उनकी ज्वलत देश भक्ति, प्रखर लेखनी, सर्वमान्य निडरता तथा सहज निष्पक्षता के प्रति आज हर व्यक्ति का सिर श्रद्धा से झुक जाता है।

साहू साहिब केवल उच्चकोटि के शिक्षाविद् ही न थे; नवयुवको के वे सच्चे हितैषी भी थे। अनेको नवयुवको को उन्होने अनुप्राणित किया, आश्रय प्रदान किया और उनको सदा सदा के लिए योग्य बना दिया।

बरेली वे बहुत ही कम आये और मैं भी इन पिछले २६-२७ वर्षों में केवल एक या दो बार ही अनूपशहर गया पर उनके पत्रो का यदि मै सकलन करता तो शायद एक बहुत सुन्दर और स्थायी ग्रन्थ बन जाता।

आस्तिकता उनमें हद दर्जे की थी। गभीर चिन्तन और निष्पक्ष निर्णय की क्षमता अद्वितीय। कट्टर आर्यसमाजी थे पर सहिष्णु इतने अधिक थे कि शान्ता जी की शादी मेरे साथ की जब कि हमारा परिवार प्रदेश का कट्टर सनातन धर्मी परिवार था।

जिस महर्षि और मनीषी ने निरतर ५० वर्ष तक समाज सेवा की हो और जो सगठन, शिक्षा प्रसार और जनहित के कामो मे व्यस्त रहा हो उसके प्रति कौन अभागा आदर के साथ अपना सिर नही झुकाएगा।

आज मुझे यह अनुभव करके बेहद सूना लगता है कि अब पिताजी के दर्शन नही होगे। आज से ठीक एक वर्ष पूर्व भाई मिलिंद जी का तार आते ही तो मैं डाक्टर महाजन के नर्सिंग होम में पहुचा था। भाई महावीर प्रसाद जी, मिलिंद जी ओम् जी व बुद्धि जी वहा चिन्तित मुद्रा में बैठे थे। मै समझ गया। अन्दर पहुचा तो पिता जी ने मुझे पहचान लिया और बहुत ही धीमे स्वर मे बोले, "आपने क्यो तकलीफ की"।

मेरी तकलीफ का अन्तिम क्षण तक ध्यान रखने वाला वह अनासक्त योगी आज पार्थिव रूप से हमारे बीच नही रहा।

एक चित्र उभर आता है—मेरी पत्नी शान्ता मृत्यु-शय्या पर पडी हो, भाई मिलिंद जी तथा मेरे दोनो ही पुत्र—आनन्द और राजे शोकाकुल हो रहे हो, पर वाह रे पिताजी! कितने अभूतपूर्व धैर्य और शान्ति के साथ वे मौन आखें मीचे शान्त चित्र-लिखित से अपनी मरणासन्न पुत्री के पास बैठे थे।

आज मानवता का वह अनन्त पुजारी भाग्य के प्रहार के हाथ खेत रहा।

लेकिन आज भी उनके तेजपूर्ण नेत्र, सुन्दर मुखाकृति और आकर्षक व्यक्तित्व हमारी आखो के आगे घूम रहे हैं।

जीवन के प्रति पूर्ण-रूपेण अनासक्त उस महान् योगी की आखो से चूने वाली करुणा और उनकी बेहद पैनी दृष्टि आज भी हमें प्रेरणा प्रदान कर रही है कि हम उस मार्ग का हृदय से अनुकरण करें जो उन्होने दिखाया है।

मैंने साहू साहिब के चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखा है। हे राम ! अब मैं भी अनाथ हो गया।

लाइफ स्पेशल मजिस्ट्रेट,
५० सिविल लाइन्स,
बरेली।

श्रद्धेय बाबू जी का जीवन कार्य

श्री महेश चन्द्र अग्रवाल

आज से लगभग ६ वर्ष पूर्व जब प्रथम बार मुझे भाई मिलिंद जी के यहा पूज्य स्वर्गीय बाबू दुर्गा प्रसाद जी के प्रथम बार दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वास्तविकता एव वात्सल्य से परिपूर्ण उनके हार्दिक स्नेह ने मुझे बरबस उनकी ओर आकर्षित किया और मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं उनका अपना हूँ और बहुत दिनो से निकट से परिचित हू।

उनकी आत्मीयता, सौजन्य, सरलता, सहिष्णुता, सत्यता एवं सच्चरित्रता की अमिट छाप मेरे हृदय-पटल पर अंकित है।

सार्वजनिक क्षेत्र में उनकी परोपकारिता का ज्वलत उदाहरण उनके द्वारा की गई नागरिक सेवाओ मे देखने को मिलता है। स्थानीय निगम के अध्यक्ष के नाते अनूपशहर को अनुपम एव विद्या केन्द्र बनाने में उन्होने अद्वितीय कार्य किया। अनेक शिक्षा सस्थाओ को जन्म देकर तथा उनको उनकी वर्तमान गौरव-पूर्ण एव सुदृढ़-स्थिति तक पहुचाने में उनके मेधावी एवं कर्मठ व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है।

स्वर्गीय बाबू जी का उज्ज्वल एव पवित्र चरित्र तथा उनकी कर्तव्य-परायणता सामाजिक कार्य-कर्ताओ के लिये प्रकाश-स्तम्भ के समान है।

मुझे आशा ही नही विश्वास है कि प्रसिद्ध कवि लौगफैलो के कथनानुसार

"Lives of great-men all remind us,
We can make our lives sublime."

बाबू जी के जीवन चरित्र से हमे अपना जीवन निर्मल बनाने की सदैव प्रेरणा मिलती रहेगी ।

उनके प्रति हमारी वास्तविक श्रद्धाजलि यही होगी कि उनके दिखाये गये रास्ते पर चलकर हम जनता जनार्दन की स्वार्थ-रहित सेवा करे ।

समाज शिक्षा अधिकारी,
नगर निगम, दिल्ली ।

महाशय जी का सम्पर्क

श्री नवल किशोर भरतिया

मुझे २ वर्ष, सन् १९१८ की जूलाई से सन् १९२० के जून तक ए० वी० हाई स्कूल, अनूपशहर में अध्यापन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय चाहे स्कूल के प्रबन्धक के रूप मे स्वर्गीय लाला लक्ष्मण प्रसाद जी प्रसिद्ध थे, किन्तु वास्तव मे इस शिक्षण सस्था के प्राण-मत्री के रूप में परलोक निवासी श्री महाशय दुर्गाप्रसाद जी ही थे । मैं छात्रावास का प्रवन्धक भी था। परलोक वासी महाशय जी छात्रावास के समीप ही निवास भी करते थे। उनकी दैनिक जीवनचर्या देखी, उनकी अवस्था देखी, उनको स्वस्थ-अवस्था मे देखा, उनसे अनेक प्रकार के सम्पर्क न केवल उस समय ही रहे वल्कि वहा से छोड़कर दूरस्थ कानपुर के व्यावसायिक जीवन में फस कर भी उनको देखने का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनूपशहर का विद्यालय उनका निःस्वार्थ सात्विक दान एव तपस्या का प्रज्वलित प्रतीक है। आज उस सस्था की कितनी प्रतिष्ठा है और उसने कितने सहस्र वालको को शिक्षा व ज्ञान देकर देश एव राष्ट्र की सेवा की है ? यह महाशय दुर्गाप्रसाद जी की निरन्तर लगन और तपस्या का फल है । वे वहुत साधु व्रती, और आदर्श भारतीय थे। हम उनके नि स्वार्थ जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

(सुप्रसिद्ध उद्योगपति तथा व्यवसायी)
सिविल लाइन्स,
कानपुर ।

देव पुरुष ! बाबू जी

श्री श्रीराम मित्तल,

उत्तर प्रदेश ने अनेक देशभक्तो को जन्म दिया है। ऐसे व्यक्तियो की पक्ति मे स्वर्गीय बाबू दुर्गाप्रसाद जी का भी एक विशिष्ट स्थान है।

उनका जन्म खुर्जा, बुलन्दशहर, मे हुआ था। और उन्होने अपना कार्यक्षेत्र गगा नदी के किनारे अनूपशहर बनाया।

उनके हृदय में देशप्रेम की अग्नि निरन्तर जलती रहती थी और उसकी चिनगारिया इधर-उधर उडती रहती थी। सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते, हर समय उनको अपनी सस्थाओ की चिन्ता बनी रहती थी। उन्होने इन सस्थाओ के लिए अपना तन मन, और धन अर्पण कर दिया।

वे स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तो का पूर्णतया पालन करते थे। जिन जिन बातो का स्वामी जी ने निषेध किया है, उनको अपनी सस्थाओ के अन्दर न आने देते थे। अपनी सस्थाओ मे नवयुवको मे नये जीवन का तथा धार्मिक भावना का स्रोत बहाते रहते थे। उनके रहन-सहन तथा व्यवहार से विद्यार्थी अनेक बाते सीख लेते थे। यदि कोई अध्यापक अनुपस्थित है तो उसके स्थान पर वे पढाने के लिए स्वय पहुच जाते थे। सस्था के लिए जितने भी भवन बने हैं उनको देख रेख वे लगन मे करते थे। उनकी देखभाल के लिए ओवरसियर की तरह बराबर निगरानी करते रहते थे। अस्वस्थ होते हुए भी काम पर अडे रहते थे। कुछ अवसर तो ऐसे आये कि सस्थाओ के काम की अधिकता के कारण खाना पीना सब भूल जाते थे।

वे सच्चे अर्थों मे ऋषि थे, गुरु थे। वे त्यागी, सेवारत सयमी, सरल जीवन बिताते थे। न उन्हें खाने का शौक था न पहनने का। उनके सादा जीवन की छाप मेरे मन पर अब तक बैठी हुई है। मेरे जीवन की सफलता का श्रेय उनको ही है।

अन्याय के विरुद्ध वे हमेशा आवाज उठाते थे। अन्याय को बिल्कुल बरदाश्त न कर सकते थे। हर समय सहायता करने को तैयार रहते थे। कितने ही विद्यार्थियो का जीवन उनकी कृपा के कारण ही बन सका था। किसी के प्रति उनके मन मे द्वेष नही था जिससे मिलते थे उसे ही अपना बना लेते थे।

उनके त्याग की, जब तक अनूपशहर मे उनकी चलाई हुई सस्थाए है, अमर कीर्ति बनी रहेगी।

वाइस प्रिंसिपल,
बिड़ला कालिज,
पिलानी।

स्वर्गीय लाला दुर्गाप्रसाद जी

श्री बाबू बनारसीदास जी

मेरा सम्पर्क स्वर्गीय लाला दुर्गाप्रसाद जी से लगभग २० वर्ष से रहा। वास्तव मे वे एक महान् आत्मा और देव-वृत्ति के योग्य पुरुष थे। उन्होने अपना समस्त जीवन विद्या-प्रसार में अथक परिश्रम करते हुए व्यतीत किया और अपने जीवन-काल के कार्यों से यह सिद्ध कर दिया कि यदि कोई पुरुष नि.स्वार्थ भाव से किसी शुभ कार्य का आरम्भ करेगा तो उसको अवश्य सफलता मिलेगी। यह उनका ही कर्तव्य था कि उन्होने अनूपशहर जैसे पुराने कस्बे को विद्याध्ययन का केन्द्र बनाया।

उन्होने उक्त कस्बे मे एक बडा कालिज स्थापित किया और यही नही कि उनका सम्बन्ध केवल स्थापना तक ही रहा हो अपितु उन्होने स्वय भी कालिज में आवश्यकतानुसार विद्या पढाने का कार्य सम्पादन किया। उनको अपने उक्त कालिज से इतना घनिष्ट प्रेम था कि अपने प्यारे से प्यारे मिलने वालो के यहा भी वे अधिक काल तक इस कारण नही ठहरते थे कि कही उनकी अनुपस्थिति मे कालिज के काम में कोई विघ्न-बाधा न हो जावे।

कालिज को उन्नत करने की उनमे एक यह भी विशेषता थी कि कालिज में योग्य से योग्य व्यक्ति अध्यापक नियुक्त किये जायँ। उनका निकट सम्बन्धी होने के नाते मैंने उनको कई अध्यापको को रखने के लिये अपनी सिफारिशी चिट्ठी लिखी थी परन्तु उन्होने उनमें से उसी व्यक्ति को अध्यापक नियुक्त किया जिसको कि उन्होने योग्य समझा। उनके जीवन काल में कभी कोई पार्टीबन्दी कालिज के सम्बन्ध में उनके विरुद्ध नही हुई। इसका कारण यह था कि वह मन, वचन तथा कर्म से कालिज के सच्चे हितैपी थे। कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी विचार धारा का हो उनका नाम सम्मान पूर्वक तथा आदर एव श्रद्धा से लेता है और बड़े विशाल हृदय से उनके कार्यों की सराहना करता है।

ऐसे महान् व्यक्ति का जन्म ससार मे परोपकार तथा आगे आने वाली पीढियो के पथ प्रदर्शन के हेतु ही होता है। उन्होने विद्या की ज्योति से वह कार्य किया है कि असंख्य घर उस ज्योति से प्रकाशमान हो उठे है। अत. उनके विषय में जो लिखा जावे थोडा है।

एडवोकेट,
गाजियाबाद।

आर्यसमाज के मौन-साधक--लाला दुर्गाप्रसाद

श्री फतेहचन्द शर्मा 'आराधक'

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक आर्य मूक साधक ला० दुर्गाप्रसाद का निधन ६८ वर्ष की अवस्था मे दिल्ली में हो गया।

लाला जी प्रसिद्धि से दूर रह कर आर्य-समाज की सेवा करते रहे। हज़ारों लोगो को उन्होने आर्य-समाज के मार्ग पर चलने के योग्य बनाया। हज़ारो को शिक्षा के साधन सुलभ करके अधकार से दूर रह कर ज्ञान के आलोक को प्राप्त करने का अवसर दिलाया। हज़ारो ऐसे ज्ञानदीप प्रज्वलित करने मे लाला दुर्गाप्रसाद जीवन भर लगे रहे।

आर्य समाज के सेवा-क्षेत्र में उन्होने कार्य किया। स्वय उस मार्ग पर चले। अपने परिवार को चलाया और वर्षों तक लगभग ५० वर्ष तक जिसे आधी शताब्दी कहा जा सकता है स्वामी दयानन्द के मार्ग को प्रशस्त बनाने मे योग दिया।

जन्म-शिक्षा—उत्तर प्रदेश के अनूपशहर नामक स्थान में जहाँ गगा के पुरोहितो का बोल-बाला है और जहाँ अखिला नन्द जी का पूरा प्रभाव आर्यसमाज के कार्य को ही नही उसकी शिक्षा-दीक्षा-विधि को अपनाने का विरोधी रहा है, जम कर लगभग ४० वर्ष तक कोई भी ऐसा काम करना जिसका विरोध किसी दूसरे वर्ग द्वारा बडी सरलता से किया जा सकता है, कठिन है परन्तु उनके नि स्वार्थ भाव ने उनकी सब कठिनाइयो को सरल बना दिया। इस कार्य के लिए उन्होने कभी ढिढोरा नही पीटा। और हा, उन्होने अपने परिवार के लोगो को भी बाध्य किया कि वह भी ऐसे मार्ग पर चलें जिसके द्वारा देश और समाज का हित हो सके। यही कारण है कि स्वर्गीय आत्मा के पुत्र-पुत्रियाँ, दामाद आदि सभी पूर्ण शिक्षित और विद्या-व्यसनी है।

श्री दुर्गाप्रसाद जी की शिक्षा खुर्जा व आगरा मे हुई है। कुछ समय तक उन्होने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज, देहरादून मे कार्य किया। उन्होने अपना समस्त जीवन अनूपशहर में समाज-सेवा-कार्य व शिक्षा-प्रसार में लगा दिया। अपने पिता की स्मृति में उन्होने लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज स्थापित किया। अपने भाई से उन्होने कन्याओ के लिये गोविन्दराम दयानन्द ऐंग्लो वैदिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्थापित कराया। इन दोनो सस्थाओ की सेवा उन्होने तन, मन, धन लगाकर की। वे कई वर्षो तक स्थानीय आर्य-समाज के प्रधान तथा नगर-पालिका के अध्यक्ष भी रहे। श्री दुर्गाप्रसाद जी अपने उदार विचारो और दृढ सकल्प के लिए प्रसिद्ध थे। कठिनाइयो से लडना तो उनके जीवन का ध्येय ही बन गया था।

शिक्षा सुधार की अनेक योजनाए उन्होने उत्तर प्रदेश की सरकार के पास

भेजी जिनसे वहाँ के शिक्षा विभाग ने बहुत लाभ उठाया। पद-लोलुपता तो उन्हे छू भी नही गई थी। कई बार आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने का प्रस्ताव हुआ जिसे उन्होने वडी नम्रता से अस्वीकार किया।

निधन पर शोक—उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानो पर उनके निधन पर शौक प्रगट किया गया। अनूपशहर मे ७ जुलाई को हडताल रही और ९ जुलाई को एक विराट् शोक सभा की गई। उनकी अस्थि गगा में प्रवाहित करने के लिये एक विशाल जुलूस भी निकाला गया।

एक प्रकार से अनूपशहर के नागरिकों ने उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रगट की। दिल्ली में भी उनके निधन पर कई सस्थाओ ने शोक प्रगट किया। उनके बहुत से शुभ-चिन्तको ने जिनमे श्री जैनेन्द्र कुमार डाक्टर नगेन्द्र, तथा श्री बनारसीदास चतुर्वेदी श्री भारतभूपण सरोज, डा० विमलकुमार और श्री ओम्प्रकाश है उनके निधन पर भारी वेदना प्रगट की।

स्मृति—अनूपशहर मे इनकी स्मृति मे एक पुस्तकालय स्थापित करने का निश्चय किया गया। शिक्षा के द्वारा जागृति उत्पन्न का जो मार्ग उन्होने जीवन में अपनाया था, उनके निधन के बाद भी मुझे पूर्ण आशा है, विद्या के क्षेत्र में प्रगति का पथ सदैव प्रशस्त रहेगा।

अन्तिम समय—लाला दुर्गाप्रसाद ने अपने निधन के पूर्व लगभग ५ मिनट पहले कहा कि मुझे वैठा दो। वैठकर अस्पष्ट स्वर से उन्होने गायत्री-मत्र का पाठ किया और ईश-विनय की और वाद मे सदा के लियें सो गये।

बीमारी की अवस्था को छोडकर ऐसा जीवन बहुत कम लोग पाते है जो निरन्तर साधना मे इस प्रकार लगे रहे। बीमार होने के पूर्व भी लाला दुर्गाप्रसाद, अनूपशहर मे स्थापित कालिज के विज्ञान-विभाग का भवन रात-दिन खडे रहकर अपनी आँखो के सामने वनवा रहे थे। किसे पता था कि इनकी साध अधूरी ही रह जायगी। क्या किया जाय ? कर्ता के मन कुछ और है—विधना के कछु और। ये तो चले गये पर यह पूर्ण आशा है। जो इनके उत्तराधिकारी पारिवारिक तथा सुहृदय जन है, शिष्य प्रशिष्य है, वे इनके छोडे गये कार्य को अवश्य पूरा करेगे।

(आर्यमित्र आगरा, दिनाक ६ अगस्त १९६१ से साभार)

पुण्यश्लोक बाबू जी

श्री भगवन्तसिंह, आई० ए० एस०

पूज्य श्री दुर्गाप्रसाद जी से मेरा परिचय १९३५ से उनके स्वर्गवास के समय तक रहा। उनके सुपुत्र श्री ओम्प्रकाश जी और मै दोनो एन० आर० ई० सी० कालिज से इण्टर पास करके इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मे पढने गये। म्योर होस्टल मे दोनो साथ-साथ ३ वर्ष तक रहे। प्रति वर्ष एक-दो बार श्री दुर्गाप्रसाद जी इलाहाबाद आते थे। मुझ को उनके निकट सम्पर्क मे रहने का अवसर प्राप्त हुआ करता था। उनकी सादगी, सद्भावना, प्रेम, नम्रता, कार्य मे लगन, कर्तव्य-पालन, धैर्य और ममता का मेरे ऊपर काफी प्रभाव पडा। वह अपने पुत्र ओम्प्रकाश जी के प्रति माता से भी अधिक स्नेह का व्यवहार करते थे। कभी-कभी तो मै अनुभव करता था कि पिता जी अब भी ओम् प्रकाश जी को छोटा बच्चा ही समझते है और उसी प्रकार उनकी परवाह करते है, यह ठीक प्रतीत नही होता क्योकि इसमे ओम् प्रकाश जी भी स्वय निर्णय न देकर सब कुछ पिता जी ही से पूछ कर करते थे। परन्तु उस अपार प्रेम के प्रति मेरी श्रद्धा पिता जी में सदा बनी रही। अनूपशहर भी मै उनसे मिलने गया। लखनऊ मे मेरी सर्विस के लगभग दस साल व्यतीत हुए है। श्री दुर्गाप्रसाद जी जब कभी लखनऊ आते मुझ से अवश्य मिलते। वे मेरे समय और सुविधा का बेहद ख्याल करते थे। यह उनके जीवन के सिद्धान्तो में सम्मिलित था कि सब जानने वालो से मिल कर जाये और उनके समय व सुविधा का भी ख्याल रखें। अनूपशहर-हाईस्कूल को उन्होने कालिज का रूप दिया। इस सस्था मे उनके प्राण विराजमान थे। उसकी उन्नति और उसके विकास के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते थे। कभी कोई मौका उनसे मुलाकात का ऐसा नही हुआ जब उन्होने इस सस्था की समस्याओ की चर्चा न की हो। दिल्ली में जब डाक्टर ओम् प्रकाश व मिलिंद जी से मिलने जाता तो कभी-कभी पिता जी के दर्शन हो जाते और उनके सत्सग से मै लाभान्वित होता।

उनके निधन से उत्तर प्रदेश की शिक्षा सस्थाओ ने एक आदर्श कार्यकर्ता खोया, अनूपशहर-कालिज ने जीवन भर सेवा करने वाला एक सुयोग्य मैनेजर खोया, अनूपशहर ने एक अच्छा नागरिक और स्थानीय नेता खोया, उनके परिवार के लोगो ने परिवार का मुखिया खोया, और मुझ जैसा व्यक्ति एक सज्जन, आदर्श पुरुष के सम्पर्क से वचित हुआ। उनके जीवन से मुझे सदैव सादगी, सज्जनता और कर्तव्य-परायणता की प्रेरणा मिलती रहेगी। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दें।

तिलक मार्ग,

लखनऊ।

श्रद्धास्पद पूज्य बाबू जी के जीवन की एक झांकी

श्री विक्रम सिंह

यो तो एक प्रवन्वक और एक प्रधानाचार्य का पारस्परिक सम्बन्ध साधारणत: घनिष्ट हुआ ही करता है, परन्तु सौभाग्य से मुझे स्वर्गीय बाबू जी के साथ वर्षों तक उनके मकान मे उनके साथ ही रह कर, उनको अत्यन्त निकट से भिन्न-भिन्न मुद्राओं मे ध्यान से देखने का सुयोग प्राप्त हुआ है। मैंने उनको एक वीतराग तपस्वी के रूप में देखा और मै उनके त्यागमय जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुए बिना न रह सका।

वर्षों से वे केवल एक समय मध्यान्ह में ही भोजन करते थे और सायकाल को एक गिलास दूध ही ग्रहण करते थे। भोजन उनका अत्यन्त सात्विक रहता था—मिर्च, मसाला, खटाई से उन्हे विशेष परहेज था। चाय भी उनके प्रयोग मे नही आती थी। यदि शीतकाल में आवश्यक ही समझा तो गुरुकुल कागडी की चाय औषधि के रूप में सेवन करते थे। किसी की दावत वे प्राय स्वीकार ही नही करते थे। यदि कोई विशेष कृपा पात्र ही रहा हो तो भले ही उसके यहाँ कभी भोजन के लिए चले गये हो। उनका दिन का समय प्राय: कालिज अथवा कन्या पाठशाला में व्यतीत होता था। काम-काज संभालने के अतिरिक्त कन्याओ को कुछ घण्टे पढाते भी थे। शेष समय वे घर पर ही रहते थे। कही आना-जाना उन्हें पसन्द ही नही था। यदि अनिवार्य ही समझा अथवा लोकाचार के विचार से उचित समझा तो थोडी-बहुत देर को चक्कर लगा जाते। मैंने उन्हे कभी निष्क्रिय नही देखा। चाहे भयकर गर्मी हो, चाहे घोर शीत, चाहे दिन हो अथवा रात्रि, उस कर्म-योगी को कार्य मे सलग्न ही देखा। प्राय: किसी शिक्षा सस्था की छोटी-बडी समस्या उन्हें व्यस्त रखती थी। यह बात नही कि समस्या सदा स्वय उनके सन्मुख उपस्थित होती; वे तो एक कुशल सरक्षक बन कर प्रत्येक समस्या को ध्यान से समझते और समाधान का उपाय ढूढ निकालते। भविष्य के लिए एक-से-एक उत्तम योजना बनती रहती। यदि उनसे छुटकारा मिलता तो दैनिक पत्रो का गंभीर अध्ययन अथवा किसी श्रेष्ठ ग्रन्थ का स्वाध्याय चलता था।

कार्य के आगे खाने-पीने, आराम-विश्राम का ध्यान भी न रहता और कार्य में उनकी तन्मयता ऐसी रहती कि सेहत की कोई चिन्ता न फटकती। मुझे कभी-कभी उनको निकट से देखकर उनके विषय में चिन्ता हो जाया करती थी। एक-दो उदाहरणों का यहाँ उल्लेख करना असगत न होगा। वे दिनभर के थके मान्दे सन्ध्या को घर लौटे और अभी नित्य कर्म से निवृत्त ही न होने पाये थे कि कुछ व्यक्ति किसी समस्या को लेकर अयवा किसी परामर्श हेतु आ गए। बातो का कुछ ऐसा ताँता जमा कि किसी ने घण्टो तक उठने का नाम ही नही लिया। उधर उनका रात्रि का स्वल्पाहार, एक गिलास दूध गरम होकर ठडा भी हो गया। सकोची स्वभाव के वे इतने थे कि



अनासक्त योगी

किसी आगन्तुक को जब तक वह स्वय जाने की इच्छा प्रगट न करे टलाना ही नही चाहते थे। मध्यान्ह को भी प्राय. भोजन के समय कुछ अडचनें आ जाती। कभी-कभी दो बज जाते और वे किसी समस्या पर विचार-विनमय करते होते अथवा हिसाब-किताब से जूझे रहते। कुछ न होता तो विद्यार्थियो के सरक्षक जो प्राय. अपने गाँव से खाना-पीना खाकर चलते, ११-१२ बजे कालिज जा पहुँचते और उनके विश्राम में ही बाधा डाल देते। हमारे भारतीय समाज में प्राय. हम एक दूसरे की सुविधा-असुविधा का ध्यान नही रखते और किसी कार्यरत व्यक्ति से वार्तालाप अथवा भेंट के लिए पूर्व सूचना नही देते और न समय ही निर्धारित करते अथवा माँगते है। मनुष्य प्राय. अपनी ही सुविधा का अधिक ध्यान रखता है, दूसरो की सुविधा और असुविधा का कम। मैंने श्रद्धेय बाबू जी में अपूर्व बात देखी। वे दूसरो की सुविधा को ही विशेष महत्व देते थे। यदि वे कभी सो रहे होते, भोजन करते हुए अथवा स्नान करते होते और कोई आगन्तुक आ धमकता तो अपना कार्य छोडकर मुस्कराते हुए सत्कार के साथ बिठलाते और उसे समय देते। मैंने कभी-कभी रात्रि के दस या ग्यारह बजे किसी आगन्तुक को बन्द द्वार को खटखटाते और उनको ऊपर से उत्तर देते हुए और जीने से उतरते हुए उनके खडाउँ की आवाज सुनी थी। यह थी उनकी आतिथ्य भावना और यह था उनका शिष्ट व्यवहार। उन्होने तो 'पर' के लिये 'स्व' को न्यौछावर कर रखा था।

प्रसगवश एक और घटना का उल्लेख करना अनावश्यक न होगा। कन्या-पाठशाला की जड जम चुकी थी। राज मज़दूर काम पर लगे हुए थे और बाबूजी नित्य ही दिन भर उनके काम की देख-भाल करते रहते थे। एक सन्ध्या को छुट्टी होने पर, मार्ग में चलते हुए किसी महत्वपूर्ण विभागीय पत्र को इस तल्लीनता के साथ पढने लगे कि उनका पैर अकस्मात् ऊँचे-नीचे स्थान पर पड गया। दुर्भाग्य से उनकी हर्निया की पुरानी तकलीफ उठ खडी हुई। घर आकर पीडा बढी मगर अपने कष्ट को भरसक प्रयत्न से छिपाये रहे। यहाँ तक कि अपनी भाभी जी (पूज्या ताई जी) को भी आभास न होने दिया। रात्रि जैसे तैसे छटपटाते काटी। प्रात. जब वे नित्य की तरह कालिज नही पहुँचे तो ज्ञात हुआ कि बाबू जी की तबियत खराब है। लोगो का आना-जाना आरम्भ हुआ। बाबू जी प्रत्येक आगन्तुक से बारी-बारी धन्यवाद देते हुए लौट जाने के लिए अनुरोध करते थे। उनका कुछ ऐसा स्वभाव सा बन गया था। वे चाहते थे कि उनके कारण किसी को कुछ कष्ट अथवा असुविधा न हो। उनके सुपुत्रो को दिल्ली से बुलवाया गया। उपचारो से उनको राहत मिली। उन सबके समक्ष ही रुख देखकर मैंने कहा, "बाबू जी ने अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के दिनो में एक सुव्यसन और ले लिया—निरन्तर कार्यरत रहना यह कभी भी अनिष्ट कर हो सकता है।" बाबू जी केवल मुस्कराये कुछ कहा नही। क्या प्रतिक्रिया हुई कभी ज्ञात नही हुआ। उन्होने जो संकल्प कर लिया था उसी पर दृढ थे। एक बार जिज्ञासु के रूप से मैंने निवेदन किया, "मेरी समझ में एक डाक्टर, एक वकील, अथवा लोक-सेवक अपना कार्य अधिक काल तक अधिक उत्तमता और सफलता के साथ कर सकता है यदि वह अपने स्वय के भोजन

विश्राम सम्बन्धी सुविधाओ का समुचित ध्यान रखे और निर्धारित समय पर ही अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करे। वे सहमत तो थे परन्तु फिर भी उन्होने तो अपना जीवन-सर्वस्व ही शिक्षा-सस्थाओ को "लोक-हिताय" अर्पित कर रखा था। उनका गम्भीर चिन्तन, मनन और अध्ययन अर्ध-रात्रि के समय निस्तब्ध वातावरण में चलता था और महत्वपूर्ण निर्णय भी उसी बेला मे लिये जाते थे। उनकी विचार पद्धति वैज्ञानिक थी और वे किसी बात को अनेक पहलुओ से विचारा करते थे। जल्दबाजी उन्हे पसन्द न थी। उनकी प्रत्येक बात में गम्भीरता परिलक्षित होती थी।

कुछ वर्षो से जीवन मे आसक्ति न रही थी और वह भी एक ऐसी अनासक्ति थी जिसे देख आश्चर्य होता था। न मालूम कैसे उनकी धारणा बन चुकी थी कि ससार मे उनके दिन इने-गिने है। कभी मैंने सुना कि किसी ज्योतिषी ने कुछ कह रखा है। एक बार मैंने उनके सन्मुख अनूपशहर के कुछ व्यक्तियो के नाम भी लिये जिन्हे ज्योतिषियो ने वर्षो पहले मृत्यु के घाट उतार दिया था फिर भी वे आज तक हृष्ट-पुष्ट बने हुए है परन्तु उनके विश्वास का आधार कुछ और ही था। दो एक बार उन्हें अपनी ७०वी वर्षगाँठ मनाने के लिए लालायित देखा। यह सब क्या था, मुझ साधारण व्यक्ति की समझ में नही आया। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि शिक्षा सस्थाओ की सेवा के लिए जीवन धारण किये हुए थे। उन्ही के लिए वे जिये, उन्ही के लिए वे मरे। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि घटना से काफी पहले सब काम-काज और उत्तर दायित्व की पूर्ण व्यवस्था कर दी थी। श्री भगवतीप्रसाद गर्ग को सभी कार्यों और योजनाओ से अवगत कर दिया था। श्री प्रेमशकर मेहता को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर हिसाब-किताब, हुण्डी परचे, बॉण्ड समर्पित कर दिये थे और मुझे आगामी वर्ष के लिए कार्यक्रम और महत्वपूर्ण योजनाए लिखकर प्रदान कर दी थी। वे महायात्रा के लिए प्रस्तुत थे। इतने दूरदर्शी थे वे।

श्रद्धास्पद बाबू जी के व्यक्तित्व मे मैंने अनेक विशेषताएँ देखी। एक प्रमुख यह थी कि वे हिसाब के बडे पक्के थे। प्रत्येक सध्या को पैसे-पैसे का हिसाब मिलाते थे। सस्थाओ के हिसाब-किताब मे भी जब तक पूरी टक्कर न मिल जावे उन्हें चैन न पडता था। वे "काटे" से हिसाब की परताल करते थे। मास के अन्तिम दिन ही अपने निजी कर्मचारियो को उनका वाजिब पैसा स्वय देने में वे कभी चूकते न थे। कभी तकाजे की गुजाइश छोडते ही न थे, कालिज के कर्मचारियो को भी सदैव समय पर वेतन देने की भरसक चेष्टा करते। सस्था के लिए कुछ दिनो से आर्थिक कठिनाई होने पर भी किसी कर्मचारी को आर्थिक कष्ट अथवा असुविधा न होने देते थे। उन्होने अपने आप को सस्थाओ का अग ही बना लिया था और उनकी प्रत्येक समस्या अपनी ही समस्या थी। उनकी विशाल हृदयता कर्तव्यपरायणता और कार्य-कुशलता सराहनीय थी।

व्यक्तिगत जीवन में वे अत्यन्त सरल, मृदुभाषी, नम्र, सकोची और शिष्ट थे।

उनकी सहृदयता, उनका त्यागमय जीवन हर किसी को प्रभावित कर देता था। व्यक्तिगत आवश्यकताओ पर उन्होंने अनवरत प्रयत्न और अभ्यास से अधिकार कर लिया था। वे अनासक्त योगी की भाति जीवन यापन करते थे। कर्म में उन्हें दृढ विश्वास था और सेवा ही उनका कठोर व्रत था। अधिकारी के रूप मे वे निरभिमानी, सहिष्णु और उदार थे। पद अथवा अधिकार का गर्व उन्हें छू तक नही गया था।

उनका जीवन हमारे लिये आदर्श-स्वरूप है। उससे हम क्या नही सीख सकते। वे गुणागार थे—ऐसे रत्नाकर जिसमें जितनी गहरी और देर तक डुबकी लगाई जावे उतने ही अनमोल रत्न हाथ आ सकते हैं। यदि हम दो-चार गुणो को ही चुन लें और अपने जीवन मे ढाल सकें तो हम बहुत ऊपर उठ सकते हैं। परमात्मा दिवगत आत्मा को परम शान्ति प्रदान करे। वह प्रकाश-स्तम्भ बनकर हमारे जीवन को सदैव आलोकित करती रहे।

प्रधानाचार्य,
लक्ष्मण प्रसाद डी० ए० बी० कालिज,
अनूपशहर, यू० पी०।

पूज्य पिताजी

श्री टेक चन्द कपूर

पिता जी ! अब नही रहे—हा वे अब नही रहे। पर आखो को दिखाई न देते हुए भी मन नही स्वीकारता कि पिता जी नही रहे।

सम्मान
किसका ?

पिता जी का—उन पिता जी का जो अपने जीवन भर अद्वितीय निस्पृहता के साथ समाज सेवा में लगे रहे। हम उनका आदर उनके जीवन काल मे यह ग्रन्थ निकाल कर न कर सके। क्यो ? इसका कारण तो ऐसा लगता है कि सच्चे साधक साधना में ही अपनी जीवित यादगार छोड जाते हैं। वे दृढसकल्प थे—आजीवन समाज सेवा करने के लिए। सकल्प को साकार कर सकने वाला महामानव मरता कभी नही है। व्यक्ति के मन का सतोष उसकी अपनी बपौती होती है। भावात्मक शाश्वतता और यथार्थ का समन्वय रूढियो को तोड गिराता है।

रूढिया—उनका महान सकल्प था रूढियो से सघर्ष करने का और ऊसर में बीज बोने का। उन्होने अनूपशहर को शिक्षित बना दिया, शिक्षा का प्रकाश चारो ओर फैला दिया। इन्सान में शिक्षा के अभाव के कारण जो हीनता बनी रहती है उसे सदा-सदा के लिए विलीन कर दिया। विडम्बित प्रथाओ को तोड कर रचनात्मक विकास में आजीवन—अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक क्रियाशील रहने वाले पिता

जी कठोर सामाजिक परम्पराओं के पोषक परिवार में पैदा होकर भी एक नई रोशनी के थे ।

वे मेरे पिता जी तो न थे केवल पितातुल्य थे—पर वे मेरे पिता से किसी प्रकार भी कम न थे । वे हमारे ही नही, हरेक के पिता थे । मैने उन्हे भाई मिलिंद जी के पिता के रूप मे देखा था और तभी से मै उन्हें पिता जी मानता चला आता था।

हमे उनके वियोग मे सकल्प लेना चाहिए कि उनके उन कामो को जिनके लिए वे जिये और मरे अवश्य ही पूरा करेंगे । मुझे पूर्ण विश्वास है कि डाक्टर साहिव का अनूपशहर कालिज के व्यवस्थापन का ज्ञान और भाई मिलिंद जी का दिल्ली के बिडला हॉयर सैकेण्डरी स्कूल जैसी सबसे बडी सस्था की मैनेजरी का अनुभव पूज्य पिता जी द्वारा सस्थापित सस्थाओ की गति को कभी भी किसी भी दशा में अवरुद्ध नही होने देगा ।

नवाव गज,
लायब्रेरी रोड, पुलबंगश,
दिल्ली ।

गोविन्दराम हायरसैकेंड्री स्कूल के प्राण बावूजी

कुमारी पुष्पा शर्मा, एम० ए०

वह एक निराली विभूति थी जो ७ जुलाई १९६१ को मिट गई । उनकी असामयिक मृत्यु के दुखद समाचार से नगर मे शोक की लहर दौड़ गई । इस अप्रत्याशित घटना की कल्पना भी न थी परन्तु विधि की विडम्बना को कौन जानता है !·········और यह सस्था आज उनके बिना निष्प्राण हो गई ।

तपोमूर्ति पूज्य वावू जी एक महान् पुरुष थे । वे इस सस्था के प्राण थे। उन्होने इस सस्था को जन्म ही नही दिया प्रत्युत अपने जीवन-रक्त से इसे सीचा भी । आज यह उस महर्षि के बिना अनाथ हो गई और इसका जीवन भी सूना-सूना लगने लगा ।

दोनो सस्थाए (एल० डी० ए० वी० कालिज, अनूपशहर और गोविन्दराम हायर सैकेंड्री स्कूल, अनूपशहर) इसी महाप्राण के अटूट परिश्रम, त्याग, व लगन का फल है । वे इन सस्थाओ के सस्थापक व व्यवस्थापक थे । उनकी असामयिक मृत्यु से सस्थाओ की जो क्षति हुई है वह भविष्य में पूरी हो सकेगी इसमे सन्देह है । सस्थाओ को उन्होने अपना सव कुछ दिया, अपने पास कुछ नही रखा । यह ऐसा अनमोल रत्न

था, जिसे खोकर सस्थाए शोकातुर हो उठी है।

जो व्रत इस महारथी ने अपनी तरुण अवस्था में आज से ४७ वर्ष पूर्व किया था उसको अन्त समय तक निभाया। सस्थाओ की प्रगति में उनका प्रयास सराहनीय है। शैक्षणिक क्षेत्र में उन्होने जो कुछ किया वह असाधारण है। काम करने की लगन सच्ची व गहरी थी। पूज्य बाबू जी एक महान् सन्त थे जिन्होने सासारिक सुखो का त्याग करके अपना अमूल्य जीवन शिक्षा सस्थाओ को अर्पण कर दिया।

पद अथवा उपाधि की अभिलाषा कभी न थी। सभी भौतिक सुख सुलभ होते हुए भी इस तपस्वी का जीवन प्राचीन सन्तो के समान बहुत साधारण व सरल था। उन्होने अपने जीवन का पल-पल समाज हित में ही लगा दिया। जिस तन, मन, धन से उन्होने इन सस्थाओ की सेवा की है, उसकी पवित्र कहानी सदा ही अमर रहेगी।

कर्म-योगी बाबू जी महान् विद्वान् थे। उन्हे हिन्दी, उर्दू, अग्रेजी का ज्ञान-कोष कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। वे ज्ञान के भडार थे। हर समय अध्ययनशील रहने में ही वह सच्चा आनन्द अनुभव करते थे। उनकी लेखन-शक्ति अद्वितीय थी। बाबू जी की प्रतिभा सूर्य के समान प्रखर थी। शिक्षा के प्रसार मे उनका जो महान् योग-दान है उनके प्रतीक ये दोनो, एल० डी० ए० वी० कालिज, अनूपशहर तथा गोविन्द राम डी० ए० वी हायर सैकेण्ड्री स्कूल अनूपशहर हैं। वे इन सस्थाओ के अमर प्रहरी थे। इन सस्थाओ में हमे उस महाशील के परिश्रम, उद्योग व आध्यात्मिक गुणो की झाकी मिलती है। निश्चय ही बाबू जी की त्यागमयी सेवाओ और विलक्षण प्रतिभा को भुलाया नही जा सकेगा। वे गुणो के सागर थे।

स्वर्गीय बाबू जी मे नम्रता और सज्जनता कूट कूट कर भरी थी। वे क्षमाशीलता और सौजन्य की मूर्ति थे। उनकी विनम्रता अनूठी थी। आज इस महर्षि की छत्रछाया उठ जाने से यह अपने को प्राणहीन अनुभव कर रही है। यह ऐसी अनमोल निधि थी जिसे खोकर सस्था का कोना कोना सिसक रहा है।

वह एक आधार शिला थी जिसका टूट जाना एक व्यक्तिगत आघात मालूम देता है। ऋषि तुल्य बाबू जी करुणा की सजीव प्रतिमा थे। वे प्राणिमात्र से सहानु-भूति व दया का व्यवहार करते थे। उदार-हृदय, मधुर भाषी और सकोचशील प्रकृति के थे। उनके अवर्णनीय आध्यात्मिक गुण बरबस ही हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अपने जीवन काल मे इस समाज-सुधारक ने अनेको व्यक्तियो के जीवन का निर्माण किया और वे असख्य जनो का पथ-प्रदर्शन करते रहे।

श्रद्धेय बाबू जी प्रत्येक दृष्टि से महान् थे। इस प्रकार का जन्म मानव-जाति के अभ्युदय के लिए होता है सस्था की अध्यापिकाओ व छात्राओ का परम कर्तव्य है कि इस महान् तपस्वी के जीवन से प्रेरणा लें और उनके बताये मार्ग पर चलने का सतत प्रयास करें। जिस व्यक्ति ने कर्तव्य व सत्य की वेदी पर अपने जीवन को बलिदान

कर दिया वह भला क्यो न पूजित हो। ये सस्थाएं उस महान् व्यक्ति के कीर्ति स्तम्भ हैं जिस पर उनके यश और प्रयत्नो की कहानी अमर रहेगी।.........एक महान् विभूति अपनी देन देकर उठ गई।

अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए इस साधक ने अद्भुत परिश्रम व तन्मयता से कार्य किया जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा परन्तु उन्हें लेशमात्र भी चिन्ता न थी और तपस्वी की भाति अपनी साधना में लीन रहे।

धन्य है स्वर्गीय बाबू जी का जीवन जिन्होने तिल-तिल जलकर शिक्षा का दीप जलाया और अज्ञान के अधकार मे ज्ञान का प्रकाश प्रसारित किया। उनकी कृतिया सदैव जगमगाती रहेंगी।

पूज्य बाबू जी एक प्रकाश-स्तम्भ थे जिसकी क्षति से संस्था को भारी चोट पहुची है। चार वर्ष हुए यह पौधा उन्होने लगाया था। अपने स्वेद—बिन्दुओ से इसको सीचा। पूर्ण विकसित भी न हो पाया था, नियति के कठोर नियम का यह वज्रपात इस छोटे से पौधे को सहना ही पडा।

जो सस्था बाबू जी को प्राणो से भी अधिक प्रिय रही है उसको उन्नत करने और पाल-पोस कर बडा करने में हम सभी को योग दान देना है हमें उनके अधूरे स्वप्नो को साकार करने के लिए प्रयास करना चाहिए। वह एक ऐसी ज्योति थी जिसकी लौ कभी बुझ न सकेगी और अनेको का मार्ग-दर्शन करती रहेगी। उनकी कृतियो की गूज से अनेको को प्रेरणा मिलेंगी।

ऐसे सरस्वती के उपासक तथा शिक्षा के पुजारी को संस्था का कोटि-कोटि प्रणाम।

प्रिंसिपल,
गोविन्दराम डी. ए वी. कन्या विद्यालय,
अनूपशहर।

बाबू दुर्गाप्रसाद जी के प्रति एक संस्मरण

श्री भूदेव शर्मा

महाशय जी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९२० ई० में हुआ, जब मैं उन्हीं के स्कूल में सहायक अध्यापक के रूप में कार्य करने पहुँचा। उनके भतीजे स्वर्गीय दीनानाथ बी० ए० मुझे अलीगढ से लिवा कर वहाँ ले गये थे और मैं उन्ही के साथ घर पर ही रहा था। कदाचित् कोई पूर्व जन्म का ही सस्कार हो। मेरा सम्बन्ध महा-

शय जी से कुटुम्ब के सदस्य का सा हो गया। राजनैतिक कारणो से मुझे तीन महीने पीछे ही अध्यापन कार्य छोड देना पडा परन्तु महाशय जी की हार्दिक इच्छा थी कि मै उनके विद्यालय में कार्य करू। अत, उन्होने स्वय प्रयत्न करके मेरे विरुद्ध सरकारी आदेश को जिससे मै उत्तर प्रदेश के मान्यता प्राप्त स्कूलो मे कार्य नही कर सकता था रद्द कराया और सन् १९२४-२५ में पुन अपने ही स्कूल में नियुक्त कर लिया। इसी प्रकार दो बार फिर अवसर आये परन्तु सयोग की बात है कि महाशय जी की और स्वय मेरी इच्छा होते हुए भी हम दोनो को रो-रो कर अलग ही होना पडा और मेरा कार्य क्षेत्र अन्य स्थानो पर ही बना। फिर भी हमारे सम्बन्धो मे वही आत्मीयता रही जैसी कि एक बार निर्मित हो चुकी थी।

वास्तव में यह महाशय जी का विशेष गुण था कि वे अच्छे से अच्छा अध्यापक अपने स्कूल मे रखना चाहते थे और इसके लिए चाहे उन्हे कितनी ही लिखा-पढी करनी पडे अथवा अधिक वेतन भी देना पडे तो भी योग्यतम व्यक्तियो को ढूढते थे। प्रधानाचार्य का सदैव सम्मान करते थे और अध्यापको से पूर्ण सहानुभूति रखते थे। यही उनकी सफलता की कुजी थी। इसी कारण स्वर्गीय श्री होती लाल व्रती जीवन भर वही रहे और वर्तमान प्रधानाचार्य श्री विक्रमसिह जी भी निरन्तर वही कार्य कर रहे है। बहुत कम सस्थाओ को ऐसा गौरव प्राप्त है। आजकल तो वहुत सी जगह प्रतिवर्ष प्रधानाचार्य वदले जाते है और अध्यापको का तो कुछ कहना ही नही है।

महाशय जी का जीवन कितना उच्च और महान् था यह इसी बात से स्पष्ट है कि उन्होने अपना तन, मन, धन विद्या प्रचार के लिए समर्पित कर दिया। अपनी युवावस्था से ही वे परोपकार में रत रहे और पूर्ण कर्म-योगी का पवित्र आदर्श अध्यापको तथा विद्यार्थियो के समक्ष रखा। यही कारण था कि अनूपशहर स्कूल का वातावरण वहुत दिनो तक गुरुकुल जैसा रहा और वहाँ के दृढ सस्कार सम्पर्क में आने वालो को जीवन भर प्रभावित करते रहे।

हम सवकी महाशय जी के लिए यही सच्ची श्रद्धाजलि हो सकती है कि उनके स्मारक-स्वरूप एल० डी० ए० वी० इण्टर-कालिज में उन्ही उच्च आदर्शो एवम् पवित्र सिद्धान्तो का निरन्तर ध्यान रखे जो उन्होने शब्दो से नही, अपने व्यावहारिक जीवन से हम सबके सामने प्रकट किये। अन्त समय मे एक कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का सफल निर्माण करके उन्होने स्त्री-जाति की भी वडी सेवा की। अपनी प्राचीन वैदिक सस्कृति के लिए उनका प्रेम अटूट था। अपने ज्येष्ठ पुत्र-पुत्री को सस्कृत का अध्ययन कराने के पश्चात् ही दूसरी भाषाओ की शिक्षा दी थी।

परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

रिटायर्ड प्रिंसिपल,

शिवपुरी,

अलीगढ़।

दिवंगता माताजी

श्रीमती प्रेम ज्योति सेन

हेरि अहरह तोमारि विरह
भुवने भुवने राजे हे ।
कल रूप धरे कानेन भूधरे
आकाश सागरे साजे हे ॥

श्रद्धास्पद पिताजी श्री दुर्गाप्रसादजी के ७ जुलाई १९६१ को चिरनिद्राश्रित होने के उपरान्त १ अक्तूबर को श्रद्धेया माताजी (स्वर्गीय श्रीमती लीलावती) का प्रथम श्राद्ध पडा। उस दिन सहसा हमारा हृदय वेदना और विरह के बोझ से इतना घनीभूत हो गया कि ऐसा लगा कि अब हमारे शेष सम्पूर्ण जीवन मे अधकार ही अधकार है और रहेगा।

उपरोक्त पक्तिया किसी भी प्रकार सभवत. मेरे जैसे मन की वर्तमान व्यथा को व्यक्त करने के लिए ही लिखी गई होगी। "मै दिन रात यही देखता हू कि तुम्हारा विरह प्रत्येक भुवन में भर रहा है। वह अनेको रूप धारण करके वन, पर्वत, आकाश तथा समुद्र मे छाया हुआ है।" मै समझती हू कि आज लेखनी मानेगी नही। माताजी का शरीर हमारे बीच मे लगभग २८-२९ वर्ष से नही है तो भी पूज्य पिताजी की उपस्थिति हमारे उस अभाव को किसी सीमा तक दबाए हुए थी। आज हम अनाथ हो गये है। जिस व्यक्ति ने अमूल्य ४७ वर्ष समाज सेवा, शिक्षा प्रसार और परहित में बिताए हो उसको भी कुटिल काल ने छोडा नही। राजा रक, बोध, अबोध सभी इस काल के चगुल में फसते चले आये है, तभी तो कहा भी गया—

जातस्य ध्रुवो मृत्यु ध्रुंव जन्म मृतस्य च।

अब आज मेरी दृष्टि के आगे वे अनेक धूमिल से चित्र आ खडे होते है जो दिवगता माताजी की स्मृति को रह रह कर हरा बना देते है। वयोवृद्ध पण्डित हरिदत्त जी जोशी ने एक स्थान पर माता जी के देहावसान का चित्र अकित करते हुए लिखा है :—

"अन्त को वह दिन आ ही पहुचा जब हमारे चरित नायक की धर्मपत्नी का अकाल में ही स्वर्गवास हो गया। प्रसव पीडा से आपकी लेडी हस्पताल बुलन्दशहर मे चिकित्सा हो रही थी। सभी प्रकार की सेवा-शुश्रूषा का आपके लिए पूर्ण प्रबन्ध था, पर मृत्यु का तो इलाज ही नही। बच्चा पैदा होने के पश्चात् आपका शरीर

श्री दुर्गा प्रसाद जी की तीनो पुत्रिया व जामाता





अपने पुत्र बुद्धि प्रकाश के विवाहोत्सव
पर जलपान कराते हुए



अपने तीनो पुत्रो के बीच मे पौत्र राजीव के जन्मोत्सव पर

विपाक्त होने से मृत्यु का कारण बन गया। नितान्त शोकपूर्ण पति-पुत्र तथा अन्य बन्धु-बान्धव मोटर द्वारा शव को अनूपशहर लाये। यह हृदय विदारक समाचार पाते ही समस्त शोकाकुल स्कूल तथा नगर की जनता मृतक शरीर को श्मशान भूमि में ले गई और वैदिक विधि से बिधिवत् पति-पुत्रादि द्वारा अग्निदाह सस्कार हो गया।

हे देवि ! यद्यपि आपका पच भौतिक शरीर इस ससार मे नही है पर प्राचीन आर्य विदुषी जैसे आपके गुण इस ससार में सदैव ही अमर रहेगे।"

"समय की थपकिया पाकर हृदय के घाव अलसाये"

आज पिताजी नही है, माताजी नही है। हम पूर्ण रूपेण अनाथ हो चुके है। पूज्य पिताजी की स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थ निकाले जाने की तैयारी जोरो पर है, पर मेरा भाई मिलिन्द जी से जो इस काम को पूरी तरह से ओटे हुए है, सानुनय निवेदन है कि वे यह न भूल जावे कि माताजी का पिताजी के सात्विक निर्माण और जीवन-विन्यास मे भी बहुत बडा हाथ था।

जिस समय माताजी का स्वर्गवास हुआ, हम ४ वहिनें और तीन भाई थे। इनमें से आज दो वहिने भी शान्त हो चुकी है, और आज हम २ वहिने और तीन भाई उनकी अवशिष्ट सम्पत्ति के रूप मे मौजूद है।

मेरे अग्रज भाई मिलिन्द जी ने "हिन्दी की महिला साहित्यकार" सम्पादित की है। उसमें मेरा भी एक लेख है। मैंने अपने उस लेख मे वहुत अश तक माताजी के सस्मरण प्रस्तुत किये है। और उसका सवसे मार्मिक स्मृति-चित्र माताजी के शव का आना रहा है। उस सस्मरण के अन्तर्गत मैंने लिखा है: "इस प्रकार मेरी मा— मेरी स्वप्नो की साझीदार, मेरी योजनाओ की सलाहकार और मेरी वाल-हठो की पूरक—मेरी मा—सदैव के लिए मुझे भावुक वनाकर छोड़ गई। उन्ही का मेरे विचारो और मेरे जीवन पर अत्यत गहरा प्रभाव है।"

माताजी का जीवन वृत्त एकत्रित करने के लिए मन वहुत ही व्याकुल है, पर साधन नही है। मामा जी के परिवार मे कोई भी ऐसा व्यक्ति अथवा वयोवृद्ध नही है जो उनके जन्म आदि के विषय में कुछ अधिक वता पावे। इतना अवश्य है कि मैंने जव से होश सभाला माताजी को अपने अतिम समय तक मोटी खद्दर की धोती पहिने देखा। वे सुनहरी रग का चश्मा लगाया करती थी और सफेद चिट्टे रग की तथा कुछ भारी से शरीर की थी। जिस समय उनका शरीरांत हुआ मै पूर्ण-रूपेण अवोध बच्ची ही तो थी। पर उस छोटी अवस्था के भी कुछ सस्मरण शायद मन पर उतर आयें इसलिए लिखने वैठी हूँ।

गुत्थिया मन की अति कठिन दुस्तर है यें
फिर भी मन कहता है—
खोलो, खोलो तो—
पढकर देखें हम—

उस अगम्य पथ पर
बढने वाली—उस महान देवि के
जीवन की गाथा को।"

समय भागता चला जा रहा है। फिर भी वह अचल सम्पत्ति कुछ स्मृतियों को हरा बनाती है। हमारी वह वडी हवेली, पिताजी की वह चौकी जिस पर वे बैठा करते थे, उनकी वह छोटीसी अलमारी जिसमे मिल्टन शेक्सपियर और प्रसाद पर ग्रन्थ भरे पड़े थे, एक मनहूस सन्नाटे के साथ उसी तरह मौजूद है।

यही हवेली हमारी माताजी ने खुद खडी होकर बनवाई थी। माताजी मजदूरो, मजदूरनियो और राजो के काम की देख-रेख खुद करती थी। और वड़ी ही सहृदयता के साथ उनको दोपहर मे खाना-पानी आदि देती थी। इस घर में इतना अधिक स्थान था कि हर समय कोई न कोई मेहमान हमारे यहाँ लगा ही रहता था। नगर की कोई भी ऐसी हलचल न थी जिसमे माताजी हिस्सा न लेती हो। महिला आर्यसमाज की वे प्रधाना थी, समाजसुधार में वे सबसे आगे रहती थी और विदेशी कपडो की होली जलाने मे उन्होने एक दिन घर के सभी रेशमी कपडे निकालकर जला दिये थे।

माताजी के जीवन की दो अमूल्य घटनाए मुझे याद है—एक तो यह कि इस मकान में जो उन्होने बनाया एक छोटी-सी कोठरी है, वह अभी तक कच्ची ही पडी है। मकान वन रहा था। माताजी को एक दिन रात को सपना दिखाई दिया कि उस कोठरी मे अपार धन भरा हुआ है और कलस के ऊपर एक साप-सापिनी का जोडा वैठा है। सपने मे सापिनी कहती है कि "तू मुझे अपने एक लडके की भेट दे तो मै हट सकती हूँ।" माताजी ने अगले दिन उठते ही उस सपने के आधार पर उस कोठरी को सदा के लिए वनवाना वन्द कर दिया।

दूसरी घटना यह है कि हमारे पिताजी म्यूनिसिपैलिटी के प्रधान थे मगर माताजी काग्रेस की प्रमुख कार्यकर्त्री थी। परिणाम-स्वरूप जिला-अधिकारी से विरोध हो गया तो हमारे माता-पिता दोनो ही अनूपशहर छोडकर कुछ समय के लिए देहरादून चले गये थे। ब्रिटिश सरकार से मुक्ति की धुन, अछूतो के उत्थान की दृढ लालसा और अपने परिवार को उन्नत वनाने का अटल व्रत उनके जीवन की कुछ अभिलाषाए थी। जब कभी भी घर में राष्ट्रीय विचारो के व्यक्ति आ जाते माताजी वहुत प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत-सत्कार करती थी।

माताजी को जीवन काल मे परिवारिक कठिनाइयो का कभी भी शिकार नहीं वनना पडा और पूज्य पिताजी को वे सदा ही समाज सेवा के लिए प्रेरणा प्रदान करती रही। दान देने मे यदि माताजी इतना अधिक योग प्रदान न करती तो अनूपशहर मे लक्ष्मण प्रसाद डी० ए० वी० कालज को निरन्तर सीचते रहना पिताजी के लिए सर्वथा असभव होता।

माताजी का रहन-सहन बहुत ही सरल और सादा था। अभिमान तो उनको छूकर भी न गया था। गरीब और दुखी लोगो के लिए उनका दरवाजा हर समय खुला हुआ था। उनका सारा का सारा जीवन ही एक सेवा-सदन सा बन गया था; क्या भगी, क्या चमार और क्या मुसलमान क्या औरत और क्या मर्द हरेक ही माताजी से मिलता था और एक विशेष बात यह थी कि हमारे घर का सब काम-काज उस— रूढिवादी नगर में उस समय भी दुल्ली नामक एक चमार करता था।

माताजी का पितृ-गृह एक समय बडा ही धनाढय था। हमारे नाना स्वर्गीय लाला किशोरी लाल जी बुलन्दशहर के माने-जाने वकील थे। उनके तीनो पुत्र सुशिक्षित और अच्छे पदो पर लगे थे। आज खेद है उनमे एक भी नहीं है। हाँ, हमारा एक मात्र ममेरा भाई लाजपत दिल्ली मे ही लगा है।

माताजी के सस्मरण आज और भी हरे हो गये है क्योकि पिताजी चले गये सदा के लिये। समाज और कुटुम्ब के रक्षक वे दोनो ही आज हमारे बीच में नहीं है। पर उनकी स्मृति, स्मृति अमिट है।

"तोमार सोनार थालाय साजा व आज दुखेर अश्रुधारा—
जननी गो, गाथव तोमार गलार मुक्ता हार।"

(हे माता) मै आज तुम्हारे स्वर्ण थाल को अपने आसुओ की धारा से सजाऊंगा और इन्ही से तुम्हारे गले का मुक्ताहार गूथूगा। (विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर)

महामानव-श्री दुर्गाप्रसाद जी

श्री मुरारीलाल गोयल

परिवर्तिनि ससारे मृत॰ को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति देश समुन्नतिम्॥

इस परिवर्तनशील ससार में सभी प्राणी मरकर पुन जन्म ग्रहण करते हैं। किन्तु वास्तविक अर्थो में उन्ही का जन्म लेना सार्थक होता है—जिनके द्वारा देश जाति एवम् समाज की उन्नति होती है। वैसे इस क्षण भगुर जगत मे असख्य प्राणी जन्म-ग्रहण कर प्रति दिन कालकवलित होते रहते है। समस्त प्राणियो में मानव का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मानव बुद्धिजीवी प्राणी है और इसी कारण से समस्त सृष्टि के प्रवल मे प्रवल तम भावनो पर इनका अधिकार है। इन मानव-समाज मे भी असख्य मानव प्रति दिन जन्म लेते और मरते हैं उनमें कुछ तो ऐसे

होते हैं जिनका जन्म केवल स्थावर पूर्ति मात्र में ही कठिन चिन्ता एवम् परिश्रमों के साथ व्यतीत हो जाता है और मरने के बाद उनके लिये कोई दो आसू की बूँद भी नही गिराता। साथ ही कुछ ऐसे भी होते हैं जो जन्म भर अपने स्वार्थ की पूर्ति में निरन्तर सलग्न रहते हुए पर-धन-शोषण तथा पर-पीडन ही करते रहते हैं। ऐसे लोगो के मरने पर भी कुछ एक निकट सम्बन्धी जिनका कि उनके द्वारा भरण-पोषण होता था सासारिक रीति निभाने के लिए कुछ आसू गिराकर तथा कुछ दिन उनकी याद कर अपने कर्तव्य की इति श्री कर देते हैं। परन्तु ऐसे महा मानव कोई विरले ही होते है जिनके न रहने से देश की तथा समाज की महनी हानि हो जाती है और जो इस ससार से नश्वर देह के चले जाने पर भी अपने द्वारा जीवन में किये हुए महापवित्र कार्यो से यशोरूपी शरीर से चिरकाल तक अमर बने रहते हे।

स्वर्गीय श्री वाबू दुर्गाप्रसाद जी इसी प्रकार के महामानव थे। आप का जीवन मानो एक प्रकार से केवल परोपकार के लिए ही हुआ था। शिक्षा-प्राप्ति के अनन्तर आपने अन्त तक अपने जीवन को समाज सेवा द्वारा देश की समुन्नति में सक्रिय सहयोग प्रदान करते हुए व्यतीत किया। शिक्षा देश की तथा समाज की उन्नति का मूल है अत आपका जीवन प्राय शिक्षा-प्रचार और प्रसार ही में सलग्न रहा। आपके स्वर्गीय पूज्य पिता जी के नाम पर स्थापित विद्यालय आपके निरन्तर सर्वांग-पूर्ण मनोयोग द्वारा अत्यन्त उन्नत अवस्था को प्राप्त होकर आज इस प्रदेश के शिक्षा-क्षेत्र में अपना गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए है। उक्त विद्यालय को उन्नत वनाने मे आपने अपने जीवन का सम्पूर्ण अमूल्य समय व्यतीत किया। आपने इस विद्यालय के सुचारु सचालन के लिए केवल अपेक्षित साधनो का ही प्रबन्ध नही किया प्रत्युत छात्रो को शिक्षा प्रदान करने के लिए ही आप प्रति दिन विद्यालय में अपना सहयोग प्रदान करते रहे। इसके अतिरिक्त कन्या पाठशाला का भी आपने संचालन किया और पुरुष एव नारी दोनो को समान दृष्टि से देखते हुए देश मे नारी-शिक्षा की कितनी आवश्यकता है इस बात को भली प्रकार समाज के सम्मुख आदर्श रूप में रख दिया। आपका जीवन विशेष सादगी को लिये हुए था। त्याग आपके जीवन की शोभा थी। परिश्रमी जीवन में आपको आनन्द मिलता था और उदारता आपके अन्त.करण मे अपना पूर्ण दृढ स्थान वनाकर वैठी हुई थी। वस्तुत सादा जीवन व उच्च विचार के आप प्रत्यक्ष मूर्त रूप थे। गुण-गरिमा आप में अपार थी, इस कारण आप सभी समाज द्वारा महान आदर प्राप्त करते थे। आपके विषय मे किसी कवि की यह सदुक्ति अक्षरश चरितार्थ होती है "गुणाः पूजा स्थान गुणिषु न च लिंग न च वय:।" अर्थात् मनुष्य का आदर ससार में गुणो से ही होता है, अवस्था या वेशभूपा से नहीं।

स्व० श्री वावू दुर्गाप्रसाद जी उदार आर्यसमाजी विचार-धारा के व्यक्ति थे। वैदिक धर्म तथा वैदिक सस्कृति के प्रति उनके हृदय में पूर्ण श्रद्धा थी। वे अथक परिश्रमी, महान् त्यागी एव कुशल प्रवन्धक होने के साथ-साथ महान् दयालु

भी थे। बावू जी जाति-विरादरी की सकुचित भावनाओ से बहुत ऊचे थे और उनके हृदय मे "उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटम्बकम्" की भावना सदा जागृत रहती थी।

अन्त में सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि स्वर्गीय श्री बावू दुर्गाप्रसाद जी भारत माता के एक ऐसे सुपुत्र थे जिनकी मृत्यु से देश तथा समाज को अपार क्षति पहुची है उसकी पूर्ति होना नितान्त असम्भव है। मै स्व० श्री बावू जी के पुत्रो एव सभी सम्बन्धियो से समवेदना प्रकट करते हुए उनकी दिवगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित करता हूँ और परमपिता परमात्मा से उनकी चिर शाति की कामना करता हूँ। साथ ही अनूपशहर की जनता से यह आशा रखता हूँ कि वह भी बावू जी के द्वारा सस्थापित विद्यालय तथा अन्य सस्थाओ का ठीक-ठीक सरक्षण, सवर्धन करते हुए श्री बावू जी के नाम को अमर बनाये रखने का प्रयत्न करती रहेगी।

प्रधानाचार्य, बी० ए० बी० इण्टर कालिज,
कासगज।

विद्या के अनन्त साधक स्वर्गीय बाबू दुर्गाप्रसाद के प्रति

श्री ओम् प्रकाश गुप्त, बी० ए०, एल० टी०

है आज व्यथा ऐसी आकुल मन वार-वार भर आता है।
दो बोल हुए दुर्लभ, नयनो में पारावार समाता है।
मन की सूनी गलियो में, घोर निविड अधियारा छाना है।
वाणी का वर दायक सुत, असमय तोड गया निज नाता है।

विधि के विद्रूपो पर क्या वश, विधवा वसुधा है हुई आज,
उन्नति के यौवन की पहली मजिल पर ही जब गिरी गाज,
विजड़ित चेतनता, शिथिल अंग विसराई सुधि सब लोक लाज,
शृगार लुटा आधार छुटा, वैभव का छूटा साज-राज।

दुर्गाप्रसाद इस विद्या-मदिर के सतत शुभ साधक थे।
वह ज्ञान-राशि के कत, सत, शुचि शिक्षा के आराधक थे,
भूतल के वे थे सूर्य, अविद्या अधकार के दाहक थे,
गुण के गुण-ग्राहक, निपुण—व्यक्ति, जीवन मे सफलाध्यापक थे,

गौतम गाधी के अनुयायी, सचय से थे वे मुक्तकाय,
निज जीवन मे परिपक्व बुद्धि थे, देते थे अनमोल राय,
निर्धन, उन्मन, शिक्षा-साधक, तरुणो के थे सम्बल सहाय,
यह विद्यालय पादप सा उनके दुख में है अब शुष्क-प्राय।

अब स्नेह स्रोत जो सूख गया सुमनो के मन मुरझाये है,
कुछ ओस विन्दु आश्वासन बन नयनो में ही ठहराये है,
सम्भव है उस युग-मानव ने यह कुछ शबनम बरसाये है,
श्रद्धा से शीश हुए सब नत, अन्तर मे सब के अकुलाये है।

वह त्याग तुम्हारा महापुरुष ! युग-युग की गाथा थाती है,
तुम जैसे सतत तपस्वी से पृथ्वी मन मे सुख पाती है,
इस विद्यालय की जन-वाणी स्तुति के सुमन चढाती है,
इन अर्घ्यों की शुचि गन्ध निखिल क्षिति के प्रागण में छाती है।

एल० डी० ए० बी० इण्टर कालिज,
अनूपशहर।

दानवीर बाबू जी

श्री नारायण स्वरूप

कवि न होऊ नही चतुर कहावऊ,
मति अनुरूप राम गुण गावऊ।

स्वर्गीय बाबू दुर्गाप्रसाद जी से दिल्ली में उनके सुपुत्र श्री सत्यप्रकाश जी मिलिन्द के यहा भेट करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। आपका जिससे एक बार भी सम्पर्क हो गया वह आपकी सच्ची सेवा की भावनाओ से प्रभावित हुए विना रह ही नही सका। आपने अपना सारा जीवन ही शिक्षा सम्बन्धी केन्द्रो के निर्माण तथा सचालन के हित अर्पण कर दिया था। अनूपशहर का एल० डी० ए० वी० कालिज तथा लडकियो के लिये जी० डी० ए० वी० हायर सैकेण्ड्री स्कूल आप ही की देन है। आपके अद्‌भुत दानी-स्वभाव का परिचय मिला उस समय जब आप के पिता जी मृत्यु शय्या पर पडे थे और उनके नाम पर आपने एक बहुत बडी राशि दान के रूप मे दे कर कालिज की स्थापना की। शिक्षा क्षेत्र के अतिरिक्त और भी आपने बहुत से सार्वजनिक काम किये। अपनी निर्लिप्त सेवाओ ही के कारण वे कई वर्ष तक अनूपशहर के निगम के अध्यक्ष रहे। आज यद्यपि वे हमारे बीच में नही है पर जो उन्होने स्वार्थ रहित व्यवहार का आदर्श हमारे सामने छोडा है उससे वे अपने को ही नही अमर बना गये, हमें भी अमर बनने का मार्ग दिखा गये है और उस मार्ग पर अग्रसर भी हम उन्ही के आशीर्वाद से हो सकेंगे जो हम सबको उनके जीवन काल मे प्राप्त था तथा अब भी प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है और सदा रहेगा। महान् आत्मा जो थी उनकी। मै अपने प्रिय मित्र श्री मिलिंद जी को बधाई देता हू कि उन्हे ऐसे महापुरुष का पुत्र होने का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

डिप्टी डायरेक्टर आफ एम्प्लायमेण्ट,
१८-गुरुद्वारा रोड़, नई दिल्ली।

पूज्य बाबा जी

श्री राजेन्द्रप्रसाद गोयल

लोग जिन्हें बाबू जी और महाशय जी आदि नामो से पुकारते थे उन्हें मैं बाबा जी कहता था। जी हा, वह मेरे बाबा जी ही थे। थे क्या मै तो समझता हू कि वह अभी भी है—एक ऐसी ज्योति जलाकर छोड दी है जो अपना प्रकाश सदैव ही देती रहेगी। विद्या मन्दिर में प्रज्वलित होने वाली ज्योति तो समस्त ससार को ही आलोकित करती है। वही ज्योति उन्होने जलाई थी।

बाबा जी ने अपने पिताजी को ६२,५०० रुपये की महान् धन राशि विद्या प्रसार के निमित्त देने की प्रेरणा उनके अन्तिम समम प्रदान की और उसका सदुपयोग करने का गुरु भार शिक्षा सस्थाओ को स्थापित करके अपने कधो पर स्वय ले लिया। इस प्रकार उन्होने एक महान दानी और अच्छे व्यवस्थापक होने का परिचय दिया।

बाबा जी ने व्यवस्थापन-कार्य के साथ-साथ अध्यापन में भी दिलचस्पी ली। उनकी अध्यापन-कला से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश सरकार के एजूकेशन विभागीय अधिकारियो से बिना सराहना किये न रहा गया और ऐसा कई बार हुआ। वह एक अच्छे Architect Engineer तथा श्रमिक भी थे। जेठ-वैसाख की कडकती धूप में सावन-भादो की झडी में और पूस-माह की किटकिटाती ठड में श्रमिको से काम लेना और उनके साथ व्यस्त रहना एक योग्य इजीनियर और कुशल श्रमिक का ही काम है जिसे वह खूब अच्छी तरह जानते थे।

बात ज्यादा पुरानी नही है। जब साइस ब्लोक का निर्माण कार्य चल रहा था एक टैकनीकल समस्या आ खडी हुई। और कुछ ऐसा मौका हुआ कि एक पूर्व छात्र जो आजकल एक योग्य सिविल इजीनियर है बाबा जी से मिलने आये। बाबा जी ने बातो के दौरान मे अपनी उस टैकनीकल समस्या को उनके सामने रखा। समस्या क्या थी ? वह कुछ ऐसी ही थी कि कमरो की छत में काम आने वाले गर्डर जो सरकार ने निर्धारित कोटा के हिसाब से मिले थे उपयुक्त नही थे। लोहे की दिक्कत थी ही और गर्डर मिलना मुश्किल सा ही था। अब छत कैसे पडे ये ही समस्या थी जिसे वह इजीनियर महोदय हल नही कर सके। पर बाबा जी कहा चुप बैठने वाले थे। खूब सोचा होगा और समस्या का हल ढूढ ही निकाला। कदाचित् छत की मोटाई कम करने से वह गर्डर काम आ गये। जब यह बात उन्होने उन इजीनियर महोदय को बताई तो वह बाबा जी की तीव्र बुद्धि को देख कर दग रह गये।

Education Department उत्तर प्रदेश मे उनका इतना असर हो गया था कि कई अधिकारी उनसे व्यक्तिगत और अनौपचारिक रूप मे सरकारी मामलो में

सलाह लिया करते थे। Leader मे और Amrit Bazar Patrika, में जो इलाहाबाद से निकलता है बाबा जी के विद्या सम्बन्धी विचार छपा करते थे।

Drafting उनकी कमाल की थी। अग्रेजी और हिन्दी दोनो की ही drafting ऐसी थी कि वह सम्बन्धित आदमी पर अपना पूरा प्रभाव करती थी। वैसे बाबा जी अग्रेजी हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे।

बाबा जी का सारा दिन तो आफिस के काम तथा दूसरे फील्ड-वर्क में निकलता ही था वह रात को भी पूरा आराम नही कर पाते थे। रात के दस बजे तक तो लिखना-पढना चलता ही था परन्तु कई बार रात में भी उठकर के फिर वही लिखाई-पढाई का काम लेकर जुट जाते थे। कोई मुख्य Draft तैयार करना होता तो वह रात को २-३ बजे ही उठ बैठते थे और तैयार करते थे। पता इस बात का मुझे इस तरह चला—एक बार उन्हें विशेष-पत्र भेजना था एजूकेशन डिपार्टमेण्ट यू० पी० को और कामो मे व्यस्त रहने के कारण वह उसे उस दिन तैयार न कर सके जिस दिन वह चाहते थे। उस दिन रात के दस बजे तक तो हम कई लोग उनके पास बैठे थे तब तक भी उस पत्र का कोई आरम्भ नही हुआ था। दूसरे दिन मै जल्दी ही सुबह उनके पास गया, कोई समाचार पहुँचाना था। मै पहुँचा तो उन्होने मुझे ४ पृष्ठ का पत्र पढने को दिया। यह वही पत्र था जो उन्हें तैयार करना था। मैंने पूछा 'बाबा जी यह पत्र कब लिखा आपने" बोले "अरे यू ही रात दो बजे आँख खुल गई थी। बडी ताजगी महसूस कर रहा था, सो लिख डाला।" मै तो दग रह गया यो सुनकर। फिर बोले "मैं अक्सर खास पत्रो को ऐसे ही दो-तीन बजे उठकर तैयार करता हूँ। उस समय पूर्णतया शान्ति होती है वातावरण मे और मेरे चित्त में।"

सघर्षों से वह स्वय तो लडते ही थे परन्तु दूसरो को भी लडना सिखाते थे। मैं जब पहली बार सर्विस पर गया तो मेरा मन नही लगा वहाँ। एक तो राजस्थान, गर्मी के दिन, फिर लू चलती थी। नई जगह घर की याद आती थी। बीमार भी पड गया मै वहाँ। कालिज से सीधा निकल कर आया था St. Johns College के Atmosphere मे रहने के बाद वहाँ सर्विस भी शुरू की एक Industrial Unit मे। मन लगता भी कैसे। बस लिख दी बाबा जी को चिट्ठी कि मै वापिस आ रहा हूँ। तुरन्त ही उन्होने मुझे Telegram दिया।"Don't lose courage, letter follows". अगले दिन उनका पत्र भी मिल गया जिसमें उन्होने बहुत-सी उत्साह वर्धक बातें भी लिखी थी परन्तु उसकी एक पक्ति मेरा जीवन बन गई और वह थी यह—'सघर्ष ही जीवन है'—सघर्ष बिना मनुष्य मृतक समान है।

बाबा जी पिछले तीन-चार वर्षो मे काफी थक गये थे। कारण यह था कि कन्या विद्यालय का काम बहुत अधिक था जिसे वह इण्टरमीजिएट तक पहुँचाना चाहते थे। दूसरे यह भी था कि उन्होने एक समय ही भोजन का नियम कर लिया था जिसे वह न जाने कितने समय से निभा रहे थे। ऐसी हालत में जब कि अल्पाहारी

रहे और काम ज्यादा करे तो कमजोरी अपने आप ही बढती। तीसरा कारण जो मैं समझता हूँ वह यह कि उन्हें अपने समय का कुछ आभास हो गया था। इस लिए कुछ विरक्तता भी काफी बढ चली थी। मैंने उनसे जनवरी' ६१ में काफी कहा कि बाबा जी आप कुछ दिनो के लिए मेरे पास सवाई माधोपुर आइये, 'तो' बोले 'बेटा सन् ६१ निकल जाने दो, उसके बाद आऊगा। मैं इस वर्ष घर पर ही रहना चाहता हूँ या दिल्ली।' और देख लीजिये ७ जुलाई ६१ को वह दिवगत आत्मा इस नश्वर ससार से दूर चली गई। सचमुच बाबा जी ''बाबाजी' ही थे जिन्होने अपना तन, मन, धन और जीवन विद्या के हेतु अर्पित कर दिया।

क्या-क्या लिखू उनके बारे में। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा थी। वे क्या थे वही जान सकता है जो उनके सम्पर्क में अच्छी तरह आया हो।

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हमें बल और साहस दें उनके दिखाये मार्ग पर चलने का।

सवाई माधोपुर,
राजस्थान।

महासन्त की अभिलाषा

श्री गोविन्द राम

है धन्य वही जग में जीवन, जो सदा रहा उपकारो में
तजि स्वार्थ, लगा जो सदा रहा निष्काम पराये कामो में॥
विद्या का दान बडा सबसे, जनता-सेवा उपचारो में।
वह जीवन को जीवन कर दे, पुनि मान मिले दरबारो में॥
"दुर्गाप्रसाद जी" के पूर्वज, खुर्जा के आदि निवासी थे।
लक्ष्मण प्रसाद के थे सुपुत्र, जो महादान में काशी थे॥
वह काम धर्म का करने मे हा, बडे कुशल सुखराशी थे।
करते थे विद्यादान नित्य, इससे ही वृद्धि-प्रकाशी थे॥
इस कल्प-वृक्ष के पौधे को, वे तन, मन, धन से सींच गये।
स्कूल बनाकर कालिज कर, इण्टर तक इसको खींच गये॥
डिग्री की कोशिश मे रहकर, वह होने सफल नगीच गये।
दुर्भाग्य, समय से पहले ही वह आँखें अपनी मीच गये॥

उस महामान्य की अभिलाषा जनता पूरे, नहिं टाल सके ।
यश-पात्र देश-हितकारी वह, जो इसकी देख भाल करे ॥
डिग्री कालिज यह बने शीघ्र, इसकी कोशिश तत्काल करें ।
है उचित यही जनता को अब, प्रण को उनके वह पाल सके ॥

कन्या विद्यालय के हित मे, तन, मन, धन, से वे लगे रहे ।
इस गार्ड साहब के कालिज को वह उन्नत करके चले गये ॥
वे महासत थे योगी थे सेवा में चिपटे सदा रहे ।
वे अनासक्त थे, निर्मोही जग के झझट से बचे रहे ॥

गम्भीर मशवरा सदा गर्ग साहब से ही वे करते थे ।
सकट के कैसे ही क्षण हो निज मन मे धीरज धरते थे ॥
ओम्, सत्य, बुद्धि प्रकाश है तीन पुत्र आज्ञाकारी ।
जो पिता समान सदा जनता को रखते अपना आभारी ॥

अनूपशहर, उ० प्र० ।

एक संत—एक महापुरुष

डा० पूर्णचन्द्र निर्मल

गुणों की खान—बाबू दुर्गाप्रसाद जी,

श्री महाशय दुर्गाप्रसाद जी, सस्थापक-व्यवस्थापक श्री लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी कालिज तथा गोविन्दराम गर्ल्स हायर सैकड्री स्कूल, अनूपशहर, उत्तर प्रदेश से अपना दमियो वर्ष पुराना घनिष्ट प्यार था । हमारी स्वर्गीया धर्मपत्नियो के भनेले ने उसमें और चार चाँद लगा दिये थे, उनके सस्मरण से सम्वन्धित अनेक बातें है जिनके कथन मात्र से अनेक सम्मरण—पुस्तिकाए स्वतन्त्र रूप से सरलत से रखी जा सकती है । हमारी परस्पर कोई बात ऐसी न थी जो एक दूसरे से छिपी रहती ।

श्री महाशय जी असाधारण और अनियमित घटनाओ से अत्यन्त दुखी हो जाते थे ।

एक बार जब मैं ओल्ड होस्टल प्राचीन भवन का मुख्याधिष्ठता था कालिज के दूसरे होस्टल शान्ति भवन के मुख्याधिष्ठाता का अकस्मात् शरीरान्त हो जाने पर विकट स्थिति उपस्थित हो गई उसके प्रबन्ध के लिए उन्होने मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि आप ही इस पद को सभालिए । उन्होने तुरन्त वैसा ही किया पर सस्था के तत्कालीन स्व० प्रिंसिपल महोदय ने किसी घटना पर भ्रम वश उसकी अवस्था उनसे पूछ ली ।

तो यह बात उन्हें इतनी अखरी कि दो दिन तक अन्न जल नही किया। उनकी स्वर्गीय धर्मपत्नी से पता लगने पर मैंने जाकर उन्हे जैसे-तैसे भोजन कराया।

वे यथा सम्भव किसी को कष्ट नही देना चाहते थे यह उनका स्वभाव था बनावट न थी।

उनका यह नियम था कि तनिक सी भी शारीरिक खिन्नता होने पर सर्वप्रथम उसकी सूचना मुझे देते थे। अन्तिम समय पर उन्हें पेशाब का महान् कष्ट हुआ। प्रिय पुत्र द्वारा उनके पेशाव बन्द होने का यह समाचार पाकर कि स्थानीय शफाखाने के डाक्टर की चिकित्सा से भी कोई लाभ नही हुआ, मैं घर पहुँचा तो बोले आपके पैरो पर सूजन होने के कारण मैंने आपको सूचना नही दी थी। मुझे डर था कि आप उसी समय यहाँ को भागेंगे। मै ठीक हूँ।

वे सभी को आत्मीय समझते थे।

एक बार मैंने उनसे कहा कि आप यहाँ दूसरो का इतना ख्याल करते है। आपको अपने पौत्र-पौत्रियो का ध्यान रखना चाहिए और उन्हे पढाना चाहिए। इसे सुनकर वे हँसे और बोले कि एक के पीछे अनेको को कैसे छोडा जाय।

दूसरे के कष्ट को वे महान् समझते थे।

इस स्थानीय चिकित्सालय में आपरेशन की मेज पर वे पडे हुए थे। श्री डाक्टर साहब को उनका पेशाव उतारना था। पर वे बार-बार मुझ से कहते थे कि आपने यहाँ तक आने का क्यो कष्ट किया।

संस्थाओ की उन्नति उनका सर्वोपरि उद्देश्य था।

अपने लडके-लडकियो के कालिजो की उन्नति ही उनका एक मात्र सर्वप्रिय उद्देश्य था। इसी की उन्हे हर समय चिन्ता बनी रहती थी। वे अपनी चिकित्सा के लिए बाहर जा रहे थ। आपरेशन टेबिल पर पडे थे उस समय ही कालिज के हैड क्लर्क साहब से कालिज की चार फाइलें मगाकर अपने बक्स में अपने साथ रखने को कहा और रख वाली। चिकित्सालय मे आपरेशन टेबिल पर पडे हुए ही उन्होंने श्री प्रेमशकर जी मेहता को कालिज का बिल्डिग-कार्य बताकर कहा कि आप यह काम करा रखें फिर मैं आ ही जाऊँगा।

मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए भी उन्हें सस्थाओ की चिन्ता थी।

उन्हें दिल्ली पहुँच कर अपने आपरेशन के बाद भी यही चिन्ता थी कि मेरी सस्थाओ को मेल से चलाना। उन्होने श्री गर्ग साहब से यह शब्द कहे भी और श्री गर्ग साहब ने उनकी शान्ति के लिये सस्थाओ की प्रवन्ध कारिणी सभाओ के सदस्यो के हस्ताक्षर भी उनकी सेवा मे भेजे।

पद-लिप्सा उन्हें छू तक नहीं गई थी।

वर्षों से कालिज के नाम के मैनेजर श्री लक्ष्मणप्रसाद जी डी० ए० वी० कालिज देहरादून के प्रिंसिपल थे। पर काम सब स्वर्गीय बाबू जी ही करते थे। मेरे आग्रह पर जब सस्था की प्रवन्ध कारिणी ने सस्था का मैनेजर चुन दिया तो वे मुझसे बडे लड़े और बोले मै तो सस्था की निस्वार्थ सेवा करना चाहता हूँ मुझे नाम से क्या काम।

संकट मे वे घबराते न थे।

सन् २५-२६ ई० में सस्था को सरकार से इतनी सहायता नही मिलती थी। दान-दाताओ की शिक्षा-सस्थाओ की ओर अधिक रुचि नही थी, अत दो हजार रुपये वार्षिक का घाटा पडता था। चर्चा चलने पर वे बोले सो क्या है। यह धन मेरी अवैतनिक सेवाओ के मूल्य और छात्रावासो की बचत से सुगमता से जुटाया जा सकता है।" ऐसा ही किया गया तात्कालीन बजट इसके साक्षी है।

सबको समान समझते थे।

एक बार जब मैंने उनसे कहा कि आप तो आर्यसमाजी है। यह विद्यार्थियों की छुट्टियाँ कैसी। तो उन्होने उत्तर में कहा कि मै आर्यसमाजी अवश्य हूँ पर सबको समान समझता हूँ।

आर्य-समाजी होने के नाते उन्हे ज्योतिष की फलित में विश्वास न था।

अपने स्वर्गवासी होने से लगभग १५ दिन पूर्व जब मुझे देखने वे आये तो बोले लीजिये आपके कालिज के गणिताध्यक्ष श्री प्रोफेसर तेजदत्त जी शर्मा ने मुझे लिखा है कि इस वर्ष आपका मार्केश है। परन्तु मैं तो हट्टा-कट्टा-सा आपके सामने हूँ।

उनके लिये कालिज का काम ही सब कुछ था।

आते ही वह कालिज कार्य में जुट जाते थे और उनकी आँत उतरने की टस उनके पास ही रखी रहती थी इसे देखकर जब मैंने रुष्ट होकर उनसे टस लगाकर ही काम करने को कहा तो वे बोले "समझ में नही आता कालिज कार्य श्रेष्ठ है या इसका लगाना।

वे सभी को अपना कुटुम्वी समझते थे।

वे कन्या-पाठशाला की लेडी प्रिंसपिल महोदया को अग्रेजी में भी एम० ए० करने के लिये अग्रेजी पढाया करते थे। एक दिन उनके चले जाने के पश्चात् उनसे पूछा कि आपको इस तरह पढाने से क्या लाभ। आपको यदि पढाना ही है तो अपने नाती-नातनियो को ही पढाइये। मेरे कथन को सुनकर वे हँसे और कहा कि मै तो सभी को अपना कुटुम्वी समझता हूँ। मुझे "वसुवैकुटुम्वकम्" की स्मृति हो आई।

गंगाद्वार,
अनूपशहर।

फूल*

परम कोमल अति सुन्दर फूल

श्री रामपाल गुप्ता, एम० ए०, एल० टी०

निरख अनूठी जिसकी शोभा
सुर नर मुनियो का मन लोभा।
मुरझाये बहु सुमन खिलाये
गगा जी के फूल ॥ परम कोमल०

सुरभि सुखद समीर बनाई
भरे महीतल तक महकाई।
मातृभूमि का लाल लाडला
सेवक सुदृढ अमूल ॥ परम कोमल०

समदर्शी, दृढ, पर- उपकारी
शत्रु, मित्र, सबका हितकारी।
वर्षा - घाम - शीत सब झेले
त्यागा नही उसूल ॥ परम कोमल०

सुन्दर सुख सब ही को दीया
बदला चाहा कभी न लीया।
ओ गद्दार काल तू हुआ
उस ही के प्रतिकूल ॥ परम कोमल०

त्याग मूर्ति अनुराग समाये
सकट सहे पर उर महकाये
धन्य -धन्य सादर श्रद्धाजलि,
मेरी करो कबूल ॥ परम कोमल०

लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी० कालिज,

अनूपशहर, उ० प्र०।

---

*स्वर्गीय श्री महाशय दुर्गाप्रसाद के सुपुत्र श्री डा० ओमप्रकाश जी द्वारा ९ जुलाई सन् ६१ ई० को फूल लाने पर।

त्यागमूर्ति बाबूजी

श्री राधेश्याम पाठक, एम० ए०

अतीत की धु धली डायरी के पृष्ठ उजले होकर उभर आये हैं। हम उन्हें बाबू जी मात्र कहकर सुख पाते थे। उनकी स्वार्थहीन सेवा की कहानी अनूपशहर के ५० वर्षों के इतिहास पर अधिकार जमाये बैठी है। बाबू जी की मृत्यु का समाचार एक दिन अचानक ही भारत के प्रसिद्ध दैनिक पत्र मे पढा और न जाने क्यो इसी अखवार पर मेरी आखो से कुछ आसू चू गये। आज अपने इस प्रकार रोने के कारण पर विचार करने बैठा हू तो स्व० बाबूजी के स्निग्ध, रसभरे स्पर्शों की महक मेरी यादो की गहराई से उभर आई है। एक दिन बाबू जी के सामने इसी तरह रोया था।

कालिज मे छात्रों पर प्रभाव जमा कर कुछ सिर-फिरे साथियो ने स्ट्राइक करा दी थी। उनमे मै भी था। स्ट्राइक समाप्त होने पर तथा-कथित नेताओ पर जुर्माने हुए। मेरे हिस्से में भी सात रूपये आये। चुकाने की सामर्थ्य थी नही। बहुत हाथ-पैर पीटे, जतन किये, जुर्माना माफ न हुआ। तब आँसू भरी आँखें लेकर बाबूजी के पास पहुचा। वावू जी कालिज के व्यवस्थापक थे। देखते ही वोले "तुम," और जी हुआ कि जी भर के रोया जाय। बाबू जी ने रोने भी नही दिया, पीठ पर हाथ फेर कर वोले,—रोते हो, जाओ, पढो, रुपये नही देने होंगें। बाबू जी की वह कोमल आश्वासनभरी वाणी अव मेरे जैसे किसी सतप्त छात्र को फिर कभी सुनने को नही मिलेगी।

वावू जी की याद स्मृति के अधेरे मे गगा की लहरों पर तैरते हुए दीप की तरह प्रतीत होती है। काल का प्रवाह उस परोपकारी दीपक को भी वहा ले गया।

वावू जी मध्यम कद के गौर वर्ण स्वस्थ प्राणी थे। लेकिन मेरे देखते-देखते उनका वजन कार्यव्यस्तता के प्रवाह में कम होता गया। उनके गालो पर सिकुडनें स्पष्ट दिखाई देने लगी। उनकी समझदार आँखे चश्में मे से झाककर अनूपशहर की समस्त लीलाओं को उनकी गहराई तक देख लेती थी।

वावू जी से मेरा मिलना कुछ कम ही हुआ। योग्यता, पद -प्रतिष्ठा की कितनी ही दीवारे वीच मे पडती थी फिर भी उनके साथ हुए साक्षात्कारो को भुलाना मेरे लिये आसान नही है।

उस विगत व्यतीत के प्रति मेरा मन आज भी डर, गौरव, श्रद्धा और प्यार से भरा है।

वावू जी एक दिन सफेद चादर विछे तख्त पर हाल में वैठे थे। मेरा लिखा

पत्र उन्हें एक दिन पहले मिल चुका था जिसमें मैंने अपने जीवन की समस्त असुविधाओ के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया था और अपनी महत्ता पर व्यापक प्रकाश डालकर अनूपशहर से कही दूर········बहुत दूर चले जाने की इच्छा व्यक्त की थी। साथ ही अपनी पढाई, यौवानाकाक्षाओ तथा मधुर स्वप्नो के खडित होने का दोप भी उनके सिर मढ दिया था। कुल मिलाकर यह एक १६ वर्ष के भावुक विद्यार्थी का निराशा के क्षणो मे लिखा गया करुण पत्र था। वावू जी को ही ऐसा पत्र लिखा जा सकता था क्योकि वावू जी कालिज के सर्वेसर्वा थे। पत्र के मिलते ही वावू जी का नौकर मुझे वुलाने घर पर आया। मै भीगी विल्ली वना उसके पीछे चलकर वावू जी के सामने हाजिर हुआ। उनकी चश्मे मे से छनकर आती मर्म-स्पर्शी दृष्टि ने मुझे घूरा। मैंने घवराकर सिर झुका लिया। क्षण भर ठहरकर वे वोले—पत्र अच्छा लिखते हो, यश भी कमा सकते हो। वडो का मान करना और सीख लो। भाषा में जादू भर जायगा। मुझसे जो चाहो तैयार हूं। पिता अपने वेटे के लिये क्या नही कर सकता। मेरी आखें डवडवाई। कण्ठ गद्गद्, वाणी अवरुद्ध मानो किसी देवालय में याचना से पूर्व ही वरदानो की वर्षा होने लगी हो। हिमालय के सामने चिउटी की तरह देर तक खडा रहा। वावू जी देर तक दुनियादारी समझाते रहे। वीच-वीच मे मेरी मूर्खताओ को भी चमका देते। फिर अत्यन्त कोमल, शान्त, सहज और आत्मीय स्वर में जीवन की सचाइयो और अच्छाइयो की शिक्षा देते रहे। मै शान्त जड़ वना सुनता रहा। अन्त में आशीष पाकर लौट आया। कहने की आवश्यकता नही कि इसके वाद कालिज ने मेरी पूरी फीस माफ की। पुस्तकें दिलाई। प्रिंसिपल महोदय ने कृपा और सम्मान का पात्र समझा।

वावू जी का नाम मैंने वचपन में अपने तैयेरे वड़े भाई से सुना था। उनका कहना था कि अनूपशहर मे शुद्ध और प्रभावशाली अग्रेजी ३ व्यक्ति ही लिख सकते हैं। उन व्यक्तियों में वावू जी का नाम पहले ही आता था। वावू जी के अग्रेजी ज्ञान से विद्वान् लेक्चरार भी आश्चर्यचकित रह जाते थे। न जाने वावू जी के पास कैसी दृष्टि थी जो सूक्ष्म से सूक्ष्म दोप को भी पकड़ कर सुधार देती। शायद इसीलिए अनूपशहर कालिज अपनी सुव्यवस्था के लिए प्रसिद्ध रहा।

अध्यापको के साथ वावू जी का व्यवहार सदा प्रेम और आदर का रहा। वे कालिज के लिए श्रेष्ठ अध्यापक का चयन स्वय करते और उसे कालिज की परम्परा में रखने में अपने प्रभाव और प्रतिष्ठा को भी प्रयोग में लाते। अध्यापको में व्यवस्था के प्रति कभी असतोष दिखलाने को नही मिला। वावू जी की सगति में बैठने का सौभाग्य कम ही लोगो को मिल पाता था। उनके पास अनावश्यक चर्चाओ के लिये समय ही कहा था। वह नियमित जीवन व्यतीत करते थे।

वावू जी वडे सयमी और उदार-हृदय थे। सहनशील ऐसे कि कष्टो के आगे कभी झुके नही। साहसी ऐसे कि उनके दुखो की चर्चा कभी किसी ने नहीं सुनी।

उन्हे न तो अपनी प्रशंसा सुनना पसन्द था न अपने लाभ के लिए थे किसी की अनावश्यक प्रशसा करना पसन्द करते थे। गजब की समझ बूझ थी उनमे। वे अपनी समस्याओ से अकेले ही उलझना पसन्द करते थे। अनूपशहर की राजनीति से भी सदा अपना दामन बचाये रहे।

विज्ञान की उपयोगिता को बाबू जी खूब समझते थे। उन्हो नें कम से कम खर्च से कालिज में विज्ञान की सुन्दर प्रयोगशालाओ का निर्माण कराया। यहां तक कि प्रयोगशालाओ का नक्शा बनाने वाले एक्जीक्यूटिव इजीनियर महोदय ने नक्शे के साथ-साथ सुना है ५०० रू० भेट स्वरूप दिये थे। मै इसे इजीनियर श्री लक्ष्मी नारायण गुप्ता महोदय की बाबू जी के प्रति चढाई गई श्रद्धा की सुमन-माला ही मानता हू।

शिक्षा प्रसार के महान् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये बाबू जी ने दुनिया की कितनी विषम, कठिन और तप्त हवाओ का सामना किया। इसे केवल वही समझ सकते है जिन्होने बाबू जी को उनकी रचनात्मक सनक के सहारे परिस्थितियो के प्रतिकूल प्रवाह में साहसी माझी की तरह आगे बढते देखा है। मैंने उन्हें बहुत दूर और बहुत पास से देखा था। उनके जीवन, काम, जरूरतें और दिक्कतो का पता तो मुझे बहुत बाद में चला। अनूपशहर के मध्य वर्गीय लोगो के लिये बाबू जी ईश्वरीय वरदानो की तरह कार्यशील रहे। उनका व्यक्तित्व सारे नगर पर इस प्रकार फैला था मानो शहर की समस्त आकाक्षाएं खुलकर फैल गई हो।

बाबू जी ने अनूपशहर की धरती में ज्ञान के बीज बोये। उन्होंने अनूपशहर में ज्ञान की प्यास जगाई और उन्होने सोये हुए सरल नागरिको के बच्चों के लिए उज्ज्वल भविष्य की नई राहे तलाश की। उन्होने अनूपशहर की प्राचीन परम्पराओ को सही समझा था।

जहा पावन भागीरथी बहती है, जहां के दही और पेड़ो का स्वाद मन ललचाता है, जहां के मक्खनबडे मन महकाते है, जहा के त्यौहारो में ताज़गी और उत्सवो में धार्मिकता बसती है जहा के आदमियो के हृदय मे सहानुभति और स्त्रियों के मन में सरल स्नेह के सोते बहते हैं, जहा हिन्दु-मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सगे भाइयों की तरह रहते हैं, जहा के आकाश में, अजानें और मन्दिरो के घंटे की आवाजे साफ-साफ गूजती हैं, जहा के बचपन में कौतुक, जवानी में सयम, बुढापे में कर्मठता पाई जाती है उसी अनूपशहर का एक महापुरुष, बाबू दुर्गाप्रसाद के रूप में, अनूपशहर के इतिहास में सदैव चमकता रहेगा। अनूपशहर की उस महान् आत्मा के प्रति स्वतत्रता दिवस की चौदहवी साल गिरह के अवसर पर मेरी सादर श्रद्धाजलि इन संस्मरणो के साथ समर्पित है।

जामिया हॉयर सैकेण्डरी स्कूल,
जामिया नगर, नई दिल्ली।

स्व० श्री दुर्गाप्रसाद जी—एक सिंहावलोकन

श्री महावीर सिंह माहिर, एम० ए०, एल० टी०

७ जुलाई, १९६१, अनूपशहर के इतिहास में एक दुखद घटना के लिए स्मरण रहेगा। उस दिन अनूहशहर के प्रसिद्ध समाज-सेवी, पथ-प्रदर्शक और धरती के लाल श्री दुर्गा प्रसाद जी के निधन का शोक-समाचार सुन कर अनूपशहर-निवासी शोक-सागर मे डूब गये। अनाज-मण्डी तुरन्त बन्द कर दी गई और ९ जुलाई को समस्त शहर की दूकानें बन्द रही। उनका मृत्यु-समाचार अनूपशहर-तहसील के पूरे क्षेत्र मे बिजली की तरह एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। पूरे क्षेत्र को जनता ने उन की अस्थियो का प्रभावशाली जुलूस निकाल कर और गगा से अनूपशहर कालिज की ओर जाने वाली सडक का नाम श्री दुर्गाप्रसाद रोड रखकर और उनकी स्मृति मे एक विराट् पुस्तकालय का निर्माण करने की शपथ लेकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया।

अनूपशहर तहसील की जनता श्री दुर्गाप्रसाद जी के ऋण से उऋण नही हो सकती। उन्होने इस क्षेत्र की अधिकाश जनता को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया। यह वह समय था जब जिला बुलन्दशहर में इने गिने ही हाईस्कूल थे। उन्होने अपने पिता द्वारा शिक्षा हेतु प्रदान की गई ६२५०० रू० की धन राशि से एग्लो वैदिक हाईस्कूल स्थापित किया। जिस समय यह विद्यालय स्थापित किया गया था उस समय इने-गिने ही विद्यार्थी थे। परन्तु शीघ्र ही अपने परिश्रम, योग्यता और धैर्य से इसे विशाल विद्या केन्द्र मे परिणत कर दिया और जनपद के कोने-कोने से विद्यार्थी-समुदाय यहा इकट्ठा होने लगा। यह केवल जनपद का ही विद्यालय नही रहा अपितु राज्य के गिने चुने विद्यालयो मे इसकी गिनती होने लगी। अधिकाश शिक्षा-अधिकारियो और निरीक्षक-मण्डलो ने अपनी निरीक्षण-रिपोर्ट मे इसके विशाल और भव्य भवन, विद्यार्थियो के अनुशासन, अध्यापक-वर्ग की विद्वत्ता और योग्यता की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

१९४२ में एग्लो वैदिक हाई 'स्कूल, कला (Art) मे इटरमीडिएट कालिज हो गया और इसका नाम लक्ष्मण प्रसाद दयानन्द एग्लो वैदिक इण्टर कालिज, अनूप-शहर, हो गया। और १९४५ में इण्टर विज्ञान की परीक्षा भी प्रारम्भ हो गई।

श्री दुर्गाप्रसाद जी के मस्तिष्क में एक आदर्श विद्यालय का चित्र था। यही कारण था कि उन्होने नगर से दूर ऐसे स्थान पर जो नगर के कोलाहल और गर्द-धूल से मुक्त है, इसे स्थापित किया। विद्यालय-भवन के कक्ष पर्याप्त विस्तृत और आधुनिक ढग के बने हुए है। उसका हाल (Hall) इतना विशाल है जिसमे सैकडो विद्यार्थी एक समय मे किसी विवाद या प्रदर्शन में सम्मिलित हो सकते है और स्त्रियो के बैठने के लिए सुन्दर बालकनी निर्मित की गई है और उसकी स्टेज भी अद्वितीय है।

विद्यालय का इतना सुन्दर भवन राज्य के इण्टर-कालिजों में कठिनाई से ही मिलेगा। जनपद के एक कोने मे जहाँ धन और साधनो का अभाव है ऐसा विशाल इण्टर कालिज निर्माण करना उनकी असाधारण योग्यता और लगन का परिचायक है। १९४५ में इण्टर विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ करने के पश्चात् उन्होने पृथक् विज्ञान भवन निर्माण करने का निश्चय किया और कालिज के इतिहास में प्रथम बार पूर्व-छात्रों से धन की सहायता हेतु एक अपील की। पूर्व छात्रो ने पन्द्रह हजार रुपये की धन राशि देकर अपनी मातृ सस्था के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया उसी का प्रतीक विज्ञान भवन आज उनकी कीर्ति को विकीर्ण कर रहा है।

श्री दुर्गाप्रसाद जी १९५६ तक एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज, अनूपशहर के व्यवस्थापक पद पर आसीन रहे। उन्होने वृद्धावस्था के कारण १९५४ में अवकाश ग्रहण किया। उनके पश्चात् उनके सुपुत्र डा० ओम् प्रकाश एम० ए० पी० एच० डी० ने इस कार्य भार को सभाला फिर भी अन्तिम समय तक वह उनका पथ-प्रदर्शन करते रहे। सस्था के इतिहास मे आर्थिक सकट और अन्य कठिनाइया भी आई। परन्तु उन के व्यक्तित्व ने उन सभी पर विजय प्राप्त की।

श्री दुर्गाप्रसाद जी स्त्री-शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण समझते थे जितना पुरुषो की शिक्षा को। यही कारण है कि एल० डी० ए० वी० कालिज के काम मे व्यस्त रहते हुए भी उन्होने रामस्वरूप आर्यकन्या पाठशाला (स्थानीय जूनियर हाई स्कूल) के प्रबन्धक पद को भी दीर्घ काल तक सुशोभित किया और उसके पश्चात् १९५६ मे अपने भाई गोविन्दराम जी की सहायता से गोविन्दराम डी० ए० वी० कन्या विद्यालय (हाई स्कूल) स्थापित किया, जो जनपद की कन्या पाठशालाओ में विशिष्ट स्थान रखता है। अन्तिम समय तक वह इस विद्यालय के सर्वेसर्वा रहे और प्राण-पण से उन्होने इसका सेवा की।

श्री दुर्गाप्रसाद जी ने अध्यापको के चयन में अपनी अद्भुत् योग्यता का परिचय दिया। उनका विचार था कि सस्था उस समय तक असाधारण विद्यार्थी और देश के सुन्दर नागरिको का निर्माण नही कर सकती जब तक अध्यापक स्वयं आदर्श व्यक्ति और अपने विषय के धुरधर पडित न हो। यही कारण था कि स्वतत्रता प्राप्ति के समय तक एल० डी० ए० वी० कालिज में विश्व-विद्यालयो में एम० ए० और एम० एस० सी० मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम उत्तीर्ण होने वाले छात्रो को ही अध्यापक नियुक्त किया जाता था परन्तु स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् बहुत से डिग्री कालिज और पोस्ट डिग्री कालिजो के कारण इतने योग्य अध्यापको का पाना दुर्लभ हो गया तो द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले सज्जनो पर ही सतोष करना पडा। परन्तु फिर भी प्राथियो में से हर प्रकार से योग्यतम व्यक्तियो को ही उन्होने अध्यापक नियुक्त किया। यही कारण है कि एल० डी० ए० वी० कालिज शारीरिक और सास्कृतिक कार्यक्रमो में और परीक्षा के परिणामो मे राज्य के अग्रणी शिक्षालयो में रहा है।

श्री दुर्गाप्रसाद जी की उत्कट अभिलाषा थी कि सस्थाए कुशलता के साथ चलें यही कारण था कि उन्होंने पूर्णतया अपने को दोनो सस्थाओ की सेवा मे अर्पित कर दिया था। वह सस्था के हर अध्यापक के विषय में पूर्ण रूप से जानते थे और सस्थाओ से सम्वन्धित प्रत्येक कार्य के आकडे स्वय इकट्ठा करते थे।

श्री दुर्गाप्रसाद जी आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियो की भाति शिक्षा को आत्म-विकास का साधन मानते थे। उनका विचार था कि शिक्षा जीवन की तैयारी है, इसी लिए यह इस जीवन में उन्नति और उत्थान का साधन है और भविष्य में मुक्ति की ओर अग्रसर करने वाली शक्ति है। इस लिए उन्होने चरित्र-निर्माण (Moral teaching) का एक घटा हर कक्षा मे रखा था और चरित्र-निर्माण के अध्यापन का कार्य स्वय करते थे। यह प्रवन्ध वहुत वर्षो तक रहा। जव मैं इस सस्था का विद्यार्थी था (१९३९-१९४५), तो वे एक अवैतनिक अध्यापक के पद पर कार्य करते थे। उनकी अध्यापन-शैली अद्वितीय थी। वह अपने विद्यार्थियो पर जादू सा कर देते थे जव तक वह पढ़ाते थे विद्यार्थी मत्र-मुग्ध उन्हे सुनते रहते थे।

वह अग्रेजी व हिन्दी-व्याकरण के पडित थे और उसके अध्यापन के लिए विख्यात थे। वह परिश्रमी और योग्य विद्यार्थियो को वहुत प्रोत्साहन देते थे। उन्हें छोटे वच्चो की सगति वहुत प्रिय थी इसीलिए उनका कार्यालय जो कालिज के मुख्य भवन के पीछे था छोटे वच्चो मे भरा रहता था। वह उनकी सहायता करते थे। वह निर्धन और असहाय विद्यार्थियो पर विशेष रूप से दयालु थे। वह सस्था के प्रधानाचार्य को ऐसे विद्यार्थियो की फीस माफ करने के लिए लिखते थे और उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराते थे।

श्री दुर्गा प्रसाद जी एक चारित्रिक व्यक्ति थे। वह कडे अनुशासन मे विश्वास करते थे फिर भी घमड उन्हे छू तक न गया था। वह हर किसी की सम्भव सहायता करने को तत्पर रहते थे। वह एक सच्चे पथ-प्रदर्शक और परामर्श-दाता थे, इसी लिए वहुत से विद्यालयो के प्रवन्धक और अध्यापक अपनी समस्याओ के निवारणार्थ उनके पास आते थे और उनसे उचित परामर्श पाकर अपने को धन्य समझते थे।

श्री दुर्गाप्रसाद जी अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई कार्य न करते थे उन्हें सदैव इस वात का ध्यान रहता था कि उनसे कोई ऐसा कार्य न हो जिसमे उनके सम्मान पर आच आये यही कारण था कि १९३० मे अनूपशहर टाउन एरिया कमेटी के अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट से किसी विषय पर मत भेद हो जाने पर उन्होंने त्याग पत्र दे दिया परन्तु अपनी आत्मा के विरुद्ध उन्होंने कोई कार्य न किया।

वह वडे परिश्रमी थे। खाली वैठना तो वह जानते ही न थे। वह कार्य को ही जीवन मानते थे और निष्क्रियता को मृत्यु। वह प्रात काल ७ वजे अपने कार्यालय में आ जाते थे और दिन भर कार्य में व्यस्त रहते थे और अंधेरा होने पर ही

घर का रास्ता लेते थे । वहा पहुंचकर भी ११ बजे से पूर्व कभी शयन नही करते थे ।

श्री दुर्गाप्रसाद जी की सस्थागत शिक्षा बहुत कम थी फिर भी वह अध्ययनशील व्यक्ति थे । उन्हे अग्रेजी, हिन्दी उर्दू और फारसी का बहुत अच्छा ज्ञान था । वे शेख सादा, बर्ड्सवर्थ, टेनीसन, मिल्टन और राधाकृष्णन की रचनाओ में विशेष रुचि रखते और एम० ए० तक के विद्यार्थी तक को भली भाति पढा सकते थे ।

स्वयं सन्त प्रकृति के होने के कारण और भारतीय दर्शन मे रुचि रखने के कारण वह रवीन्द्र नाथ टैगोर, रामतीर्थ, विवेकानन्द, गाधी जी और विनोबा जी की पुस्तको और लेखो का विशेष रूप से मनन करते थे ।

वह मसविदा (Draft) बनाने में बडे कुशल और निपुण थे। उन्होने विभिन्न भारतीय समाचार-पत्रो के सम्पादको को जो पत्र लिखे हैं वह स्वय साहित्य के अच्छे नमूने है ।

यद्यपि श्री दुर्गाप्रसाद जी व्यावहारिक रूप से कभी राजनीतिक क्षेत्र मे नही आये और निर्वाचनो को केवल तमाशा समझते थे फिर भी सैद्धान्तिक रूप से वह समाजवादी थे। उत्पादन के साधनो का व्यक्तिगत सम्पत्ति होना समाज के दुखों की जड़ मानते थे । वह राष्ट्रीय आय का उचित वितरण चाहते थें उनका विचार था कि जो सरकार अपने नागरिको की जीविका और उनके जीवन की गारण्टी नही कर सकती वह वास्तव में सरकार कहलाने योग्य नही है और जो सविधान ऐसी गारण्टी नही कर सकता वह सविधान नही है । वह भारतीय परिस्थितियो के अनुसार भारतीय समाजवाद के समर्थक थे और उनके विचार से यह समाजवाद समाज के विकास, प्रजातान्त्रिक ढग और हृदय परिवर्तन से लाया जा सकता है हिंसक क्रान्ति द्वारा नही । वह व्यावहारिक रूप से सच्चे समाजवादी थे । उनका सिद्धान्त था कि जो व्यक्ति आवश्यकता से अधिक वस्तुए अपने पास रखता है वह वास्तव मे चोर है । उनके पास दो कुर्त्ते, दो धोती, दो पजामे, दो बनियान, एक कोट और पगड़ी ही थे जो उनकी सम्पत्ति कही जा सकती है । उनका सचय मे विश्वास नही था । वे २० वर्ष से भोजन भी एक ही समय करते थे । वह "सादा जीवन उच्च विचार" के वास्तविक और जीते जागते प्रतीक थे ।

श्री दुर्गाप्रसाद जी का अद्भुत व्यक्तित्व, उनकी साहित्यिक अभिरुचि, उनका विद्यार्थियो और अध्यापको के प्रति अनुराग उनका उज्ज्वल और निष्कलक चरित्र, शिक्षा के प्रति उनकी अनुरक्ति, कैसे भुलाई जा सकती है। जिस व्यक्ति के भी सम्पर्क में वह आये उनके हृदय पर उन्होने एक अमिट छाप छोडी है । फिर जिस व्यक्ति का जीवन समाज-सेवा के लिए ही अर्पित रहा हो उनके जीवन से आने वाली पीढियां समाज-सेवा के लिए उचित आदर्श और उत्साह ग्रहण करती रहेंगी । आज जब कभी कालिज के दरवाजे तक दृष्टि जाती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्री दुर्गाप्रसाद जी की सौम्य मूर्ति अभी भी अपने कार्यालय की ओर धीरे धीरे गतिशील

है। विश्वास नही होता कि श्री दुर्गाप्रसाद जी इस ससार मे नही रहे। यह वास्तविकता तो है ही कि उन का नाशवान शरीर इस नश्वर ससार में नही रहा किन्तु उनके पुण्य-कार्यों ने तो उन्हे अमर बना ही दिया।

प्राध्यापक-
लक्ष्मण प्रसाद डी० ए० वी० कालिज,
अनूपशहर।

मेरी ओर से

श्री पूर्णचन्द्र शर्मा, एम० ए०, एल० एल० बी०

समादरणीय सदा स्मरणीय स्व० श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के लिए सर्वप्रथम श्रद्धाजलि समर्पित है।

श्री बाबू जी लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी० इण्टर कालिज, अनूपशहर, उत्तर प्रदेश के सस्थापक, सचालक, सरक्षक, सुप्रबन्धक तथा स्वामी ही नही थे अपितु वे इस उक्त सस्था के प्राण थे। उनके द्वारा लगाये हुए इस विद्यालयरूप पादप को देखकर उन महात्मा की पुनीत स्मृति बार-बार ताज़ा होती है। सहृदय और समझदार व्यक्ति तो उनकी सरल, भोली-भाली, शान्ति प्रदायिनी, तेजमयी तथा अलौकिक आकृति का स्मरण कर अपनी सुध-बुध भूल जाता है और आत्मविभोरता की दशा मे उसके मुख से स्वाभाविक शब्द निकल पडते है "ओ! महात्मन्! तप और त्याग की मूर्त्ति। जहाँ भी आप है वहाँ से ही शुभाशीर्वाद प्रदान कर हमारे मगल-मय मार्ग का पथ-प्रदर्शन कर हमको कृतार्थ करते रहे।"

पाठकवर! उक्त विद्यामदिर के अनवरत १४ वर्ष के सेवा-काल मे मैंने पूज्य बाबूजी के व्यक्तित्व का अध्ययन भली भाँति कर लिया है। वे साधारण मानव-स्तर से बहुत ऊँचे प्राणी थे। उनके विशेष व्यक्तित्व के कारण उनका नाम अमर रहेगा। जब उन्होने अपनें देश व समाज मे शिक्षा का अधिक अभाव देखा तो उनकी अन्तरात्मा विह्वल हो उठी और तभी उन्होने विद्या के प्रचार व प्रसार करने के लिए शुभ व्रत लिया था। अपने ऐश्वर्य-पूर्ण वैभव व विलास के सुखमय जीवन का पूर्णतया परित्याग करके उन्होने 'बहुजन हिताय' तथा 'बहुजन सुखाय' एक तपस्वी के नयमित तथा तपोमय, कटकाकीर्ण और कष्टमय मार्ग को अपनाया था। मेरे हृदय से ऐसे महापुरुष के प्रति स्वत शब्द निकलते है, "ओ तपस्विन्, त्यागमूर्त्ति आपने लोक-कल्याण के हेतु इस ससार के समस्त सुखमय साधनो और भोग-विलासो को ठोकर मार कर एक तपस्वी के कठोर जीवन को अपना कर न केवल अपने को सफल-कृत्य बनाया अपितु अपने

वश को तथा देश को भी महान् गौरवमय बना दिया है। वस्तुत: आपका जन्म सफल हो गया है"।

श्री बाबू जी ने अपने मंगलमय व्रत के अनुसार शिक्षा के अभाव को दूर कर, विद्या का प्रचार व प्रसार करने के हेतु उक्त विद्यालय की स्थापना की थी। विद्या-दान समस्त दानो मे श्रेष्ठ होता है। क्योकि विद्या-रूपी धन सब धनों मे उत्तम कहा गया है। इस विद्यारूपी चिन्तामणि के प्राप्त हो जाने पर मानव मानवता प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है। विद्या के बिना पुरुष पशु समान ही होता है। अतः बाबू जी ने जो विद्या-दान का सुप्रबन्ध किया वह स्तुत्य है। अनूपशहर तहसील मे सर्वप्रथम विशाल-हृदय, उदार-चरित्र तथा दानवीर श्री बाबू जी ने एक प्रचुर धनराशि तथा अपना तन, मन, धन लगा कर उपर्युक्त विद्यालय को पल्लवित, पुष्पित तथा सुफलयुक्त बनाने के लिए एक कर्तव्य-निष्ठ व्रत-धारी के समान पूर्ण प्रयत्न किया था। उक्त विद्या-मदिर मे शिक्षा प्राप्त कर असख्य विद्यार्थियो ने अपने जीवन को सफल बना लिया। उनमे से बहुत से छात्र सम्मानित पदो पर विराज कर अपनी मातृ-संस्था के गौरव को बढा रहे है। वे प्रतिक्षण उक्त सस्था की हर प्रकार से सेवा करने को सदैव उद्यत रहते है। प्रमाण प्रत्यक्ष है, अभी इस सस्था के उत्साही, सम्मानित तथा सुयोग्य भूत-पूर्व छात्रो ने पूज्य बाबू जी के सकेत मात्र पर एक प्रचुर धनराशि इकट्ठी करके विद्यालय का एक सुसज्जित, विशाल विज्ञान-भवन बनवा कर खड़ा कर दिया है। आज हमारा विद्यालय न केवल अपने ज़िले के विद्यालयो में अपितु अपने प्रान्त के प्रमुख विद्यालयो मे एक आदर्श विद्यालय है। इसका श्रेय पूज्य बाबू जी के त्याग, तप, लगन तथा अनवरत परिश्रम को है। वस्तुत उन्होने एक सजग प्रहरी, विद्या-प्रेमी तथा सच्चे देशभक्त के रूप मे इस विद्यालय की सेवा करने मे न केवल अपना तन, मन व धन ही अर्पित किया था अपितु अन्त मे इसकी समुन्नति के चिन्तन एवम् प्रयास मे अपने प्राण भी न्योछावर कर दिये। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि उनका पाँच महाभूतो से निर्मित शरीर चाहे आज हमारे बीच में नही है तो भी उनका परमोज्वल यश-रूपी शरीर सदैव सुशोभित रहेगा। पाठक-वृन्द ! हमारे पूज्य बाबू जी जैसे परहितकारी, निरालसी, उद्यमी, विवेकशील, दयालु, न्यायप्रिय, क्षमाशील, त्यागी व तपस्वी व्यक्ति इस ससार में विरले ही होते हैं जो अपना सर्वस्व परहित के लिए अर्पण कर दें।

पाठकवर ! यदि कोई मनुष्य यह चाहता कि पूज्य बाबू जी वृद्धावस्था में विद्यालय के विषय में चिन्ताहीन हो जाय और सुखपूर्वक अपने सुसम्पन्न उच्चपदासीन, सज्जन, सुशिक्षित, सुआज्ञाकारी तथा सुयोग्य पुत्रो के समीप शान्तिमय जीवन व्यतीत करे तो वे उसे यही कहते थे कि मैं तो विद्यालय की सेवा के सामने समस्त सुखो को तुच्छ समझकर यहाँ अनूपशहर मे रहकर विद्यालय रूपी पादप को हरा-भरा तथा फल-दार देख परम शान्ति प्राप्त करना अत्यंत श्रेयस्कर समझता हू। अस्तु।

मै पहले कह चुका हूँ कि पूज्य बाबू जी परम विद्या प्रेमी थे। हिन्दी भाषा

के परम पुजारी तथा भक्त थे। हिन्दी भाषा की सेवा करने में सतत प्रयत्नशील रहते थे। आपको हिन्दी साहित्य के पठन-पाठन में विशेष रुचि थी। हिन्दी भापा का रूप शुद्ध व परिमार्जित बनाने में आपका बहुत कुछ सहयोग रहा था। वे सदैव मातृ-भापा हिन्दी के शुद्ध रूप को प्रयुक्त करने के पक्ष-पाती थे। हिन्दी भाषा मे अशुद्धियाँ उनको बहुत खलती थी। मुझसे दुखित होकर कभी कह दिया करते थे, "भारतीय शरीर, सस्कृति तथा शिक्षा ग्रहण करने वाले भी यदि हिन्दी भाषा के प्रयोग मे भूल करते है तो देश के दुर्भाग्य की बात है।" हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भापा के पद पर पदासीन होने पर उनको विशेष प्रसन्नता हुई थी। वे कहा करते थे कि जब तक समाज में सुयोग्य कवि तथा लेखक अपने प्रमुख कर्तव्य को न पहचानेंगे तथा राज्य-सरकार हिन्दी की उन्नति की ओर ध्यान नही देगी तब तक इसकी विशेष उन्नति नही होगी। वे हिन्दी लिखने के पूर्ण अभ्यासी थे। उनकी हिन्दी भाषा परिमार्जित, सरल, सरस, ओजमयी और मनोमुग्धकारी खडी बोली थी। उनका शब्द-चयन सुगठित समीचीन और सार्थक था। उनकी भापा मे स्वाभाविक प्रवाह था। एक बात को समझाकर लिखने की शैली वस्तुत सराहनीय है। हिन्दी साहित्य और हिन्दी के प्रेमी सदैव उनके ऋणी रहेगे।

श्री पूज्य बाबू जी का जितना प्रेम हिन्दी भापा से था उतना ही प्रेम अग्रेजी भाषा से भी था। उन्होने पहले एक अध्यापक के जीवन का अनुभव प्राप्त किया था। अग्रेजी विषय को इतनी अधिक रुचि से पढते व पढाते थे कि सराहना करना कठिन है। अग्रेजी के गहन-ज्ञान के साथ-साथ अग्रेजी भापा के लिखने का स्तर तो उनका इतना ऊँचा था कि अच्छे-अच्छे अग्रेजी के विद्वान् उनके लेख पढकर दग रह जाते थे। उनकी योग्यता का लोहा मानते थे। वे आजकल के एम० ए० उत्तीर्ण छात्रो की अग्रेजी की अशुद्धियाँ देखकर खिन्न होकर कहा करते थे, देखो आजकल अग्रेजी का स्तर कितना गिर गया है। एम० ए० उत्तीर्ण भी शुद्ध वाक्य लिखने मे असमर्थ है। मैंने एक दिन देखा कि वे एक एम० ए० के छात्र को अग्रेंजी इतने रुचिकर ढग से पढा रहे थे कि छात्र स्वत सन्तुष्ट था और वे भी स्वय प्रसन्न थे। उनका अगेजी भापा का ज्ञान, अनुभव, लिखना व पढना सराहनीय था। अच्छे-अच्छे अग्रेजी के विद्वान् भापा व व्याकरण की कठिनाई उनसे दूर करते थे। वे सदैव नम्रतापूर्वक बताते थे। उनका हिन्दी भाषा और अग्रेजी भाषा दोनो पर समान अधिकार था। उनके दुखद देहावसान से हिन्दी व अग्रेजी भापा के प्रेमियो को विशेष क्षति हुई है। श्री बाबू जी जैसा हिन्दी व अग्रेजी भाषा का तुलनात्मक गहन-ज्ञान कम ही विद्वानो मे दृष्टि-गोचर होता है।

पाठकवर ! श्री बाबू जी का चरित्र ऊँचा तथा अनुकरणीय था। उनसे सदैव शिक्षा मिलती थी। एक प्रभुता-सम्पन्न उच्च कुल मे उत्पन्न होते हुए भी उनके अन्दर धन, धरती, उच्च शिक्षा, अधिकार तथा सुयश का अभिमान लेश मात्र भी न था। सदैव सज्जनता, मधुरता से सबके साथ सुन्दर व्यवहार करते थे। किसी दीन-दुखिया को देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता था। यदि किसी निर्धन बच्चे का अध्ययन

आर्थिक सकट-वश बन्द हो जाता था तो वे स्वयं या किसी अन्य धनीमानी सज्जन द्वारा उसकी सहायता कर देते थे।

श्री बाबू जी शिक्षकवर्ग तथा शिक्षार्थियो के एक बहुत बडे परिवार के एक सुयोग्य सरक्षक थे। कभी भी किसी छात्र या शिक्षक या अन्य व्यक्ति द्वारा अपनी सेवा कराना उनके स्वभाव के विपरीत था। मैंने स्वय कई सज्जनो को देखा जो कि सुयोग्य बाबू जी की सेवाकर अपने को कृतकृत्य करना चाहते थे। परन्तु उन सच्चे मानवता के पुजारी ने उनको मधुर वचन कहकर सतुष्ट कर दिया था, "कि यह शरीर नाशवान् है उसको जितना सुख पहुँचाने की चाह की जायगी उतना ही यह निकम्मा और निर्बल हो जायगा।" वे स्वय सतुष्ट, वीतराग व निरीह थे। ससार से विरक्त होने पर भी लोकहित करने मे आसक्त थे। काम, क्रोध, लोभ व मोह के जाल से वे सदैव मुक्त थे। वैसे "सज्जनानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की उक्ति उनमे चरितार्थ होती थी।

उनका जीवन सरल, सच्चा, सीधा-साधा तथा निष्कपट था। कृत्रिमता से वे बहुत दूर थे। आजकल की दुरगी चालो से वे नितात अनभिज्ञ थे। उनके भीतर और बाहर का रूप एक ही था। वे कभी किसी दलबन्दी के दल-दल मे नही पडते थे। सदैव एक व्रतधारी महात्मा व महर्षि के समान उन्हें एक शान्त जीवन ही रुचिकर था। यही कारण था कि प्रत्येक कोटि का, दल का, विभाग का तथा धर्म का मनुष्य उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था और उनकी सेवा करने के लिए उद्यत रहता था। मैंने स्वयं अपनी आँखो से देखा था कि दो या दो से अधिक व्यक्ति जो एक-दूसरे के कट्टर विरोधी थे वे बाबू जी के पास आकर उनकी सेवा के लिए उद्यत थे। यह उनका राग-द्वेष हीनता का वातावरण था जो प्रत्येक पुरुष पर प्रभाव डालकर उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न कर देता था। वे वस्तुत. समदर्शी व न्याय-प्रिय थे।

उनका स्वभाव गम्भीर था। अपने सन्मार्ग से वे कदापि विचलित नही होते थे। अनेकानेक आपदाओ के आने पर भी साहस, धैर्य, विवेक-शीलता तथा निडरता से उन पर विजय पा लेते थे। सदैव सत्य के पक्ष को लेकर प्रसन्न होते थे और असत्य-पथ से घृणा करते थे। अनाचार और अत्याचार का सामना करते समय उनका साहस कई गुना बढ़ जाता था। अपने विद्या-मदिर के सामने जब कभी कोई जटिल समस्या आती थी तो उसे अतीव कुशलता व न्याय-प्रियता से सुलझा देते थे। चिरकाल से विद्या-मन्दिर तथा समाज की अनवरत सेवा करते रहने से तथा सयमित जीवन व्यतीत करने से उनका ज्ञान, अनुभव तथा आत्म-बल अत्यधिक बढ गया था। जो भी सुझाव शिक्षा-क्षेत्र में प्रातीय सरकार के सन्मुख रखते थे, वे सदैव स्वीकृत होते थे। शिक्षा-क्षेत्र में वे एक अनुभवी व ज्ञानी महारथी थे। उन जैसा प्रखर पाण्डित्य यत्र-तत्र ही परिलक्षित होता है। वे देश के एक अमूल्य रत्न थे। उनका दुखद देहावसान दिनाक ७-७-६१ ई० की प्रात: काल हुआ था जिससे न केवल उनका परिवार, इष्ट-मित्र, सम्बन्धी

तथा शिक्षकवर्ग व शिक्षार्थी ही अपितु समस्त शिक्षा प्रेमी जगत् शोक-सागर में निमग्न है।

अन्त में मेरी उस परमपिता परमेश्वर से सानुरोध प्रार्थना है कि परम पूज्य बाबू दुर्गाप्रसाद जी की आत्मा को परम शान्ति प्रदान करे तथा उनके द्वारा आरोपित विद्यालय-रूपी पौधा दिन दूनी रात चौगुनी समुन्नति, सफलता और सुकीर्ति प्राप्त करे।

प्राध्यापक,
लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी० कालिज,
अनूपशहर, उ० प्र०।

अनूपशहर की एक दिवंगत महान् विभूति

कविराज पण्डित रामचन्द्र प्रफुल्ल, आयुर्वेद वाचस्पति, एम० एस० सी० ए०

परम श्रद्धेय, दिव्यात्मा, भारतीय सस्कृति के प्रतीक अद्वितीय शिक्षा प्रसारक शिक्षाविद् स्व० श्री दुर्गाप्रसादजी की पुनीत स्मृति के रूप में हाल ही में एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर चित्त को जो अत्यधिक सुख एव सन्तोष हुआ, वह वर्णनातीत है। स्व० बाबूजी की धवल कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने को इस दिशा में जो सुन्दर स्तुत्य एव श्लाघ्य प्रयास किया जा रहा है उसके लिए इस ग्रन्थ के प्रकाशक विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रद्धेय बाबूजी के द्वितीय पुत्र सुप्रख्यात साहित्यकार श्री० सत्यप्रकाशजी 'मिलिंद' चीफ लेवर वेलफेयर आफिसर, बिडला मिल्स, दिल्ली के साथ लगभग १६ वर्ष से कार्य सम्पादन करने का मुझे विशेष गौरव एव सौभाग्य प्राप्त है और उनकी ही महती अनुकम्पा स्वरूप परम पूज्य बाबूजी के श्रीचरणो में कितनी ही बार बैठकर उनसे पितृवत् अनुपम ममत्व प्रसाद रूप में पाया है।

पूज्य बाबूजी बडी सरल साधु-तथा दयालु प्रकृति के और हृदय के बड़े उदार थे। इतने कर्मठ समाज सेवी और दूसरो के दु ख में पडने वाले थे कि किसी भी कठिनाई के उपस्थित होने पर अनूपशहर का प्रत्येक साधारण व्यक्ति से लेकर उच्चतम सरकारी अफसर और धनी मानी लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति उनसे सम्मति एव परामर्श लेने उनके पास पहुचता था और वे यथा शक्ति उनकी भूरि-भूरि सहायता करते थे। वे सदैव उज्ज्वल धवल शुद्ध खादी वस्त्रो से वेष्टित रहते थे। उनके प्रतिभाशाली आकर्षक देव-तुल्य व्यक्तित्व को देखकर जो व्यक्ति उनके समक्ष उपस्थित होता था उनकी मुस्कान

भरी मुद्रा को देखकर अनायास ही प्रसन्नता के मारे उसका हृदय गद्‌गद् हो जाता था और श्रद्धापूर्वक स्वय ही उसका मस्तक नत हो जाता था। जो कोई भी एक बार उनसे भेंट कर लेता था वह उस महान् विभूति को जीवन पर्यन्त भूल नही सकता था।

श्री दुर्गाप्रसादजी के समस्त पुत्र एव पुत्रिया एक से एक बढकर उच्च शिक्षा-विद्, सच्चरित्र, विशेप गुणी है और अपने पूज्य पिताजी के आदर्श पद चिन्हों पर चल रहे है। जनता जनार्दन को पूर्ण विश्वास एव दृढ धारणा है कि उनके तपस्वी एवं परम साधक पिताजी द्वारा सचालित छात्र-छात्राओ के दोनो कालेज उनकी देखरेख मे उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होते रहेंगे। बाबूजी ने उक्त कालेजो मे अपनी पूरी शक्ति एवं सम्पदा निष्काम भावना से लगाकर अनूपशहर में उच्चशिक्षा को जन सुलभ बना दिया। अतः आज उनके उदार आशय एव निस्वार्थ सेवावृत्ति को प्रकट करने वाली धवल कीर्ति रूपी पताका सर्वत्र गगन मंडल मे फहरा रही है और यह इसी भाँति सदैव फहराती रहेगी।

पूज्य बाबूजी ने आजीवन साधुवृत्ति अपनायी। उनकी त्याग मूर्ति वेशभूषा, मधुर भाषण और सादगी को देखकर कोई यह कल्पना भी नही कर सकता था कि यह इतने बडे शिक्षा शास्त्री और अनूपशहर की ही नही अपितु उत्तर प्रदेश की इतनी बड़ी विभूति है। उनके कर्मठ जीवन का इतने से ही आभास हो सकता है कि आप इतनी बडी अवस्था मे भी अपनी निश्चित दिनचर्या मे पूर्णतः व्यस्त रहते थे। वे बड़े ही क्षमाशील थे, कोई कितना भी बड़ा अपराध करके अब जब उनके सामने सचाई से अपराध स्वीकार कर लेता तो वह उस पर फिर कृपा दृष्टि कर देते थे यह उनमें असाधारण गुण था। किन्तु असत्य भाषण करने वाले को तो वह अपना पक्का शत्रु मानते थे।

उनकी कीर्ति का पूर्ण वर्णन करना शक्य नही है। अतः केवल नत मस्तक हो अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ और परम विभु से यह प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवगत आत्मा को वह शान्ति प्रदान करे और उनके निधन से जो क्षति हुई है उस दु.ख को सहन करने की शक्ति उनकी सुयोग्य सन्तति को ही नही वरन अनूपशहर की जनता को प्रदान करे।

कागज थोडा हित घना, किहि विधि लिखूं बनाय।
सागर में जल बहुत है, गागर नही समाय ॥

भूतपूर्व म्युनिसिपल कमिश्नर,
चिड़ावा।

स्वर्गीय महाशय दुर्गाप्रसाद जी आर्य

श्री परशुराम जी

मैं १९२९ मे राजकीय सर्विस में मेरठ से बदल कर अनूपशहर पहुँचा वहाँ पहुँचने पर महाशय दुर्गाप्रसाद जी से भेट तथा जानकारी हुई। मेरी ही आयु तथा मत, धर्म के होने से और उनके स्वाभाविक शुद्ध, सत्य व्यवहार-प्रेमी होने से मैं उनका आत्मीय वन गया। वह अनूपशहर के सबसे अधिक प्रतिष्ठित रईस, जमीदार, आर्य-समाज के प्रधान, हाईस्कूल (इस समय कालिज), कन्या-विद्यालय के मैनेजर थे—वे स्वभाव से ही सत्य, न्याय, शिक्षा तथा मर्यादा-प्रेमी थे—अभिमान तो क्या उनको उचित गर्व भी न था। नगर मे कोई भी आपसी झगडा, मुकदमा या तकरार होने से दोनो पक्ष के लोग उनको सरपच वनाते थे। और उनके न्याय को प्रसन्नता से स्वीकार करके फिर एक हो जाते थे। प्राकृतिक जीवन विताते थे और वैदिक सिद्धान्तो का मन, वचन, कर्म से पूरा पालन करते थे। सारे नगर में, दोनो विद्यालयो में, आर्य-समाज के अधिकारियो तथा साधारण मेम्वरो में उनका मैंने तो एक भी विरोधी नही देखा। अध्यापक तथा विद्यार्थी वर्ग दोनो ही उनसे प्रसन्न तथा सहमत रहते थे। कैसा भी कोई मुश्किल कार्य आ जाय, उसका भार तुरन्त ही अपने ऊपर ले लेते थे—और वडी खूवी से कर डालते थे। किसी को अपने पास न वुलाकर स्वय उसके पास या घर पर पहुँच जाते थे। अपनी पत्नी के स्थायी रोगी होने पर भी उनके उपचार में, किसी महमान के आने पर उसकी खातिर तथा भोजन कराने में या वालको के स्कूल जाने आदि के कामो में अपना धैर्य न खोकर सहज-स्वभाव से पूर्ण व्यवस्था रखते थे। पूरे सम्पन्न होने पर भी उनको न स्वय कोई व्यसन था न अपनी किसी सन्तान में ही ऐसा होने दिया। विवाह सस्कार आदि मे रस्म-रिवाज रुढिवाद को न वरतकर आदर्श, वैदिक ठोस कार्य करते थे।

मेरे किसी योग्य न होते हुए भी उचित परामर्श के लिए मेरे घर पर स्वयं अपने ही से होकर आ जाते थे।

मैं समझता हूँ कि ईश्वर, या आत्मा की वात तो अलग रही, जड वस्तु का भी पूरे तौर से वखान कर देना किसी के लिए सम्भव नही है। ऐसे ही मै तो उनकी खूवियो को वता सकने मे असमर्थ हूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि महाशय दुर्गाप्रसाद जी आदर्श तथा सज्जनता की सजीव और साक्षात् मूर्ति थे।

कोटा।

भरी मुद्रा को देखकर अनायास ही प्रसन्नता के मारे उसका हृदय गद्गद् हो जाता था और श्रद्धापूर्वक स्वय ही उसका मस्तक नत हो जाता था। जो कोई भी एक बार उनसे भेंट कर लेता था वह उस महान् विभूति को जीवन पर्यन्त भूल नही सकता था।

श्री दुर्गाप्रसादजी के समस्त पुत्र एवं पुत्रिया एक से एक बढकर उच्च शिक्षा-विद्, सच्चरित्र, विशेष गुणी है और अपने पूज्य पिताजी के आदर्श पद चिन्हों पर चल रहे है। जनता जनार्दन को पूर्ण विश्वास एवं दृढ धारणा है कि उनके तपस्वी एवं परम साधक पिताजी द्वारा सचालित छात्र-छात्राओ के दोनो कालेज उनकी देखरेख मे उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होते रहेंगे। बाबूजी ने उक्त कालेजो मे अपनी पूरी शक्ति एव सम्पदा निष्काम भावना से लगाकर अनूपशहर में उच्चशिक्षा को जन सुलभ बना दिया। अत आज उनके उदार आशय एव निस्वार्थ सेवावृत्ति को प्रकट करने वाली धवल कीर्ति रूपी पताका सर्वत्र गगन मडल में फहरा रही है और वह इसी भाँति सदैव फहराती रहेगी।

पूज्य बाबूजी ने आजीवन साधुवृत्ति अपनायी। उनकी त्याग मूर्ति वेशभूषा, मधुर भाषण और सादगी को देखकर कोई यह कल्पना भी नही कर सकता था कि यह इतने बडे शिक्षा शास्त्री और अनूपशहर की ही नही अपितु उत्तर प्रदेश की इतनी बडी विभूति है। उनके कर्मठ जीवन का इतने से ही आभास हो सकता है कि आप इतनी बडी अवस्था मे भी अपनी निश्चित दिनचर्या में पूर्णत व्यस्त रहते थे। वे बड़े ही क्षमाशील थे, कोई कितना भी बडा अपराध करके अब जब उनके सामने सचाई से अपराध स्वीकार कर लेता तो वह उस पर फिर कृपा दृष्टि कर देते थे यह उनमें असाधारण गुण था। किन्तु असत्य भाषण करने वाले को तो वह अपना पक्का शत्रु मानते थे।

उनकी कीर्ति का पूर्ण वर्णन करना शक्य नही है। अत: केवल नत मस्तक हो अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ और परम विभु से यह प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवगत आत्मा को वह शान्ति प्रदान करे और उनके निधन से जो क्षति हुई है उस दु:ख को सहन करने की शक्ति उनकी सुयोग्य सन्तति को ही नही वरन अनूपशहर की जनता को प्रदान करे।

कागज थोडा हित घना, किहि विधि लिखू बनाय।
सागर में जल बहुत है, गागर नही समाय॥

भूतपूर्व म्युनिसिपल कमिश्नर,
चिढ़ावा।

स्वर्गीय महाशय दुर्गाप्रसाद जी आर्य

श्री परशुराम जी

मैं १९२९ में राजकीय सर्विस में मेरठ से वदल कर अनूपशहर पहुँचा वहाँ पहुँचने पर महाशय दुर्गाप्रसाद जी से भेट तथा जानकारी हुई। मेरी ही आयु तथा मत, धर्म के होने से और उनके स्वाभाविक शुद्ध, सत्य व्यवहार-प्रेमी होने से मैं उनका आत्मीय वन गया। वह अनूपशहर के सबसे अविक प्रतिष्ठित रईस, जमीदार, आर्य-समाज के प्रधान, हाईस्कूल (इस समय कालिज), कन्या-विद्यालय के मैनेजर थे—वे स्वभाव से ही सत्य, न्याय, शिक्षा तथा मर्यादा-प्रेमी थे—अभिमान तो क्या उनको उचित गर्व भी न था। नगर मे कोई भी आपसी झगडा, मुकदमा या तकरार होने से दोनो पक्ष के लोग उनको सरपच वनाते थे। और उनके न्याय को प्रसन्नता से स्वीकार करके फिर एक हो जाते थे। प्राकृतिक जीवन विताते थे और वैदिक सिद्धान्तो का मन, वचन, कर्म से पूरा पालन करते थे। सारे नगर में, दोनो विद्यालयो मे, आर्य-समाज के अधिकारियो तथा साधारण मेम्वरो में उनका मैंने तो एक भी विरोधी नही देखा। अध्यापक तथा विद्यार्थी वर्ग दोनो ही उनसे प्रसन्न तथा सहमत रहते थे। कैसा भी कोई मुश्किल कार्य आ जाय, उसका भार तुरन्त ही अपने ऊपर ले लेते थे—और वडी खूबी से कर डालते थे। किसी को अपने पास न वुलाकर स्वय उसके पास या घर पर पहुँच जाते थे। अपनी पत्नी के स्थायी रोगी होने पर भी उनके उपचार में, किसी महमान के आने पर उसकी खातिर तथा भोजन कराने में या वालको के स्कूल जाने आदि के कामो में अपना धैर्य न खोकर सहज-स्वभाव से पूर्ण व्यवस्था रखते थे। पूरे सम्पन्न होने पर भी उनको न स्वय कोई व्यसन था न अपनी किसी सन्तान में ही ऐसा होने दिया। विवाह सस्कार आदि मे रस्म-रिवाज रूढिवाद को न वरतकर आदर्श, वैदिक ठोस कार्य करते थे।

मेरे किसी योग्य न होते हुए भी उचित परामर्श के लिए मेरे घर पर स्वयं अपने ही से होकर आ जाते थे।

मैं समझता हूँ कि ईश्वर, या आत्मा की वात तो अलग रही, जड वस्तु का भी पूरे तौर से वखान कर देना किसी के लिए सम्भव नही है। ऐसे ही मैं तो उनकी खूबियो को वता सकने में असमर्थ हूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि महाशय दुर्गाप्रसाद जी आदर्श तथा सज्जनता की सजीव और साक्षात् मूर्ति थे।

कोटा।

धन्य धन्य बाबू जी

श्री मोहनलाल गोयल

धन्य धन्य बाबू जी तुमको, धन्य तुम्हारी महतारी।
अनूपशहर है ऋणी आपका, है जनता अति आभारी॥

जितने दानी हुए जगत में,
जीते जी ही दान दिया।
धन-दौलत का किया दान,
अरु अपना ऊँचा नाम किया॥

उनके दानो से जग मे ना दूर हुई है बेकारी।
अनूपशहर है ऋणी आपका, है जनता अति आभारी॥

बाबू जी ने दान किया जो,
मरने पर भी दान रहा।
शिक्षा का ही श्रेष्ठ दान है,
उसमें पितु का मान रहा॥

ऐसे दानो पर ही होती है मानवता बलिहारी।
अनूपशहर है ऋणी आपका, है जनता अति आभारी॥

तन मन धन अर्पित करके,
इक भव्य भवन निर्माण किया।
जनता के सहयोग से इसको,
इण्टर - कालिज बना दिया॥

ओम् के हाथों छोड़ के इसको, की सुरपुर की तैयारी।
अनूपशहर है ऋणी आपका, है जनता अति आभारी॥

विनती करते सब ईश्वर से,
अब तुम रखना इसकी लाज।
उन्नति करता रहे हमेशा,
रुके न कोई मगल काज॥

सकट के क्षण भी सुदृढ हो, ना सम्मुख हो लाचारी।
अनूपशहर है ऋणी आपका, है गोयल अति आभारी॥

लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी० कालिज,
अनूपशहर यू० पी०।

मेरे पिताजी तथा गुरु—श्री दुर्गाप्रसाद जी

श्री सत्यप्रकाश मिलिंद

यो तो कोई भी महत्वपूर्ण घटना जीवन पर अपना प्रभाव छोड ही जाती है, पर यदि उस घटना से किसी समाज के समस्त जीवन पर ही अमिट प्रभाव पडता हो तब तो वह घटना घटना मात्र ही न रहकर उस समाज का सम्पूर्ण इतिहास ही बन जाती है।

हमारे चिरस्मरणीय, प्रात वन्दनीय और परम श्रद्धेय पिताजी, श्री दुर्गाप्रसाद जी, के विद्वत्तापूर्ण, त्यागमय और सहिष्णु व्यक्तित्व को और पिछली अर्घ शताब्दी तक राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रो में निरतर प्राप्त होने वाले उनके नेतृत्व को दृष्टि में रखते हुए कोई भी व्यक्ति उनको और उनके कार्यक्षेत्र को अथवा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को एक दूसरे से पृथक् नही कर सकता।

७ जुलाई १९६१ का दिन हमारे अपने जीवन के इतिहास मे वज्रपात का दिन बना रहेगा। युग-युगो तक वह सौम्य-मूर्ति, वह अलौकिक-प्रतिभा और वह दीप्तिमान आकृति हमारे मस्तिष्क में अनेक धुधले और विखरे चित्र खडे करती रहेगी। डाक्टर महाजन के नर्सिग होम में उसी दिन तो वह महर्षि चौदह दिन का प्रवास करके महानिद्राभिभूत हो गया था। आज उस हिला डालने वाले विछोह की स्मृतिमात्र हमारी समस्त चेतना शक्ति को बुरी तरह विश्रृखलित कर डालती है।

पूज्य पिताजी १९१३ के लगभग डी० ए० वी० स्कूल देहरादून (अव डिग्री कालेज) मे प्रिंसिपल लक्ष्मण प्रसाद जी (वावा साहिव) के तत्वावधान में काम करते थे। उनके बडे भाई, हमारे ताऊजी, श्री भगवत प्रसाद जी का स्वर्गारोहण होने पर वे देहरादून से त्याग-पत्र देकर खुर्जा आ गये थे। उसी समय उन्होने अपने मरणासन्न पिताजी को प्रेरणा प्रदान करके उनकी चिरसचित राशि का अधिकाश लगभग ६२, ५०० रुपये का दान दिलाकर पतित पावनी भागीरथी के तट पर एक शिक्षा सस्था की स्थापना कराई थी। वही सकल्प आज एक विशाल वट वक्ष का रूप धारण कर चुका है जिसकी वल्लरिया देश के कोने कोने में फैली हुई दिखाई पडती है। उस सुनसान और उजाड देहात मे सबसे पहले पूज्य पिताजी स्वय ही चार पाच विद्यार्थियो को घेर कर बैठे थे, और आज उसी स्थान पर उनके यश की प्रशस्ति का गान करने के लिए एक अत्यधिक सुसचालित कालिज चल रहा है। कन्या शिक्षा के लिए भी उन्होने दो सस्थाओ का सचालन और व्यवस्थापन किया। उनमें से एक गोविन्दराम डी०ए०वी० कन्या विद्यालय है जिसमें आज कन्याओ को इण्टर स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है।

यो तो एक पिता का पुत्र से और पुत्र का अपने पिता मे अटूट, अमित और

अजित प्यार होता ही है, पर मुझे न मालूम क्यो आज उनके निधन के उपरान्त अपने चारों ओर नितान्त तिमिर ही तिमिर दृष्टि पडता है। मैं भी उस विद्यालय की कार्य-कारिणी पर उनके स्वर्गारोहण के उपरान्त ही लिया गया हू। अब मुझे कभी-कभी ऐसी आशका होती है कि कही उस महापुरुष की अनुपस्थिति से समस्त ढाचा ही विशृ खलित न हो जावे। उनके जीवन काल की इस सजीव स्मृति को अमर बनाये रखने के लिए आज हमें ग्रन्थ निकाल कर ही सतोष नही करना है, अपितु अपने अपने हृदयो को टटोलना होगा और उनके महान् त्याग और उनकी अटूट तपस्या को दृष्टि में रखते हुए अपने थोथे स्वार्थो के चक्र-व्यूह को तोड गिराना होगा और यदि हमारे अन्तर में उनके प्रति सच्ची आस्था है तो उनके दिखाये पथ पर हो चलने का व्रत लेना होगा।

आनन्द और शोक की समस्त क्रीडाओ से मुक्त होकर, आँसुओ और अट्टहासो के प्रलाप और आकर्षण दोनो से ही ऊपर उठकर आज परम श्रद्धेय पिताजी दैवी रथ पर चढ कर चले गये वह फिर लौटकर न आया ही है, और न आयेगा ही। वे उस पथहीन एव अदृश्य विशालतम साम्राज्य में प्रविष्ट कर चुके जहा न दिन ही निकलता है और न सध्या ही ढलती है और जिसे किसी कवि ने "The world bathed in a wonderful radiance with waves of beauty and joy swelling on every side" की सज्ञा प्रदान की है।

आज चन्द्रमा की मधुर किरणो की इस शीतल छाया में एकान्त मे मैं आँखें मीचकर शोकाकुल बैठा हुआ हू और पिताजी के वियोग मे तिलमिला सा रहा हूँ तो कोई अदृश्य शक्ति अनायास ही मेरे कानो में आकर कह जाती है– "विश्व कवि रवीन्द्र को याद करो। वे तो बहुत पहले ही कह गए है।' वे मेरी आखो की पुतलियो मे है मेरे शरीर मे है और मेरे प्राणो में।" निश्चय ही लगता है कि श्रद्धेय पिताजी मेरे जीवन के कण कण-और मेरे प्राणो में अन्तस्तल की कामना के रूप मे घुलमिल और रम गए है। हां, मुझे आज उनका पार्थिव शरीर दिखाई नही देता क्योकि नियति के क्रम और भाग्य के थपेडे उसे शून्य महासागर की ओर बहा ले गये। पर उनकी आत्मा कहा जायगी ? वह तो कही जा ही नही सकती। तभी तो मै बार-बार कहता हूँ कि पिताजी आज भी पूर्ववत् अन्तर में विराजित है, आज भी मेरी आँखो की पलको पर बैठे है और मेरे रोम रोम मे समाये हुए है। उसी समय मै ऐसा भी कह बैठता हू--

"See the world in a grain of sand
And a heaven in a wild flower"

अपने इसी अपरिसीम और अगाध दुख की घडी में मुझे मैक्सिम गोर्की के वे शब्द स्मरण हो आते है जो उन्होने टालस्टाय की मृत्यु पर कहे थे।" मै रो रहा हूँ। मुझे याद नही कि पहले कभी इतना हतप्रभ और अधीर होकर फूट-फूट कर रोया

हूँ। मैं नही कह सकता कि मुझे उनसे (टालसटाय) प्यार था, लेकिन यह भी तो महत्वपूर्ण है कि मुझे उनसे प्यार था या नफरत ? वे मेरी आत्मा मे सदा भयावह दिल और मनोवेग–भर दिया करते थे, यहाँ तक कि दुखदायी बात भी जो वे प्रबुद्ध करते थे ऐसा रूप अगीकार कर लेती थी। बे उदास नही करती थी बल्कि बधनो को तोड-कर व्यापक करती थी जो आत्मा को अधिक सवेदशील और उदार बनाती थी।"

उनके एक क्या अनेक सस्मरण रोज ही मेरे मस्तिष्क से आकर टकराते रहते है। जब कभी वे दिल्ली आते पिताजी हमारे मकान के ऊपर वाले कमरे मे ठहरा करते थे। तभी से आज तक भी हम उस कमरे को 'पिताजी वाला कमरा' ही कहकर पुकारते है।

एक बार की बात है। वे उसी हाल में ठहरे हुए थे। उस दिन भी मै दोपहर को साढे बारह बजे भोजन करने घर गया तो मै सीधा ऊपर के ही कमरे में पहुँचा क्योकि दोपहर का भोजन जब कभी पिताजी दिल्ली में होते थे तो हम लोग एक साथ बैठकर किया करते थे। वे मेरे पुत्र राजीव को साथ बिठाए बिना भोजन नही करते थे। आज वहाँ राजीव न था। मैंने सीढियो पर से देखा पिताजी अपनी चारपाई पर ही लेटे-लेटे 'गीता जलि' से यह पक्तिया जोर-जोर से अलाप रहे है।

"Day after day, O lord of my life, shall I stand before thee face to face ? With folded hands, O Lord of all worlds, shall I stand before thee face to face ?

Under thy great sky in solitude and silence, with humble heart shall I stand before thee face to face ?"

मै नही सोच पाया कि पिताजी ऐसी निराशामयी बात आज क्यो कह रहे है। उन जैसा कर्त्तव्यपरायण और कर्मनिष्ठ व्यक्ति ऐसी कल्पना भी क्यो कर रहा है ? उनको आज यह 'औवसैशन' क्यो सता रहा था ? मै सोचता रहा। क्या हुआ जिससे वे इतने दुखी थे और जिसका इतना गहरा आघात उनको पहुचा था—क्योकि वे ऐसी पक्तिया दु ख विभोर होकर ही दुहराया करते थे।

मै हाल में चुपके से घुस गया। वे दूसरी ओर को मुँह किये हुए लेटे थे। पैर की हल्की आवाज भी उनके कानो में चली गई और मुझे आया देखकर उन्होने करवट बदल ली और बोले 'आ गये'। और फिर बोले, "तुम कहा करते हो तुमने रवीन्द्र-साहित्य पढा है न।"

मै मौन होकर नतमस्तक सोफे पर बैठा हुआ था। उन्होने कहा, देखो न कितना सुन्दर पद है और फिर सुनाने लगे।

"बडो कठिन साधना जार
बडो सहज सुर।
परेर द्वारे फिरे, शेषे

आसे पथिक आपन देशे
वाहिर भुवन घुरे मेले
अन्तरेर ठाकुरे।"

मै हतप्रभ-सा बैठा रहा। मुझे ऐसा लगा मानो पिताजी पिताजी ही न थे। अपने सिंहासन से उतर कर भू-भाग मे स्वय श्रीनाथ ही मेरे पिताजी के रूप में आ गए थे। मेरी समस्त श्लाघा और मेरा अहम् ढह गया। मैने देखा पूज्य पिताजी कालिज की समस्याओ और उनके भविष्य के बारे में योजनाए बनाते बनाते बेहद चिंतित हो उठे थे। वे एक साथ बात का रुख बदलते हुए बोले "इन सस्थाओ का मेरे बाद में क्या होगा ?"

मै तिलमिला उठा मुझे ऐसा लगा कि वह देवर्षि हम लोगो की क्षमता के विषय मे सदेहशील थे। लेकिन निश्चय ही उनका सदेह कितना सत्य था ?

आज उस दिन की याद मुझे बुरी तरह सता रही है। मै सोचता हूँ कि अब वह दिन मेरे जीवन मे कभी नही आयेगा। मै रवीन्द्र के गीतो से गुनगुनाता रहूँगा, कालिज की समस्याओ को भाई ओम्प्रकाश जी के माध्यम से सुनता भी रहूँगा, पर वह दिन नही आयेगा, उसकी याद मुझे और मेरे अन्तर्मानस,को निरतर झकझोरती रहेगी। उस महासत की दूरदर्शिता हमें निरतर चुनौती देती रहेगी।

हे नाथ ! पिता जी के अतुलित प्रेम का खजाना मुझ से सदा के लिए छिन गया। मै आज हर प्रकार से अनाथ हो गया हूँ। आज मुझे 'साहिब' और 'अधिकारी' मानने वालो की शायद कमी न हो, और मित्रजनो, और सम्बन्धियो का स्नेह भी अतुलित और अगाध प्राप्त हो, पर आज वे प्यार भरी डाटें और फटकारें जो मेरे जीवन की अमूल्यतम निधि थी मुझ से सदा के लिए छीन ली गई है।

हाँ ! कभी-कभी मुझे स्वप्न लोक में कुछ सुख और सतोष मिलता है—जब कभी वही फिर परिचित मुस्कान लिये वे एकान्तता के उन क्षणो में चुपके से आ खडे होते है और अपने सम्पूर्ण माधुर्य को मेरे ऊपर उडेलते हुए कहते है—"बेटा, स्वय को अर्पित कर देने से बडा सुख किस चीज मे है ?" मै आँखें खोलता हू और देखने का यत्न करता हू तो मेरा मन धिक्कारते हुए कहता है। "अरे पागल ! वे तो चले भी गए। अब मन छोटा न कर।" और तभी पिताजी की यह बहुचर्चित उक्ति स्मृति-पटल से आ टकराई—"तुम्हारे इस ससार में जब मेरा कार्य समाप्त हो जायगा तब हे राजाधिराज ! मै अकेला ही चुपचाप तुम्हारे सामने आकर खडा हो जाऊँगा।" वे चले गये क्योकि उन्होने सभवत सोचा कि उनका काम पूरा हो चुका था और उनके लिए चित्रगुप्त ने कोई और काम निर्धारित कर दिया था।

उसी समय मेरे मन में यह आता है कि शायद ऐसा ही हुआ होगा—

"मृत्यु ने हस हसकर
इगित कर कहा था—
अधेरा तो रहा नही
फिर तुम क्यो रहते हो ?
प्रकाश फैलाने को
भेजा था तुम्हें जब—
आओ अब कार्य वह
पूर्ण तुम कर चुके।"
कूच तुम कर गये
विधि के विधान पर।
मित्र ! ये अस्थियाँ—
ढेर हैं– मिट्टी का
बहादो या सजोकर अब
रखो शीशे में सजाकर तुम।
व्यर्थ का विवाद है
व्यर्थ का प्रतिवाद है—
भरमाते हो स्वार्थ के
कोहरे में फसकर तुम—
पर—
देव पुरुष नाम पर
मरते हैं क्या कभी ?
कहते हैं वे बार बार—
छोडो प्रलोभन तुम
नाम का मेरे अब।"

उनको गये आज साल सवा साल हो गया। ग्रथ निकालने की बात भी कुछ भाइयो के मनो को हिलाती है और सभवत इसी मे ग्रन्थ के सम्पादन में अप्रत्याशित

विलम्ब हो गया है। शायद कुछ उपद्रवी मेघ गड़गड़ाहट सी पैदा करने की निष्फल चेष्टा करते रहे है। पर त्याग, लगन और अध्यवसाय की कोमल कोपलें हमें हर समय प्रवुद्ध और जागरूक बनाये रखती है क्योंकि हमें साफ दिखाई देता है श्रद्धेय पिताजी का घर आज आकाश मे है और वे आज वही बैठे-बैठे हमारी वचन-बद्धता की परीक्षा ले रहे है।

उनके जीवन की कुछ झाकियां:—१९३० का तूफानी जमाना था। माता जी के राष्ट्रीय विचार बडे ही स्वस्थ थे और उनकी आर्यसमाज के सिद्धान्तो में प्रगाढ आस्था थी। सयोगवश पिता जी भी उसी समय नगरपालिका के अध्यक्ष थे। पिताजी अपने विचारो के इतने पक्के थे कि छोटी-से-छोटी वात के लिए भी वे बड़े-से-बडा त्याग कर सकते थे। तत्कालीन जिलाधीश से छोटी-सी वात को लेकर उनका मतभेद हो गया और उन्होने उसी क्षण त्यागपत्र देकर अपनी उदारता और निस्पृहता का परिचय दिया।

पिता जी की अवस्था लगभग ३७-३८ की थी। माताजी का स्वर्गवास हो गया। जीवन की सबसे दुखद घटना। हम सब छोटे-छोटे भाई-बहिन, एक भी विवाहित नही। ऐसे कुसमय में भी पिताजी की हिम्मत टूटी नही ? और पिताजी ! वाह रे ! उनका साहस ! हजार गुने अदम्य साहस के साथ उन्होने उस स्थिति का डटकर मुकावला किया, हम सबको शिक्षा प्रदान की और योग्य बना दिया। हमारी सबसे बडी वहिन शान्ताजी सबसे पहली विदुषी थी जिन्होंने जयपुर से आयुर्वेद शास्त्री स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की थी। मेरे अग्रज डा० ओमप्रकाश एम० ए० पी० एच० डी० है और अनुज वृद्धि जी है जो विजली विभाग मे दिल्ली में ही काम करते है।

एक सस्मरण बहुत ही हिला देने वाला और भी है। मेरी शादी के १३-१४ वर्ष वाद हमारा एकमात्र पुत्र राजीव उत्पन्न हुआ तो हमने पिताजी को एक्सप्रेस तार दिया। उसके उत्तर मे उन्होने तार दिया—

Congratulate Bhabiji
Busy, Reaching shortly

(भाभीजी को बधाई देना, काम में व्यस्त हूँ, शीघ्र पहुँचूगा) और उसके वाद ही उनका ९ दिसम्बर का कार्ड मिला जिसमे उन्होने लिखा था—

"Received your Express wire of 7th today, yesterday being Sunday I am busy with the construction work of the Kanya Vidyalaya and would be able to leave the place on the 14th and reach there by the evening— God has listened to our long prayers and we thank Him for His very gracious kind gift. May the newly born child live long to distinguish the name of his family."

वाह रे ! कर्तव्य-परायणता के अद्वितीय पुजारी ! परिवार का बड़े से बड़ा

आकर्षण और बधन भी तुम्हें न बाँध सका। मैंने अपनी कमजोरी के आवेश में उस समय ऐसा अनुभव भी किया कि आज भी इन्हे विद्यालय और कालिज की पडी है। पर आज मैं उनकी विशेपता की गहराइयो मे उतर कर देखता हूँ तो पता चलता है कि वे तो इन बंधनो से कही ऊपर उठ चुके थे। उनका परिवार समस्त विश्व था और उनको अपने पौत्र के जन्म का आकर्षण भी अपने काम से दूर नही हटा सकता था।

कई बार उत्तर प्रदेश सरकार ने पिता जी के लिए मजिस्ट्रेटी का प्रस्ताव किया, पर वे तो निर्लिप्त योगी थे। उन्हें मजिस्ट्रेटी की लिप्ति नहीं भाती थी। अभी कुछ साल हुए जिलाधीश ने तत्कालीन-मुख्य मन्त्री को उनको स्पैशल मजिस्ट्रेट बनाने के लिए लिखा था। उन्होने तुरन्त ही अपनी ओर से नकारात्मक उत्तर दिया। जब मैंने उनसे एक रोज प्रसग-वश उत्साह पूर्वक पूछा तो वे बोले, "अब आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमाँ होगे मोमिन।"

उनका कोई भी विरोधी नही था और यदि मन की परतो में कोई उनसे विरोध भी मानता हो तो मैंने उनके मुँह से कभी भी किसी की बुराई नही सुनी। वे सच्चे आर्य थे और इसी से वे ऐसे व्यक्तियो के लिए भी यह कहकर शुभ कामना किया करते थे :—

"सर्वे भवन्तु सुखिन. सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यतु मा कश्चिद् दु खभाग् भवेत्।"

सच्ची और सीधी बात तो यह है कि लगभग २०-२२ वर्ष से उन्हें जीवन में कोई आसक्ति नही रही थी। वे केवल एक समय ही भोजन किया करते थे और बहुत आवश्यक चीजे ही रखते थे। दो कुर्तों के अतिरिक्त यदि एक भी कुर्ता अधिक बन जाय तो वे तुरन्त ही उसे किसी न किसी को दे डालते थे। वे सचय में विश्वास खो चुके थे और जीवन को केवल इसलिए चलाना चाहते थे कि समाज सेवा और शिक्षा सस्थाओ की उनकी दो योजनाएँ पूरी हो सकें।

उर्दू और फारसी के तो वे उद्भट विद्वान् थे ही, साथ ही हिन्दी और सस्कृत में भी उनकी गति को देखकर हम लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। मेरी अनुजा ज्योति को उन्होने "कामायनी" इतनी सुन्दर रीति से पढाई थी कि हिन्दी के अच्छे-अच्छे विद्वान् भी नही पढा सकते। अपने जीवन के अतिम दिनो मे ही उन्होने हिन्दी व्याकरण तैयार की थी जो हमें अमूल्य बपौती के रूप में मिली है। वे मेरे पिता ही नही, गुरु भी थे क्योकि जब मैं नवी और दसवी क्लास में पढता था तो वे 'मौरल टीचिंग' पढाया करते थे। शेक्सपियर, मिल्टन, बायरन, प्रसाद और शेख सादी के काफी पद्यांश उन्हें कण्ठस्थ थे।

श्रद्धेय भाई जैनेन्द्र जी नर्सिग होम में प्राय दोनो ही समय उन्हे देखने आया करते थे और रुग्णावस्था में भी वे घण्टो निरतर दार्शनिक विषयो पर चर्चा करते रहते

थे और भी अनेक मित्रों और परिजनो का दिन भर तांता सा लगा रहता था। उन सबसे भी जहाँ तक सभव हो सकता वे बातें भी करते परन्तु अन्तिम समय तक उन्हें चिन्ता अपनी सस्थाओ की ही थी।

आज जब वे जा चुके हैं मुझे ऐसा लगता है कि किसी दिन ये पक्तियां शायद पिता जी जैसे ही किसी महान् व्यक्ति के प्रति आस्था व्यक्त करने के लिए लिखी होगी —

"देह थके चाहे पर उनकी
सेवाए विश्राम न लेतीं,
बाधाओ की घोर तमिस्रा
और अधिक प्रोत्साहन देतो,
उनके तप की दिव्य कहानी
दिनकर कहता नित्य व्योम से
उनकी मानव शान्ति कामना
भरी हुई है शांत सोम में ।"

जिस व्यक्ति का जीवन ध्येय ही समाज-सेवा रहा हो और जो शिक्षा प्रचार और प्रसार के लिए ही जीवित रहा हो उसे जीवन से क्या मोह।

इसीलिए टैगोर की ये पक्तियाँ वे बार-बार दुहराया करते थे —

"If ever I am weary of them
I will plunge into your unfathomed bottom
Where there is death or treasure."

स्था० मैनेजर
बिड़ला हायर सैकण्डरी स्कूल
दिल्ली-६

शैलमालाएं छिपा सकतो नहीं हैं—
खाइयां गहरी लुका सकती नहीं हैं।

श्रीयुत मिलिंद जी*

खोजने को आ गया हू—
तुम छिपोगे आज—

* श्री मिलिंद जी स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद जी के द्वितीय पुत्र हैं। दिल्ली के जाने माने साहित्यकार, श्रमशास्त्री तथा उपन्यासकार हैं। वे हमारे कालिज के बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज के भी सदस्य हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में सम्पादित करने और इसके लेखों को सकलित करने का गुरू भार अधिकाश श्री मिलिंद जी ने वहन किया है। सम्पादक मण्डल उनका बहुत आभारी है।

स्वीकार लो यह प्रार्थना—
क्योंकि ?
मन व्यथित है—तन थकित है
हो गया है—
आज हर कण क्लात
मा विलगता का नही था
बोध—शैशव मे मुझे तब
किन्तु मर्माहत हुआ हू—
पिता तुम भी छिप गए अब
पर—
शैल मालाए छिपा सकती नही है
खाइया गहरी लुका सकती नही है—
आज सहसा स्वप्न में दर्शन दिए।
कहने लगे—
"आज मैं तुमसे पृथक हू
आज मे जग से विलग हू"—
वेदना से सिहर कर
मैं ज्यो उठा मल आख
सोचता, सहमा हुआ मैं रह गया
थी भूल, मन की भूल—
विक्षिप्त आखें खोजती ही रह गईं।
पूछने मन से लगा मैं—
कौन-सा भ्रम था अरे यह ?
झूठ—दिग्भ्रम और मतिभ्रम—
तुम स्वय आकर उपस्थित हो गए थे—
यह बताने—
भूल जाता हू—कि तुम मेरे नही हो—
स्वर्ग के बन कर निवासी
आज नभ में रह रहे हो।
भूलता मैं बधनो से मुक्त—
फिर कहा—ये शैल मालाए
तुम्हें है बाध सकती ?
मैं चढा उन सीढियो पर
खोजने तुमको निरर्थक।

मदिरो के उन कगूरो में नही है
शक्ति शेष।
मैं बढा स्पर्श करने
चरण जब—
मिल सके थे चिन्ह केवल शेष।
हे महर्षि।
हार यह मेरी नही है—
हा विनिश्चित एक यह मेरी कमी है—
पथ सुनिश्चित है मगर—
साहस नही मैं जुटा पाता।
कल्पना झूठी—निरर्थक है प्रतीक्षा।
लौट कर उस अगम पथ से
आज तक भी कौन आया है
अटपटाती मुस्कराहट
छटपटाती याद—
देव! सबल दो मुझे तुम
कर सकू साकार कुछ तो—
स्वप्न, आशा और वह आदेश!
तुम कहा करते यही थे
त्याग का पथ शूल से है युक्त
पर बडा सुखकर हुआ करता—
कटको से दूर—तुम उन्मुक्त।
प्रेरणा है बन गई वह सत्य—
मुक्त श्रीवर हो गए—तुम—
बधनो से प्रीति ममता के—
स्वार्थवश निज बधनो मे
व्यर्थ ही मैं बाधता हू
मैं नही हूँ जकड सकता
व्यर्थ की आसक्ति मे।
तुम अजेय अमूर्त हो अब
धैर्य धरने की हमें
क्षमता सिखा दो

ताकि
विस्मृति के क्षणो मे
प्रार्थना करते रहे हम—
और तुम
देते रहो
कल्याण का आशीष।

सीतावर पत की विल्डिग,
नई धर्मशाला के निकट, नैनीताल।

शिक्षा प्रेमी–श्री दुर्गाप्रसाद जी

डा० विश्वेश्वर प्रसाद,

स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद जी से मेरा प्रथम परिचय १९३८ में प्रयाग में हुआ था जब वह अपने ज्येष्ठ पुत्र ओम्प्रकाश को विश्वविद्यालय में लाए थे। पहली वार मिलने से ही मुझ पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पडा। उनको देखकर ही पता लगता था कि एक व्रती आर्यविचारो का दृढनिश्चय पुरुष अपने ध्येय की पूर्ति में लगा है। उनकी बातें सारगर्भित होती थी और उनसे एक सस्कृत, उच्च विचारो वाले सज्जन का आभास होता था। पहली वार में ही मुझे मालूम हुआ कि वह आर्य समाज के सदस्य है और वैदिक विचार धारा का उनके ऊपर पर्याप्त प्रभाव है। उसी समय मुझे यह भी बताया गया कि उनके जीवन का ध्येय देश की सेवा है जिसको वह शिक्षा प्रसार से पूरा करते है। उस दिन के वाद लगभग हर साल ही प्रयाग मे उनसे मिलना होता था ओर जब भी वह प्रयाग किसी काम से जाते थे हम लोगों से मिलने अवश्य आ जाते थे। उनका यह स्नेहसिक्त आचरण केवल शिष्टाचार न था, वरन् उनका हम लोगो के प्रति जो शिक्षक थे अनुराग था। प्रयाग से मेरे चले आने के वाद भी वहुधा दिल्ली मे उनसे मिलना हो जाता था और उसकी मृत्यु से थोडे ही पहले मेरी मुलाकात उनसे हुई थी। दिल्ली में कई वार मैंने प्रात ही उनको अपने घर के सामने से जाते पाया और जब भी सुवह की सैर को वह मेरे मार्ग से निकलते थे तो अवश्य ही दो वात करने और दर्शन देने की कृपा करते थे।

मैंने उनसे अनेक विषयो पर वातें की और कई वार उनकी शिक्षा सस्थाओ के सवन्ध में भी वातचीत की। उनका ध्यान सदा ही अपने कालेज को ऊचा वनाने की ओर लगा था। कैसे क्या करें कि कालेज ठीक से चले और उसका वातावरण वरिष्ठ

अध्यापको और चरित्रवान् विद्यार्थियो के अनुरूप हो। इधर कुछ वर्षों से उनको आर्थिक सकट से चिंतित पाया क्योकि कालेज का खर्च उसकी आय मे पूरा न होता था। फिर भी उनमे असहायता के कोई लक्षण न थे वह धैर्य और साहस के प्रतीक थे इन्ही गुणो के कारण वह अनेक बाधाओ के होते हुए भी कॉलिज को सुचारू रूप से चलाते रहे। उनके पुत्र से मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होने अपने जीवन में थोडे समय के अतिरिक्त कभी अपनी जीविका कमाने की चिन्ता नही की और अपना पूरा समय कॉलेज की सेवा में लगाते रहे। बालको और कन्याओ दोनो ही की शिक्षा के प्रति उनकी पूर्ण आस्था थी और दो सस्थाओ को वह चलाते भी रहे। वह नि स्पृह, नि स्वार्थ व्यक्ति थे और अपनी बडाई का ढिढोरा पीटना उनको पसन्द न था। सरकारी मान उन्होने स्वीकार न किया। देश सेवा ही उनका प्रधान कर्तव्य और प्रमुख ध्येय था। वह सादा जीवन व्यतीत करते थे, उच्च विचारो वाले थे और अपनी सतान को भी इसी आदर्श के प्रति प्रेरित करते थे। ऐसे व्यक्ति ससार मे थोडे ही होते हैं। बाबू दुर्गाप्रसाद जी उन्ही विरले पुरुषो मे थे। उनके निधन से देश की हानि हुई है पर यदि उनके मार्ग पर चलने वाले और निकल आए जो उनके जीवन से शिक्षा लें और उनकी कर्तव्यपरायणता से प्रेरित हो तो देश आगे ही बढेगा। उनकी ईमानदारी, त्याग, साहस, और परिहित-परायणता सराहनीय और आगे आने वाली पुश्तो के लिए ग्राह्य है। ईश्वर उनकी आत्मा को शाति दे और उनके काम को आगे बढाए यही मेरी प्रार्थना है।

अध्यक्ष, इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय।

श्री दुर्गाप्रसादजी

डा० दशरथ शर्मा

सज्जनों की कृपा के लिए कोई विशेष कारण नही होता। न उसके लिए अधिक परिचय की आवश्यकता होती है। मुझे इस शाश्वत सत्य का उस समय भान हुआ जब एक दिन अकस्मात् श्री दुर्गाप्रसादजी का पत्र मिला। आपके स्वभाव-सुलभ सौहार्द, स्नेह, चारित्र्य प्रेम और समत्वभाव के विषय में मै इससे पूर्व भी उनके ज्येष्ठ पुत्र ओमप्रकाश से सुन चुका था। श्री दुर्गाप्रसादजी के पत्र की एक-एक पक्ति इन्ही गुणो की साक्षी थी। मैने भी पत्र का उत्तर दिया। यही आपसे मेरे अल्पकालीन सम्पर्क का आरम्भ था।

कुछ समय और बीत गया। एक दिन ज्ञात हुआ कि आप अनूपशहर से दिल्ली

पधारे है। मै कई दिनो से आपके दर्शन के लिए उत्कण्ठित था। इसलिए समाचार मिलते ही ओमप्रकाशजी के स्थान पर पहुचा। आपकी सीधी-सादी खद्दर से बनी आर्य वेश-भूषा और सौम्य शान्तमूर्ति प्राचीन गुरुओ की याद दिलाती थी। जिस आदर्श का वे उपदेश देते थे उसके वे मानो प्रतीक बन चुके थे।

प्राचीन और नवीन विचारो का आपमे सुन्दर सामजस्य था। आर्य विचारो से प्रभावित आपसे व्यक्ति के लिए यह असह्य था कि जगत में अनाचार, सामाजिक अनैतिकता और सामाजिक अन्याय की वृद्धि हो। पश्चिमी सस्कृति से उत्पन्न होने वाले अनेक दोषो को आपने अच्छी तरह समझा था। किन्तु साथ ही पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नति के लिए आपके हृदय मे सम्मान था। वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि आपकी यह हार्दिक इच्छा थी कि सब विद्यार्थियो को विज्ञानादि विषयो का ज्ञान हो। किन्तु इससे भी अधिक आप इस बात के लिए उत्कण्ठित थे कि विद्यार्थियो का नैतिक स्तर इतना उन्नत हो कि वे इस विज्ञान का समुचित प्रयोग कर सकें। जिसका हृदय आर्य नही है वह किसी ज्ञान या विज्ञान का आर्य उपयोग नही कर सकता।

अपने अनूपशहर के कालेज की तो सभवत आपको सदा याद बनी ही रहती थी। वार्तालाप के प्रसग में स्वभावत. उसके विषय मे भी आपने कुछ शब्द कहे। तीन साला डिग्री कोर्स के नवविधान ने आप के सामने कुछ नवीन समस्याए खडी कर दी थी जिनमे कुछ अर्थ-सम्बन्धी और कुछ शिक्षा सम्बन्धी थी। नव-विधान से शिक्षा स्तर के उन्नत होने की आपको विशेष आशा न थी। दिल्ली के बी० ए० पास कोर्स के विषय में जब मैंने कुछ तथ्य आपके सामने रखे तो उन्हे आपने ध्यान से सुना। छोटो की बात को बीच में काटना सम्भवत आपके स्वभाव में न था।

मेरे लिए यही प्रथम और अन्तिम मिलन रहा। डा० ओमप्रकाश से मुझे आपके अस्वास्थ्य का समाचार मिला। किन्तु मैंने कुछ समय पूर्व ही इन्हे इतना प्रसन्नचित और स्वस्थ देखा था कि मन में यह कल्पना ही न हुई कि इन्हें जगन्नियन्ता के यहाँ से निमन्त्रण आ चुका है। स्वय आपको न ससार में रहने की ही इच्छा थी और न उसे छोडने की। आप तो उसी जगदीश्वर के कर्मठ सिपाही थे। आपने कोई कार्य किया तो उसका श्रेय भगवान् को दिया, साधक उन्हें और अपने आपको साधन मात्र समझा। इस कर्तव्यनिष्ठ महान् आत्मा के सब कार्य कर्तव्यपरक थे, मोहपरक नही। इनके प्रत्येक पत्र से मानो यह आवाज निकलती है "Duty alone and not lust of comfort can bind me"* (मै कर्तव्य से बद्ध हू, सुखाभिलाषा से नही), और मानो यही उपदेश वे आप सबके लिए छोड गए है।

रीडर इतिहास विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

---

*सन् १९५८ में लिखित आपके एक पत्र के अन्तिम शब्द।

स्मृति के झरोखे से

श्रीमती द्रौपदी देवी,

आज अपने जिस महानुभाव पूज्य गुरुदेव प्रातः-स्मरणीय श्रद्धेय बाबू दुर्गाप्रसाद जी की कुछ स्मृतियो पर प्रकाश डालने के विचार से अपने हृदय और लेखनी को पवित्र करने की अनधिकार चेष्टा कर रही हू, वह एक लोकोत्तर व्यक्ति थे। सैद्धान्तिक सत्य है कि गुणी मानव ही गुणो को जानने मे समर्थ हो सकता है अत मैं अल्पज्ञ उनके गुणो का कहा तक समझ सकती हूं, फिर भी जो उनके संस्मरण मेरे हृदय में सस्थित है उनको व्यक्त करने का लोभ सँवरण नही कर सकी हू।

पथ प्रदर्शन

सन् १९४८ मे जब मैं स्थानीय रामस्वरूप कन्या पाठशाला में मुख्याध्यापिका के पद पर कार्य कर रही थी कक्षा ८ वी की छात्राओ ने हडताल कर दी, और उस हडताल का कारण मुझे बताया। यह सूचना जब मैने उनको दी तो मुझ से अप्रसन्न हुए और बोले "अब तुम्ही जानो मैं क्या कर सकता हू जैसा करोगी वैसा भरोगी" किन्तु उनकी यह अप्रसन्नता हार्दिक न थी क्यो कि मेरे ऊपर उनका असीम स्नेह था। 'अस्तु' किसी प्रकार से तीसरे दिन छात्राए कक्षा मे पहुचवा दी, और उसके लगभग ५ मिनिट बाद ही मुझे लिख भेजा "छात्राओ को भेज रहा हू इनसे किसी प्रकार का वैर न निकाला जाय अपितु इनके प्रति अपना व्यवहार और भी उत्तम प्रेम-मय करके दिखाया जाय। इस घटना को सदैव के लिये याद करलो, प्रत्येक दुर्घटना एक उपदेश देने के लिए आती है। आशा है मेरा सकेत समझ में आ गया होगा।"

भविष्य द्रष्टा

सन् १९५९ के दिसम्बर मास मे आप हर्निया की शल्य चिकित्सा हेतु देहली गये थे उन दिनो मुझे बी० ए० प्रथम पार्ट की तैयारी करा रहे थे अत मुझे समझा गये थे कि मैं अपने अध्ययन में शिथिलता न करू, क्योकि मेरा अध्ययन स्वेच्छा से न होकर केवल उन्ही की प्रेरणा के बल पर था और वे जानते थे कि मेरे जाते ही यह पढने में शिथिलता अवश्य करेगी। फरवरी के मध्य में जब वे लौटे तो उनकी धारणा सत्य निकली। उन्होने आकर मुझ से मेरे अध्ययन के विषय मे प्रश्न किया तो उस वर्ष परीक्षा देने मे मैंने अपनी असमर्थता प्रगट की। यह सुनकर वे कुछ दुखी हुए और व्यथित हृदय से कह दिया "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

दूसरे दिन प्रात काल ही फिर मुझे बुलाया और कहा कि अब मैने निश्चय कर लिया है कि तुम्हें परीक्षा इसी वर्ष देनी है और विश्वास करो सफलता भी अवश्य प्राप्त होनी है।"

उन्ही दिनो मेरे सम्बन्धियो में विवाह थे अत फरवरी समाप्त हो गई, केवल एक मास शेष था और परीक्षा की तैयारी कुछ न थी फिर भी आज्ञा मानकर अनिच्छा से अपना अध्ययन क्रम चलने दिया। सफलता की सभावना न होते हुए भी परीक्षा दी। किन्तु २६ जून को जब उन्होने मुझे सफलता की सूचना दी तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और मेरा मस्तक उनके चरणो में स्वत नत हो गया तुरन्त ही मुझे रोकते हुए कहा "अरे यह क्या ? तुम तो पुत्री हो।"

अधीनस्थ कर्मचारियो की सेवा की सराहना

२ अक्टूबर १९५९ को मे उनके पास अपनी अग्रेजी की पुस्तक लेकर पढने के लिए पहुच गई तो उन्होने प्रश्न किया "क्या आज विद्यालय नही गई ? मैंने अपने न जाने का कारण गाधी जयन्ती का अवकाश वता दिया। आपने कहा "छुट्टियो की सूची नही देखती। यह अवकाश अध्यापन मात्र का होता है, जयन्ती के उपलक्ष्य मे भी तो कुछ करना आवश्यक है। खेद की वात है जिस भारतीय का विश्व सम्मान करता है उसे हम भारतीय कुछ नही समझते। जाओ वहिन जी (श्रीमती प्रधानाचार्या जी) के पास जाओ और उनसे कहो कि गाधी जयन्ती की तैयारी कराए। मै भी आऊगा मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ उनकी आने की वात सुनकर क्यो कि वह तो कालेज मे भी केवल सस्थापक दिवस उत्सव समारोह में ही उपस्थित होते थे। इसके अतिरिक्त किसी समाराह मे उनको सम्मिलित होते नही देखा था, फिर यह तो कन्याविद्यालय की वात थी।

मैंने जाकर उनका आदेश श्री प्रधानाचार्या जी से निवेदित किया उन्होने तुरन्त ही सव व्यवस्था करा दी। लगभग ९ वजे वह विद्यालय पधारे और आते ही प्रश्न किया "क्या शान्ति देवी नही हैं उन्हे खवर नही दी ? यह वाते हो ही रही थी कि वे भी आगई। वे बोले "मगर तुम आज कहा थी ?" जव कार्य प्रारम्भ हुआ तो उन्होने सस्था के इतिहास को वताते हुए परमात्मा को धन्यवाद दिया और कहा "आज के शुभ दिन ही हमारी सस्था को राजकीय सहायता मिली है, जिस समय वह अपनी कठिनाइयो की ओर परमात्मा की अनुकम्पा की कहानी सुना रहे थे उन के नेत्र वर-वस अश्रुओ से भर गये। अन्त में उन्होने अपने कण्ठ को साफ करते हुए कहा "हमे सफलता परमात्मा की कृपा से तो मिली है परन्तु हम इस अवसर पर श्रीमती शान्ति देवी को भी नही भूल सकते जिनके परिश्रम से सस्था ने अपने २ वर्ष २ मास की अल्पावधि में इतनी उन्नति की है। उसका श्रेय श्रीमती शान्ति देवी को ही है" हम सव निस्तव्ध होकर यह सव सुन रही थी और समझ में आया कि वावू जी इसलिए उपस्थित हुए थे।

यद्यपि जीवन पथ को प्रशस्त करने वाले इस प्रकार के अनेक अनुकरणीय सस्मरण मानस-पटल पर अकित है, किन्तु विस्तारभय से पूज्य गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करती हुई लेख को समाप्त करती हू, और जगन्नियन्ता से प्रार्थना

करती हू कि हमको उनके निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान करें ।

एक अद्भुत सुयोग

प्रोफेसर हरीकृष्ण गुप्त तथा श्रीमती माया गुप्ता, एम० ए०

यह एक सुयोग ही था कि हम २४ जून को देहली से अलीगढ नही आये । उसी दिन पूज्य बाबू जी की अस्वस्थता के विषय मे अकस्मात् हमें ज्ञात हुआ कि वे प्रोस्टेट-ग्लेण्ड के रोग से पीडित होने के कारण महाजन क्लीनिक देहली में आपरेशन के लिए भरती हो गये हैं । अत हम २५ ता० को सुवह ही उन्हे देखने के लिए गये ।

हम जिस समय क्लीनिक की सीढियो मे चढ रहे थे तो हमारे नेत्रो के समक्ष एक असाध्य रोग से जर्जर रुग्ण कराहते वृद्ध व्यक्ति का चित्र उतर रहा था, दुश्चिन्ताओ के बादल मन मे उमड रहे थे क्योकि असीम स्नेही आशका युक्त होता है किन्तु ऊपर जाते ही हमे सहसा अनुभव हुआ कि हमारी समस्त धारणा निर्मूल व निराधार थी । बिस्तर पर बाबू जी की वही चिरपरिचित क्षीणकाय किन्तु तेजस्वी हँसती-मुसकराती मूर्ति विराजमान थी ।

आँखो मे स्नेह का अपरिमित सागर उडेलते हुए उन्होने हमें अपने विषय में कुछ पूछने का अवसर ही नही दिया वरन वह तो सहज स्वभाव से विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श में व्यस्त हो गये । शिक्षा के गिरते हुए स्तर, नैतिक मूल्यो, आर्थिक मापदडो एव राजनीतिक दशाओ की व्याख्या तथा विश्लेषण वे अपने चिन्तनशील उर्वर मस्तिष्क द्वारा करते रहे । इसके अतिरिक्त उन्होंने इन विषयो पर जो सुझाव प्रस्तुत किये वे अत्यन्त उपयोगी व ठोस थे । कमरे में अन्य कई सज्जनो के अतिरिक्त उनके ज्येष्ठ तथा मझले पुत्र भी उपस्थित थे । सभी उनकी मधुर बातें मत्र-मुग्ध हो कर सुन रहे थे । ऐसा अनुभव हो रहा था कि हम किसी क्लीनिक कक्ष मे न होकर सुन्दर विचार-गोष्ठी मे बैठे हो । बात-चीत के इसी क्रम में बाबू जी ने मझले पुत्र मिलिन्द साहब से कहा कि "अरे भाई वह कागज-कलम तो ले आओ मैं आवश्यक लिखा-पढी करदू ।" इस पर मिलिन्द भाई साहब ने उदासीन तथा अत्यन्त शोकाकुल होकर कहा "बाबू जी आप व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हैं । आपरेशन के पश्चात् आप बिल्कुल स्वस्थ हो जायगे ।" हम मिलिन्द भाई साहब की श्रद्धारत उक्ति की प्रशसा मन ही मन करते रहे ।

लेकिन बाबू जी की इस बात ने हमे एक बार ही झकझोर डाला । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा वे अपने अन्त का पूर्वाभास पा चुके थे और इसके लिये पूर्णतया प्रस्तुत थे । इसी कारण वे आपरेशन की भयकरता से रचमात्र भी त्रस्त न थे ।

११ जुलाई को हमें मिलिन्द भाई साहब के पत्र द्वारा बाबू जी के निधन का हृदय-विदारक समाचार प्राप्त हुआ। आखें पढकर भी इस समाचार को पढना न चाहती थी। मन को विश्वास भी न हो रहा था। हृदय-तन्त्री के समस्त तार सहसा झनझना उठे। नियति का यह क्रूर कर्म मानव की सीमित शक्ति से परे है ऐसा सोचकर कुछ धैर्य हुआ।

पूज्य बाबू जी भौतिक शरीर के साथ हमारे बीच न होते हुए भी अपने समस्त सत्कर्मों, सद्गुणो तथा पावन उद्देश्यो से युक्त हमारे बीच में सदैव वर्तमान है, और रहेंगे और समय-समय पर भटकना तथा अंधेरे के क्षणो में हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे।

द्वारा बारहसैनी कालिज,

अलीगढ़।

श्रद्धाञ्जलि

श्री सकटू सिंह वर्मा

(१)

ओ३म् के उपासक वर, गगा-तट अनूपशहर,
वैदिक धर्म-रक्षा कर, उत्तम सत्यभाषी थे।
आन थे समाज के, प्रधान भूत पूर्व अरु
विद्यावान् दयावान् रचत छोटी काशी थे॥
एल० डी० ए० वी० कालिज, जो अनूपशहर
आप जिसके मैनेजर, मालिक, विद्याराशि थे।
दुर्गम सर कीने काम, यो दुर्गाप्रसाद नाम
महाशय उपनाम धाम अनूपशहर वासी थे॥

(२)

श्री गगानीर-जीवन, कालिज को कियो अर्पन
तन, मन, धन, साधन, धुन लगात रहे निश्चय।
उन्नीस सौ इकसठ सन्, सात जौलाई के दिन
दिल्ली में त्यागो तन, श्री जमना किनारे पै॥
वहाना बीमारी का, मरना सदाचारी का
सुना जिस उपकारी का, अनूपशहर विद्यालय।

ओम्प्रकाश आदि तीन, पुत्र छोड़े जो प्रवीन
उस ईश के अधीन, दुर्गाप्रसाद महाशय ॥

(३)

महाशय का सुयश रूप, छाँय उद्‌गण की अनूप
सूरज की मानो धूप, पृथ्वी पर छाय रही।
चन्दा की चाँदनी सी, छवि ताकी छावनी सी
श्रवण की श्रावणी, हरियाली लहरा रही ॥
रहवै रह वेल फूल फली, सन्तति बढे भाँति भली
श्रद्धा से श्रद्धाजलि अर्पण कर गुण गा रही।
दुनिया आज रोवत, असुअन से मुँह धोवत है
व्याकुल अमित होवत है, तुम्हारी याद आ रही ॥
ईश्वर से बारबार, विनती-वन्दना पुकार
निवेदन हो स्वीकार, सुरपुर के निवासी को।
महाशय दुर्गाप्रसाद, आते रहे सदा याद,
ध्यान में निधन के बाद, दरश के अभिलाषी को ॥
दुर्गाप्रसाद देहात तिनकी आत्मा को शान्ति
दीजियो लक्ष्मी कान्त, स्वर्ग मे भूवासी को।
कहे "सिंह वर्मा" छन्द, कहाँ लौ, जजीरें वन्द
प्रतिभा-मन्द तो पै, पसन्द सत्य - भाषी को ॥

अनूपशहर उ. प्र ।

स्वर्गीय श्रद्धेय बा० दुर्गा प्रसादजी के प्रति दो शब्द

श्री भगवती प्रसाद गर्ग

अपने जीवन का मैंने सदा एक ही उद्देश्य रक्खा है कि 'जब कभी अवसर आय तो सदा अपने से बडो का संसर्ग चुनो।' प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावना के अनुरूप व्यक्ति का ससर्ग अवश्य मिल जाया करता है और मुझे भी अपने उद्देश्य के अनुरूप

स्व. पूज्य बाबू दुर्गाप्रसाद जी का ससर्ग प्राप्त हुआ जिनकी महत्ता, विद्वत्ता और अन्य सभी मानवोचित गुणो का मैं अपूर्व श्रद्धा के साथ सम्मान किया करता था। इस नगर का प्रत्येक सभ्रान्त व्यक्ति उनके व्यक्तित्व का सम्मान किया करता था। मैं जिस समय भी उनके पास गया सदा ही उन्हें सन्तुष्ट और मुस्कराते हुए पाया। उनके बारे मे मेरा यह विचार दृढ होता गया कि सज्जन और बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी ससार से क्षुब्ध नही होता। जो सदा अपना कर्त्तव्य सचाई और ईमानदारी से निभाता है उसे कभी भी दुनिया से नाराज होने की आवश्यकता नही पडती। यही बाबू जी के चरित्र की विशेषता थी। मैंने कभी उन्हें असतुष्ट नही पाया। वे सदा एक सच्चे सुधारक के समान बुराई से घृणा करते थे।

मेरे और उनके सम्बंध दिन प्रतिदिन घनिष्ट होते गये। वे मेरे गुरु भी थे उन्होने मुझे पढाया भी था। उनका जितना स्नेह मुझ पर था उसको मैं शब्दो में व्यक्त नही कर सकता। विद्यालय अथवा अपनी निजी कोई समस्या ऐसी नही थी जिसके विषय में उन्होने मेरा परामर्श न लिया हो। वे स्वय भी इतने सुलझे हुए व्यक्ति थे कि जिस बात का जो परिणाम होने वाला होता था उसे वे बहुत पहले ही इस प्रकार घोषित कर दिया करते थे जैसे वे ज्योतिषी हो या होने वाली बात का चित्र उनके सामने साकार खडा है।

वे चाहे जब कहने लगते थे कि मानव के जीवन का निर्माण ईमानदारी और सत्य के कणो से हुआ है। जो मनुष्य अपने जीवन को सुखी बनाना चाहता हो उसे सच्चा होना ही पडेगा और तभी उसके शब्दो मे वह शक्ति आयगी कि वह जिससे जो बात कहेगा उसकी वही बात मानी जायगी। उन्होने स्वय भी सदा सचाई और ईमानदारी का मार्ग अपनाया। एक घटना से यह सिद्ध होता है कि उनकी सचाई और ईमानदारी का लोग कितना सम्मान किया करते थे। विद्यालय मे विज्ञान भवन का निर्माण कराना था। धन की समस्या सामने थी। उन्होने अपने भूतपूर्व विद्यार्थियो से अपील की और मैंने श्रद्धा और आश्चर्य के साथ देखा कि बात की बात मे पन्द्रह हजार रुपया एकत्रित हो गया। जिसके पास भी अपील पहुची उसने हृदय खोल कर विद्यालय को सहायता प्रदान की।

मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि से वे सदैव दूर भागा करते थे। एक बार कार्यकारिणी के सदस्यो ने उनसे कहा कि विज्ञान भवन का नाम हम 'दुर्गाप्रसाद विज्ञान-मदिर' रखना चाहते हैं और कार्य कारिणी की जो बैठक कल होने वाली है उसमें हम इस आशय का प्रस्ताव प्रस्तुत करेंगे। उस समय तो वे शान्त रहे। परन्तु दूसरे दिन बहुत सवेरे ही विद्यालय का चपरासी मेरे पास उनका एक पत्र लेकर पहुचा जिसमे लिखा था कि मैं कार्यकारिणी की सदस्यता से त्याग पत्र देता हू और आज ही देहली जा रहा हू। अपने पुत्रो के पास रहूगा। यदि आप लोगो ने विज्ञान भवन पर मेरा नाम अकित किया तो फिर कभी यहा वापिस नही आऊगा। उनके ऐसे ही आदर्श

आज भी हमारी आँखो में आसू भर देते हैं।

स्व. बाबू जी में आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था और यही आत्म-विश्वास सदा उनका प्रेरक रहा। इसी के बल पर वे ६७ वर्ष की आयु में भी एक कर्मठ कार्यकर्त्ता की भांति समाज की सेवा करते रहे। मुझ से प्राय: कहा करते थे कि मेरे बाद इस सस्था का सारा भार तुम्हारे कधो पर है और मुझे विश्वास है कि मेरे पश्चात् तुम्हारे योग्य हाथो में यह सस्था खूब फलेगी फूलेगी। मैं कभी-कभी उत्तर-दायित्व के बोझ के डर से कुछ कह बैठता तो कहने लगते थे कि जहा उत्तरदायित्व है वही मनुष्य आगे बढता है। मनुष्य को सफलता तभी मिलती है जब उसमें अविराम श्रम करने की क्षमता हो और अपने उत्तरदायित्व का भार संभालने की शक्ति हो।

उनकी महत्ता ने मुझे उनका भक्त बना दिया था। यह उन्हीं के श्रम और लग्न का फल है कि अनूपशहर मे बालक और बालिकाओ के लिए अलग-अलग उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उपस्थित है। एल० डी० ए० वी० इण्टर कालेज का भव्य भवन स्व० दुर्गाप्रसाद जी की महत्ता का ही प्रतीक है। जब तक बालिकाओ के लिए उच्चतर शिक्षा का प्रबन्ध इस नगर में नही हुआ स्वर्गीय बाबू जी को चैन न मिल सका और उन्होने अथक परिश्रम के द्वारा गोविन्दराम गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना की जो आज गर्ल्स इण्टर कालेज के स्तर तक पहुच गया है। समाज के सुपुत्र और सुपुत्रियो की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करके ही वे हमसे विदा हुए।

जो ससार को धोखा देकर महान् बनते हैं उन्ही को यह भय होता है कि संसार हमारे पीछे हमारी महत्ता को भूल जायगा। उनको ऐसे ही भय होता है जैसे कागज के फूलो को पानी का भय होता है परन्तु स्व० बाबू जी की महत्ता कागजी फूलो की महत्ता नही थी। वे अब ससार में नही है यह तो सत्य है परन्तु उनकी स्मृति भुलाई नही जा सकती, उनका सम्मान कभी घटेगा नही। वे हमारे अन्तःकरण की आँखो से कभी ओझल नही होगे।

देहली में जब वे मृत्यु-शय्या पर पडे थे तब मै वही था। चलती बार मेरे कंधे पर हाथ रख कर वे रोने लगे और कहने लगे--"मैं जा रहा हूँ पर निश्चित हूँ कि तुम तो हो मेरे पश्चात् विद्यालय को सभालने के लिए"। मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो गया कि इस महान् व्यक्ति का मुझ में कितना अडिग विश्वास है। इसी कारण आज भी मैं उस स्वर्गीय आत्मा के विश्वास की रक्षा करने के लिए तन मन धन से विद्या-लय का चतुर्मुखी विकास करने का प्रयास कर रहा हूँ। भगवान् मेरी सहायता करें।

सहायक व्यवस्थापक,
ल० द० ए० वै० इंटर कालिज,
अनूपशहर।

आदर्श-पथिक

श्री सोहनसिंह मस्ताना

[स्व० श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी का व्यक्तित्व उनके विद्यालय के छात्रो पर अपना एक अमिट प्रभाव छोड गया है। प्रस्तुत लेख इसका प्रमाण है। जिसमें लेखक ने मर्मभेदी शैली में बाबूजी के व्यक्तित्व का चित्रण किया है। —सम्पादक मण्डल]

"वह कैसा आदमी है ?" ससार प्रश्न करता है।" बुरा आदमी है—झूठा आदमी है–अच्छा आदमी है–सच्चा आदमी है" उत्तर मिलता है। इसका अर्थ क्या है, यह हाशोशाग यू० हाई० ने पूछा और कन्फ्यूशस ने उत्तर दिया, "जिसे सब घृणा करने लगें वह बुरा आदमी है, जिससे दुनिया बचकर चलने लगे, वह झूठा आदमी है, जिसे सब बरबस चाहने लगे–वह अच्छा आदमी है, और अच्छाई जिसका स्वभाव हो वह सच्चा आदमी है। जिसकी अच्छाई मे पूर्णता हो वह भव्य आदमी है, जिसकी पूर्णत्व-प्राप्त अच्छाई प्रखरता से प्रभावित हो वह महान् आदमी है। जब यह महान् आदमी लोगो के जीवन पर युगान्तकारी प्रभाव डालता है तो ऋषि कहलाता है। जो ऋषि समाज की समझ के परे हो जाता है उसे हम सिद्ध या महात्मा कहने लगते हे।" और गगा के किनारे बसी हुई इस छोटी सी नगरी के एक कोने मे खडी हुई कालिज की भव्य अरुणिम दीवार साक्षी दे रही है कि जिस व्यक्ति ने अपना तन, मन और धन देकर, अपना समस्त जीवन देकर इसका निर्माण कराया, जिसने जनपद बुलन्दशहर के एक एकान्त कोने में बसी हुई इस नगरी को एक नूतन जागरण प्रदान किया वह सचमुच एक अच्छा आदमी था, सच्चा आदमी था और भव्य आदमी था जिसके निधन के उपरान्त इस स्थल की हर दिशा एक गहरी उदासी से भर गई है। वह गोरी सी अनुपम किरण जो अनूठा प्रकाश लेकर इस स्थल पर उतरी थी, जिसने इस नगरी की हर गली को ज्ञान के संगीत से झनझना दिया, न जाने कहाँ जाकर विलीन हो गई।

ससार में प्रसिद्धि खरीदी नही जाती अपितु यह तो मानवता की ओर से उपहार के रूप में प्रदान की जाती है जो किसी की योग्यता प्रमाणित हो जाने पर ही स्वीकृत की जाती है। यो तो जिन्दगी जैसे तैसे सभी व्यतीत कर जाते है परन्तु वास्तविक जीवन तो उसी का है जो अपने देश, समाज और जाति के लिए कुछ करके जाता है, जो किसी उद्देश्य को लेकर जीवित रहता है और उस उद्देश्य, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयत्न में जीवन का सच्चा आनन्द लेता है। लक्ष्य विहीन नाविक की नैया उत्ताल तरगो में झोके खाया करती है। परन्तु स्वर्गीय बाबू दुर्गाप्रसाद जी एक ऐसा लक्ष्य लेकर संसार मे अवतरित हुए जिसकी ओर एक सफल नाविक की तरह निरन्तर आगे बढते रहे। और अन्त में अपने लक्ष्य की प्राप्ति करके ही चिर विश्राम लिया।

महामना स्व० दुर्गाप्रसाद जी ने अपने देश, समाज और जाति के लिए जो कुछ किया वह कोई साधारण कार्य नही है।

बाबू दुर्गाप्रसाद जी मे एक दैवी प्रतिभा थी, आपके हृदय में एक स्वर्गीय आभा थी जिसके सहारे वह एक वीर सेनानी की भांति हाथ मे ज्ञान की मशाल लिये आगे बढते रहे। जब कभी मै बाबूजी को देखता था तो मैं सोचने लगता था कि यही है सरस्वती का वह अमर पुजारी जिसने अपना समस्त जीवन मा की पूजा के लिए समाज को अर्पित कर दिया। यही है वीणा-पाणि का वह अनन्य भक्त जिसने पूजा के थाल मे अपना सर्वस्व रखकर आराध्य देवी की अर्चना की। यही है भारत माता का वह सुपुत्र जिसने माँ के आंगन मे प्रकाश करने के लिए एक ऐसा दीपक जलाया जो अनन्त काल तक स्वर्णिम प्रकाश की किरणें बखेरता रहेगा और आज भी जब मैं विद्यालय के मध्य भवन मे उनका चित्र देखता हूँ तो मेरा मस्तक श्रद्धा से स्वय नत हो जाता है।

सहसराम में शेरशाह का मकबरा उसके व्यक्तित्व का प्रतीक माना जाता है। ताजमहल, शाहजहाँ के भावुक, प्रेमी और कलात्मक मस्तिष्क का अमर चिन्ह है। सिकन्दर मे अकबर का मकबरा उसकी महत्ता और सगीत भरे हृदय का परिचायक है तो एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज अनूपशहर का विशालकाय-भवन बाबू दुर्गाप्रसाद जी की महत्ता एव उनके विशाल हृदय का सजीव चित्र है। विद्यालय के भवन के कण-कण मे उनकी आत्मा समाई हुई है। उनके अधरो की मुस्कान आज भी विद्यालय के सामने मुस्कराते हुए उद्यान के पुष्पो मे दिखाई दे जाती है।

जब स्व० लाला लक्ष्मणप्रसाद जी ने इस विद्यालय की स्थापना के लिए ६२५०० रु० की धनराशि प्रदान की थी तब किसे पता था कि यही विद्यालय एक दिन जनपद का मुख्य विद्यालय बन जायगा। प्रकृति एक ही जैसे दो प्राणियों का निर्माण नही करती। प्रत्येक जन्म मे वह अपने ढाचे को बदल देती है। वह जादू भरा मिश्रण जो एकबार एक मानव के हृदय मे उडेल दिया जाता फिर दुबारा काम मे नही लाया जाता किन्तु स्वर्गीय लाला लक्ष्मणप्रसाद जी के सुपुत्र श्री दुर्गाप्रसाद जी ने केवल धन ही नही अपितु तन, और मन भी समाज को अर्पित कर स्वयं को और भी महान् सिद्ध कर दिया। समस्त जीवन भर आप विद्यालय की उन्नति के लिए संघर्ष करते रहे और सफलता ने आपके कदम चूमे। आपके व्यतित्व मे कुछ ऐसा आकर्षण था कि दानवीरो के हाथ उदारता पूर्वक दान देने के लिए आगे बढते रहे। आपके सरक्षण मे विद्यालय निरन्तर विकास करता रहा। सचमुच बाबूजी का चरित्र महान् था। आपके चरित्र के बल से ही विद्यालय की दीवार निरन्तर दृढ और विस्तृत होती गई। जे० हावेज के कथनानुसार "चरित्र एक शक्ति है, एक प्रभाव है, वह मित्र उत्पन्न करता है, सहायता और सरक्षण प्राप्त करता है और धन, सम्मान तथा सुख का निश्चित मार्ग खोल देता है।" बाबूजी के चरित्र मे वह आकर्षण था

कि विद्यालय के पूर्व छात्र जो यहाँ से ज्ञान प्रकाश अर्जित कर जीवन के लम्बे पथ पर आगे बढ कर उन्नत्त पदो पर पहुँच गये, वे भी निरन्तर विद्यालय को सहायता देते रहे।

अपने जीवन के अन्तिम दिनो में आपने नूतन विज्ञान-भवन का निर्माण करवाया। आज वह नूतन विज्ञान-भवन रह-रह कर आपकी याद दिलाता है। हाथ मे छडी लिये, सिर पर टोपी लगाये, वन्द गले का कोट पहने, जव वह श्रद्धेय वृद्ध विज्ञान कक्ष के निर्माण-स्थल की ओर कदम बढाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि राजघाट का अमर निवासी दिल्ली यात्रा को जा रहा है। आपकी चाल में वह गभीरता थी वह आकर्षण था जो सभी को अनुचर और अनुगामी वनने के लिए वाध्य करता था। अपनी पतली छडी के सहारे जव सभल-सभल कर कदम रखते हुए वे विद्यालय के द्वार से निकल कर जी० डी० ए० वी० गर्ल्स हाई स्कूल में कन्याओ को स्वय शिक्षा देने जाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि उनका हर कदम शिक्षा के प्रसार की योजना बनाता हुआ आगे वढ रहा है।

शिक्षा समाज का वह उत्तरदायित्व है कि यदि उसे समाज न निभाये तो वह मूर्खों का समाज कहलाता है। यदि हम चाहते है कि यह ससार एक बन्दी-गृह वन-जाय और ससार मे रहने वाले कैदी जैसा जीवन व्यतीत करे तो हम शिक्षा और शिक्षण परम्परा को समाप्त कर दें। यदि ससार मे शिक्षा और शिक्षक न रहे तो सचमुच इस ससार की तस्वीर इतनी भयानक और घृणास्पद वन जायगी कि मानव का जीवन नारकीय हो जायगा। वह समाज अपनी सन्तान का शत्रु है जो उनके विकास का ध्यान नही रखता। दुर्गाप्रसाद जी के हृदय में समाज के बच्चों के भविष्य के कल्याण की भावना इस प्रकार समाई हुई थी कि वे निरन्तर उन्ही के लिए योजना बनाते रहते थे।

वह इसी धरती का निवासी था किन्तु उसके विचार सितारो से भी ऊँचे थे। वह इसी धरती का मानव था किन्तु उसे देवत्व प्राप्त था। वह इसी धरती पर चलता था इसी धरती पर वढता था किन्तु उसका लक्ष्य हिमालय से भी ऊँचा था।

लोग दान देते है और चर्चा करते हुए नही थकते किन्तु वह एक ऐसा दानी था जिसका दाहिना हाथ देता था और वाया हाथ जान भी न पाता था। कभी किसी ने उनके मुख से यह न सुना कि उन्होने समाज के लिए क्या किया। जव कभी भी सस्थापक-दिवस पर उन्हें वोलने का अवसर मिला तो पहले वह अपने पूज्य पिता की याद में रोते और फिर कहते। "मैं उनका अनुचर मात्र हूँ, समाज का सेवक हूँ और जो कुछ कर रहा हूँ, सब कुछ सबकी सहायता से कर रहा हूँ। मै तो अकिंचन सेवक हूँ जो श्रद्धा से मस्तष्क झुकाकर केवल सेवा ही किया करता है।"

एल डी ए. वी. इण्टर-कालिज, अनूपशहर तो आपके त्याग का प्रतीक है ही किन्तु जी. डी ए वी गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना का श्रेय भी आपको ही है। दोनो

स्कूल आपके सरक्षण में निरन्तर विकास करते रहे। आपकी अनुभवी बुद्धि और तीव्र दृष्टि विद्यार्थियो के लिये सदैव उत्तम शिक्षकों का चुनाव करती थी। यही कारण है कि आपके स्कूलो का परिणाम सदैव अच्छा रहता है।

९ जुलाई, की वह भीगी-भीगी सुवह मुझे जीवन भर न भूलेगी जब आकाश पर छाये हुए काले वादलो की छाया मे, वर्षा की फुहार मे भीगता हुआ मैं नये वर्ष के प्रथम दिन विद्यालय को गया न जाने क्यो उस दिन मेरी हृदय वीणा के तारो से कोई दर्द भरा सगीत निकल रहा था। सभी पथ सूने थे। विद्यालय के द्वार में प्रवेश करते ही मैंने वहाँ पर एक विचित्र सूनापन अनुभव किया। सामने उद्यान में नीरवता कोहरे की चादर ओढे जमीन पर पडी सिसक रही थी। फूल और पौधे मलिन-मुख, सिर झुकाये, शोक और व्यथा से विकल होकर मानो उसके वक्ष पर हाथ रखते थे। आँसू की दो बूँदे गिराकर फिर उसी भाँति देखने लगते थे। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य था। पवन भी न जाने किस शोक में, न जाने किस भाव से वहाँ की धरती को चूमता हुआ निःशब्द गति से आगे वढ रहा था। ज्योही मैं विद्यालय के भव्य भवन में पहुँचा न जाने कहाँ से मेरे कान में एक दुख भरी आवाज आई और मेरी आँखे स्वत. ही वावू दुर्गाप्रसाद जी के भव्य चित्र की ओर उठ गई। मेरे अधरो से केवल यही निकला—"आह वावूजी! आप हमें छोड गये।" वहाँ केवल मैं ही नही रो रहा था अपितु ईंट की दीवारो से, चारो ओर के वातावरण से, वहा की धरती के कण-कण से रुदन की आवाज़ आ रही थी। वह ऐसा मौन रुदन था। उस रुदन मैं ऐसी व्यथा थी, वह विडम्बना थी कि हम रो पडे, हमारा हृदय रोया, हमारा रोम रोम रो उठा किन्तु हमारे सिसकने की आवाज वहाँ किसी ने न सुनी।

७ जुलाई, १९६१ को मौत के ठडे हाथो ने वावूजी को हमसे छीन लिया। वह अपने रोग का इलाज कराने के लिए, नव जीवन पाने के लिए देहली गये किन्तु अनूपशहर के दुर्भाग्य से यहाँ उनकी केवल अस्थिया ही लौट सकी। ९ जुलाई को जब आपके सुपुत्र डा० ओम् प्रकाश आपकी अस्थिया लेकर अनूपशहर आये तो सारे नगर-निवासी व्यथित-हृदय से आपका पथ देख रहे थे। शोक का सागर मन मे सजोये एक विशाल जनसमूह पावन भागीरथी की ओर वढ चला। सव के अधरो पर "आह" थी, मुख पर वेदना और आँखो मे आँसू थे। उसी सध्या को उस महान-आत्मा का अवशेष चिन्ह, उसकी अस्थिया गगा के पावन जल में प्रवाहित करदी गई और उसका शरीर सासारिक वस्त्र-काया सदैव के लिए इस धरती से अदृश्य हो गई।

आज भी जब मैं स्कूल जाता हूँ तो भगवान् वन्दना के समय मेरी आँखें

स्वामी दयानन्द सरस्वती के चित्र से उतर कर लाला लक्ष्मणप्रसाद जी के चित्र से होती हुई बाबूजी के चित्र पर आकर रुक जाती है और मेरे अधरो से अस्पष्ट स्वर निकलता है। "ऐ समाज के अमर बेटे! हमारे उज्वल भविष्य के निर्माता! राष्ट्र के दृढ स्तम्भ! तू सदैव अमर रहेगा।"

विद्यार्थी एकादश (विज्ञान)
लक्ष्मण प्रसाद डी. ए. वी कालिज,
अनूपशहर उ. प्र।

स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद जी के प्रति

स्व० श्री यादराम शर्मा

बहुत दिन को रोगी, अयोग्य हर कारज के, हाथ हू उठाऊ तो थकान मुझे होती है।
कैसे फिर लेखनी सभालू और लिखू कछु, रखते ही कागद पै शक्ति मन्द होती है॥
रुके नाहि धडकन पै यत्न हू भुतेरे करू, भाव-सिन्धु-मध्य यह उठाती वो डुबोती है।
श्री बाबू दुर्गाप्रसाद मुझे रोये तुम, तुम्हारे लिये जगती पछाड़ खाय रोती है॥
कोई रोता है काहि को न याद निष्काम करे, स्वारथकी गन्ध लिए जगत का पसारा है।
पख यश गान करे पक्षी निज प्रेम लिये, सागर को न पूछे वह दुष्ट अति खारा है॥
भौंरे को ही देखो कैसे लिपटो है गुलाब से, वह यद्यपि काटो का भयकर भय न्यारा है।
तुम्हें याद करके जहान दुखी होत नित्य, एतो उपकार उनके साथ में तुम्हारा है॥
पिता का लगाया विरवा सीचा श्रम विन्दुओ से, रविकर-ताप शीश ऊपर ले विताया है।
चार-चार छ-छ घटे खड़े रहे तीर जैसे, भूल-करते राज को स्वय जा वताया है॥
भूख को न ध्यान और शरीर को न मान कुछ, शुरू काम आवै, वन्द सामने कराया है।
धन्य कर्मवीर तुमने तन, मन, धन दे, सरस्वती-मन्दिर रम्य यह बनाया है॥
इतनी ऊची कुरसी और ऐसे नमूने का दस पाच जिलो मे कालिज नाय मिल पावेगो।
आये कोई अजनवी तो देखत आप हरो होय, हृदय के कमल को भव्य भवन यह खिलावेगो

लक्ष्मण प्रसाद डी. ए वी. कालिज,
अनूपशहर, उ. प्र.।

स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद के प्रति

श्री छतर सिंह, कक्षा द्वादश (विज्ञान)

मानव हो दुर्गा प्रसाद सा, जो मुख के सम्बल थे।
नभ- के तारे टल सकते, पर उनके भाव अटल थे॥
द्वापर में घनश्याम और त्रेता में राघव जन्म।
नवयुग के दुर्गा प्रसाद अवतरित हुए शुभ कर्म॥
ज्यो प्राची मे सूरज चमके करे नित्य उजियारा।
उसी तरह भारत-माता का यह था राज-दुलारा॥
तपसी सा जीवन भर यह धर्मार्थ कार्य करने वाला।
सत्य, अहिंसा के हित अपने को बलि वह देने वाला॥
इस विद्यालय के सब कुछ थे भूत-पूर्व मैनेजर।
बुद्धि तीव्र थी, शक्ति घनी थी यद्यपि तन था जर्जर॥
श्री लक्ष्मण प्रसाद के सुत थे वैसे ही उपकारी।
विद्यावास किया स्थापित निज सब कुछ निधि वारी॥
कालिज रूपी बगिया के रक्षक प्रसाद माली थे।
या कालिज रूपी गुलाब की मन मोहक डाली थे॥
बिन माली के सूख रहा उसका अनमोल बगीचा।
जिसको जीवन भर प्रसाद ने निजी रक्त से सींचा॥
उसके अनुपम कर्मों का ऋण हमें चुकाना मुश्किल।
ऐसे पुरुषोत्तम मानस को विस्मृत करना मुश्किल॥
भगवत् शरणम् गच्छामि कह हमसे नाता तोड़ दिया।
पुरुषोत्तम दुर्गाप्रसाद ने स्वर्ग से नाता जोड़ लिया॥

विद्यार्थी-कक्षा द्वादश (विज्ञान),
लक्ष्मण प्रसाद डी. ए. वी. कालिज,
अनूपशहर उ. प्र.

परोपकार-मूर्ति श्री बाबू दुर्गाप्रसाद

श्री पंडित श्रीराम जी शर्मा

ऐ शकर मिट जायंगे, धवल धाम आराम।
पै न मिटेगो अन्त लौ, उपकारी को नाम॥

विद्या-प्रेमी परोपकार एव दया की साक्षात् मूर्ति एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज एव श्री गोविन्द राम गर्ल्स हयार सैकेंड्री स्कूल, अनूपशहर के सस्थापक तथा व्यवस्थापक स्वर्गीय वावू दुर्गाप्रसाद जी सुप्रतिष्ठित श्री लाला लक्ष्मण प्रसाद जी खुर्जा निवासी के सुपुत्र थे। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे अपने पिता जी के नामराशि देहरादून कालिज के प्रिंसिपल श्री लक्ष्मण प्रसाद एम० एस० सी० के साथ रहे। सन् १९२१-२२ में देहरादून जाकर उनकी सरक्षकता में दो वर्ष तक अध्यापन कार्य किया तथा स्कूल सम्वन्धी प्रशासन एव व्यवस्थापन कार्य दत-चित्त हो कर सीखते रहे। उन्होंने इतने स्वल्प काल में ही अध्यापन कला एव स्कूल सम्वन्धी प्रवन्ध करने की कार्य-कुशलता एव दक्षता प्राप्त कर ली। इस अनुभव के भरोसे पर ही अपने पूज्य पिता जी की पुण्य स्मृति के आधार पर स्थापित एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज, अनूपशहर की वागडोर स्वय सन् १९२३ मे अनूपशहर आ कर अपने हाथो मे सम्भाल ली। आप प्रवन्धक होते हुए भी अध्यापन कार्य साथ साथ करते रहे। आपकी अध्यापन शैली की एक अपनी विशेषता थी। प्रत्येक छात्र आपकी शैली को वहुत पसन्द करता था और पढाये पाठ को शीघ्र ही हृदयंगम कर लेता था। जिन कमजोर छात्रो की कक्षा से अन्य अध्यापक कतराते थे बहुधा आप उन्ही कमजोर छात्रो वाली कक्षाओ को पढाने में विशेष रुचि लेते। आपके अथक परिश्रम के परिणाम-स्वरूप अन्य कक्षाओ की अपेक्षा फिर भी आपकी पढाई हुई कक्षाओ का परिणाम श्रेष्ठ रहता। सन् १९२३ में जव आप अनूपशहर मे पधारे तव पक्की सराय में स्थित स्कूल के प्रबन्धक एव मुख्याध्यापक रहे। यदि वावू जी उस समय राजकीय सेवा करना पसन्द करते तो वस्तुत अपने जीवन काल मे उच्च कोटि के पदाधिकारी होते लेकिन आपकी रूचि तो इन्ही शिक्षा सस्थाओ की प्रगति मे ही लगी हुई थी।

एल० डी० ए० वी० इण्टर कालिज अनूपशहर इस तहसील के क्षेत्रवासी जनो के लिए कितना उपयोगी है, यह यहा की जनता पच दशाव्दियो से पूर्ण अनुभव कर रही है और इसकी उपयोगिता एव महत्व से पूर्ण परिचित है। यहाँ से कितने सहस्र छात्र शिक्षा प्राप्त करके इस कालिज की ज्योति विभिन्न स्थानो, पदो एव उच्च कार्यालयो मे देदीप्यमान कर रहे है। कालिज मे इस समय छात्रो की सख्या ८५० है जव कि ४-५ मील की दूरी पर कई हायर सैकेंड्री स्कूल खुले हुए हैं। प्रारम्भ में १९१५-१६ में अध्यापन कार्य दक्षिण दिशा वाले कमरो में रहा। उत्तरी भाग के कमरो में छात्रावास निश्चित किया गया। जव विद्यालय के कक्षा-भवन का निर्माण हुआ तो वावू जी ग्रीष्म ऋतु की सतप्त दोपहरी में एक श्रमिक की भाति स्वय खडे होकर अपने सन्मुख अपनी देख रेख मे एक-एक ईट को लगवाते। इस विद्यालय के भवन निर्माण का ठेका किसी ठेकेदार को भी दिया जा सकता था लेकिन उससे कालिज के पैसो का दुरुपयोग होने की सभावना हो सकती थी। इसलिए वावू जी ने स्वय अपनी देख रेख में कष्ट सहन करते हुए अपनी उपस्थिति मे स्वय श्रमिको के साथ खड़े होकर

भवन-निर्माण का कार्य कराया, और कालिज के धन का सदुपयोग कराकर ही सांस ली। यह उनके अथक परिश्रम, अध्यवसाय और सच्ची लगन का द्योतक है। जिस समय यह कालिज स्थापित किया गया था आस-पास बीसों मील की दूरी तक कोई और शिक्षा-संस्था न थी। छतारी एव शिवाली और दूर-दूर तक के ग्रामो के तथा अन्य जिलो के छात्र भी यहां आकर ज्ञानार्जन एव विद्याग्रहण करते थे।

बाबू दुर्गाप्रसाद जी को यह बात बटी खटकती थी कि छात्रो के क्रीड़ार्थ कोई कालिज का अपना क्रीड़ा क्षेत्र नही था। वैसे माननीय ओनरेबल श्री अरुण चन्द्र सिंह एम० पी० जमीदार, अनूपशहर ने क्रीड़ाक्षेत्र के हेतु सैकड़ो बीघें भूमि कालिज को मौखिक रूप से दे रखी थी लेकिन वैधानिक रूप से लिखित रूप में नही दी गई थी। श्री कुवर महोदय की जमीदारी के पश्चात् कानपुर निवासी श्री केदार नाथ केजरीवालो के पास जमीदारी आ गई थी उन्होने कालिज पर भूमि-क्रीडा-क्षेत्र का अभियोग लगा कर नालिश बेदखली दायर कर दी। इस अभियोग में बाबू जी ने तन,मन, धन एवं सच्ची लगन से पैरवी की और वैधानिक रूप से क्रीडा-क्षेत्र की भूमि पुन: प्राप्त करने में सफलता एव सिद्धि प्राप्त की। इस अभियोग का निर्णय माननीय विद्वान्, न्यायाधीश, बुलन्दशहर ने दिया कि कितने पिछले वर्षो से ही कालिज का अधिकार चला आ रहा है, इस लिए भूमि कालिज की है और कालिज को क्रीड़ा-क्षेत्र की आवश्यकता भी है। अतएव मै कालिज के पक्ष में ही निर्णय देता हूं। बाबू जी में सबसे विशेष बात यह थी कि वे तुच्छ सासारिक भावना से बहुत ऊचे उठे हुए थे। इसीलिए उनके अनुपम गुण का सिक्का सब जगह बैठ जाता था।

बाबू जी रूढिवादियो की भाति पुरुष-शिक्षा के ही पक्षपाती नही थे वरन् स्त्री शिक्षा के उससे भी अधिक प्रेमी थे। प्रारम्भ में बाबू रामस्वरूप जी ने एक कन्या-पाठशाला कस्बे अनूपशहर में स्थापित की थी। उसका प्रबन्ध भी स्वय उन्होंने अपने हाथ में लिया और १९२४ से १९५८ ईस्वी तक उसका कार्यभार भी अपने दृढ कंधो पर सभाला तथा सच्चे सुप्रबन्धक के रूप में कन्या पाठशाला का कार्य दत्तचित्त होकर किया। सन् १९५८ ईस्वी में द्वितीय कन्या-शिक्षा सस्था की नीव डाली जो अब उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के स्तर पर पहुच चुकी है। आपके सुप्रबन्ध के कारण सन् १९६० ईस्वी मे कन्या-पाठशाला का दसवी श्रेणी का बोर्ड का परिणाम अत्युत्तम एव सराहनीय रहा। उस वर्ष का यह परीक्षाफल उत्तर प्रदेश बोर्ड के परीक्षाफलो में सर्वोत्तम था। परीक्षा में सम्मिलित २६ छात्राओ में से २४ उत्तीर्ण थी। इस उत्तम फल का श्रेय श्री बाबू जी को ही है जिन्होने अपने अनुभव के आधार पर स्वल्प काल में ही विद्यालय को इतनी प्रगति तक पहुचा दिया। आपने कालिज तथा पाठशाला से वेतन के रूप में कभी एक पैसा भी नही लिया और अवैतनिक रूप से सदैव सेवा करते रहे, तथा तन, मन, धन से सेवा करने में तल्लीन रहे। एक बार जनवरी सन् १९१९ ईस्वी में श्री सी० ए० ममफोर्ड आई० सी० एस० (Mr. C. A. Mumford I. C. S)

नामक जिलाधीश निरीक्षणार्थ उपरोक्त विद्यालय म पधारे थे। वे विद्यालय के प्रागण, कक्षा-भवन, शिक्षा एव क्रीडा प्रतियोगिताओ को देखकर चकित एव गद्‌गद् हो गये और निरीक्षण पुस्तिका में उन्होने लिखा कि गत दो वर्ष के स्वल्प काल में इस विद्यालय ने जो प्रगति की है वह कम आश्चर्यजनक नही है। मैं इससे अति प्रभावित हुआ हूँ। इस प्रगति को मैं लेखनी से वर्णित नही कर सकता। इस प्रकार मुक्त-कठ से जिलाधीश महोदय नें भूरि-भूरि प्रशसा की ।

एल० डी० ए० वी० कालिज, अनूपशहर आज जो हमें एक विस्तृत विशाल छाया एवं फलदार वृक्ष की भाति खड़ा हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है बाबू दुर्गाप्रसाद जी के कर-कमलो से पाला पोषा हुआ लघु पौधा था जिसे उन्होने स्वय अथक परिश्रम के साथ अपने रक्त तथा पसीने से एक चतुर माली की भाति सीच-सीच कर इतना बडा कर दिया है कि जिस पर सदा फल लगते रहेंगे और हम और हमारी सतति अपनी इच्छानुसार फल प्राप्त कर उसका रसास्वादन करती रहेंगी। साथ में इस वृक्ष को सीचने वाले माली का भी गुण-गान करती रहेगी जिसने हमारे लिये ऐसा सुखद फलदार वृक्ष लगाया ।

प्रतिभाशाली बाबू दुर्गाप्रसाद जी बड़े निष्कपट, सरल स्वभाव उदार एवं परोपकारी व्यक्ति थे। परोपकार की भावना तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। किसी को निराश तो वे करना जानते ही न थे। "परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः। परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदम् शरीरम्।" यह श्लोक उन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है अर्थात् वृक्ष परोपकार के लिए ही फलते हैं, नदिया भी परोपकार के लिए ही वहती है, गायें भी परोपकार के लिए ही दूध देती है यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है। नि.सन्देह बाबू जी सच्चे परोपकारी व्यक्ति थे। वे स्वार्थ की सकुचित सीमा से बहुत दूर थे। 'उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" अर्थात् उदार-चरित्र वालों के लिये "सम्पूर्ण विश्व ही परिवार है"।

जब कभी मैं उनकी सेवा में किसी भी कार्यवश जैसे प्रविष्ट्यर्थ पहुचा चाहे वे छात्र पढाई की दृष्टि से कमजोर भी हुए, उन्होने मेरी प्रार्थना को कभी भी नही ठुकराया और मैं निराश नही लौटा। मेरे द्वारा इसी कालिज में प्रविष्ट कराये गये छात्र एम० ए० मे उत्तीर्ण होकर नायब तहसीलदारी, प्रोफेसरी एव अनेक उच्च पदो पर राजकीय कार्यालयो में कार्य कर रहे हैं।

मेरे कनिष्ठ भ्राता श्री सुखदेव शर्मा शास्त्री ने आरम्भ में अनूप शहर कालिज में सन् १९१८ में सस्कृताध्यापक पद पर लगभग नौ महीने कार्य किया। उन्होनें

इतने समय मे ही इतना अनुभव इस विद्यालय में प्राप्त कर लिया कि बाद में सफलता पूर्वक कार्य किया।

श्री बाबू जी के तीन पुत्र-रत्न हैं जिनके शुभनाम श्री डा० ओमप्रकाश, श्री सत्य प्रकाश जी 'मिलिन्द' एवं वुद्धि प्रकाश जी गोयल हैं।

श्री ओम् प्रकाश जी एम० ए०, एल० टी०, पी० एच० डी०, इस समय दिल्ली के सुप्रसिद्ध करोडीमल कालिज मे प्रोफेसर है। बाबू जी ने अपने जीवन काल में श्री ओम्प्रकाश जी को एल० डी० ए० वी० कालिज अनूपशहर का प्रबन्धक पद सौंप दिया था। यह भी अपने पिता जी के सदृश प्रशासन एव सुप्रबन्ध में कुशाग्र एव प्रवीण हो गये। आपकी अनुपस्थिति में अवैतनिक सहायक प्रबन्धक श्री बाबू भगवती प्रसाद जी गर्ग विद्यालय का प्रबन्ध बडी लगन के साथ करते हैं। आशा है कि श्री ओम्प्रकाश जी अपने पिता जी के चरण चिन्हो (Foot Prints) पर चलकर उनका यश फैलाते रहेंगे और सस्थाओ की सेवा करते रहेंगे।

श्री सत्यप्रकाश जी 'मिलिंद' बाबू जी के द्वितीय पुत्र रत्न हैं। बिड़ला मिल, दिल्ली में श्रम-विभाग के अधीक्षक (Chief Labour Welfare officer) है। आप एक उच्च कोटि के कवि, उपन्यासकार एव एकाकीकार है और दिल्ली में कई शिक्षा संस्थाओ से घनिष्ट रूप से सम्बंधित है। श्री मिलिन्द जी के नीचे कई सहस्र की सख्या में मिल के श्रमिक कार्य करते है। वे इतनी सहृदयता, दयालुता, एव उदारता के साथ श्रमिक वर्ग से व्यवहार करते है जिससे सारा श्रमिक वर्ग अति सतुष्ट एव प्रफुल्लित रहता है। यह श्रमिक वर्ग आप जैसे सहृदय व्यक्ति की शरण मे कार्य करने में अपने आप को धन्य समझता है और आपका यशोगान कर कृत-कृत्य हो रहा है।

तृतीय सुपुत्र श्री बुद्धि प्रकाश जी गोयल भी सरकारी बिजली विभाग मे कार्य करते है। इस प्रकार बाबू जी के तीनो पुत्र वस्तुत. सपूत ही है। आशा है तीनो पुत्र महोदय अपनी प्रतिभा से बाबू जी की कीर्ति को अपने कार्य कलापो द्वारा चिर स्थायी बना देंगे और सस्थाओं की सेवा और समाज सेवा करने में अपनी ओर से कोई कमी न रखेंगे।

खेद का विषय है कि श्री दुर्गाप्रसाद जी की जीवन लीला ७ जूलाई १९६१ ईस्वीं को भारत की राजधानी दिल्ली में ही रोग से पीडित होने के कारण समाप्त हो गई। उस शोक-सवाद को सुन कर अनूपशहर-तहसील-क्षेत्र की जनता उनकी असामयिक और आकस्मिक मृत्यु की असह्य वेदना से कराह एव चीत्कार कर उठी और उस

स्वर्गीय आत्मा के प्रति दिनांक ९-७-६२ को प्रातः दस बजे ही बस स्टैण्ड पर आबाल वृद्ध नर-नारी का विशाल समूह अन्तिम शेष भस्मीभूत अस्थियों के दर्शन करने के हेतु तथा श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए आकर खडा हो गया और एक बजे मध्याह्न तक चित्र लिखित सी तथा अनिमेष नेत्रो से मौन होकर प्रतीक्षा करता रहा जब तक श्री स्व० बाबू जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री ओमप्रकाश जी अस्थियो के कलश को लेकर दिल्ली से पधारे। जैसे ही श्री ओमप्रकाश जी पधारे और अस्थियो के कलश को उनके हाथो में जनता ने देखा, तो मत्र-मुग्ध सी खडी समस्त जनता की आँखो से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। सभी उपस्थित जन उस तपस्वी तथा त्यागी व्यक्ति का मन ही मन स्मरण एव गुण गान करने लगे, जिसने अपना सारा जीवन समाज-सेवा तथा सस्था-सेवा में नि.स्वार्थ अर्पित कर दिया था। इतना विशाल जन-समूह गगाघाट पर स्थित अनूपशहर में किसी शव-यात्रा अथवा किसी ऐसे ही अन्य अवसर पर कभी नही देखा गया जितना उस दिन उसके प्रति अतिम श्रद्धाजलि अर्पित करने के हेतु एकत्रित हुआ था।

श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के रूप में उस दुष्ट कराल काल ने अनूपशहर की जनता से उसका एक प्रतिभावान्, उदार, परोपकारी, सत्यनिष्ठ, दृढसकल्पी, कर्त्तव्यनिष्ठ, नि.स्वार्थ, त्यागी समाज एव सस्था सेवक विद्या–प्रेमी व्यक्ति को छीनकर सारी जनता को शोक सागर में निमग्न कर दिया। आज उसकी अमर आत्मा ने पच तत्व से बने हुए इस पार्थिव शरीर को अवश्य त्याग दिया है लेकिन उसकी अमर वाणी एव ज्ञान विद्या-मन्दिर जो इस क्षेत्र में उन्होने स्थापित किये है उनकी स्मृति को सदैव अमर रखेंगे और उनका स्मरण कराते रहेंगे।

आज हमारी आखें नैराश्य-पूर्ण अन्धकार में उस जाज्वल्यमान रत्न को खोज रही है। कभी उनकी विद्वत्ता स्मरण हो आती है। कभी उनकी प्रतिभा, विनोद-प्रियता एवं समाज तथा शिक्षा-सस्था-प्रेम, अकारण वात्सल्य, उनका सत्य-प्रेम, असीम स्नेह एव अटूट विश्वास। इस सारी गुण-गरिमा की जो राशि थी वह आज हमसे छिन गई। आज अनूपशहर-तहसील का क्षेत्र उनके अभाव में कितना दरिद्र हो गया है। उदासीन मुरझाये हुए चेहरे भी उनकी बातो से प्रफुल्लित हो उठते थे। आज वे विद्या-मदिर उनके अभाव में ईंटो के ढेर जैसे प्रतीत होते है। यहाँ से वह आत्मा निकल गई है। प्रभु की इच्छा।

मैं ऐसे परोपकारी, दृढ विश्वासी, नि स्वार्थ-सेवी, सहिष्णु, धैर्यवान् एवं त्यागी तथा गुण-गरिमा की साक्षात् मूर्ति के आकस्मिक निधन पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू और परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवगत आत्मा को शान्ति

एवं सद्‌गति प्रदान करें और उनके परिजनो. सम्बन्धियों और इष्टमित्रों को इस दारुण असीम वेदना को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

' जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुंव जन्म मृतस्य च।
तस्माद्‌परिहार्येऽर्थे न त्व शोचितुमर्हसि ॥ गीता०।

अर्थात् जो व्यक्ति पैदा हुआ है उसकी मृत्यु एक दिन अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु हो गई है उसे एक दिन पुनः जन्म धारण करना निश्चित ही है। अतएव बिना उपाय वाले विषय मे शोक करना उचित नही है। इस गीता के श्लोक का मनन करने से ढाढस सा बंधता है। अन्त में पुनः उस गुणराशि के प्रति अपनी श्रद्धाजलि प्रगट करता हूं जो परोपकार की भावना से पूर्ण एवं ओतप्रोत थी। अन्त में कवि की निम्नलिखित पद की ओर ध्यान आकर्षित करता हुआ अपनी लेखनी को विश्राम देता हूं।

तन से सेवा कीजिये, मन से भलो विचार।
धन से इस ससार में करिये पर-उपकार ॥

कतियावली,
(बुलन्दशहर)।

IN MEMORIUM

Gyan Swarup Gupta, M. A.

(1)

YOU—who inspired us with your example are no more,
The light that shone in our midst so long is gone,
The eye that watched with its paternal affection is closed,
That hand that swayed the rod of rule is cold,
The institution you reared mourns for you to-day,
But there is no cause for sorrow, I say

(2)

YOU—at whose feet the lesson of service and sacrifice,
YOU—who moulded all my spiritual being and gave the rule to my unpractised steps in life,
YOU—who taught me that the spirit matters not the flesh,
There is no place for sorrow, let us all take a vow
' Let Service Be Our Motto"
All other memorials are frail and pass into oblivion some day,
Service alone counts and that we vow to take from to-day

Vice-Principal,
Rampuria Degree College,
Bikaner

A SERVANT OF HUMANITY

B.N Jha

I had the pleasure of knowing the late Shri Durga Prasadji of Anupshahr for the last 25 years and it pains me to find that he is no more to play the important role that he did in the social and academic life of Anupshahr I met him to start with as the Manager of a very flourishing High School for boys which later on developed into a very important Intermediate College He also started several institutions including one for the girls in the education of which he was deeply interested I had dealings with him in my official capacity as Inspector of Schools, Deputy Director of Education and Director of Education, but the official dealings were only a small portion of the contact which developed during personal interviews.

Even after I had left the Education Department and became Vice-Chancellor of the Universities of Allahabad and Gorakhpur he constantly kept me in touch with what he was doing He brought up academic problems which rarely occur to Managers and discussed them at purely academic level It was a pleasure to find that in the measures which he undertook he had the good of all sections—the students, staff and the public before him One of the good things which he did was to train the young workers so that they could take up the reins of the various institutions which he built and developed Their future thus is assured in the hands of competent people trained by him As a man Durga Prasadji represented Indian culture in its very broad sense, a God-fearing person not simply preaching high ideals but always trying to live upto them was what struck his friends He has left a gap in Anupshahr so difficult to fill up. His memory will live for long and inspire those who will be working in the various institutions built by him

Leader, Education Team,
Committee on Plan Projects,
Planning Commission,
New Delhi.

THE PRIEST OF THE TEMPLE OF LEARNING

O. P. Bhatnagar, M. A , L T.

Not enjoyment, and not sorrow,
Is our destined end or way,
But to act, that each tomorrow
Finds us farther than today

(*A Psalm of Life*)

The world is a stage and all the human beings are actors, playing their varied roles in the drama of life. There are some who evoke wide applause from the audience for the part they have played, while there are others, who fare very badly and eventually depart from this stage unadmired, unremembered and uncared for, flinging their names into the dark dismal recesses of time. Babu Durga Prasad ji was a man of noble soul, who did his part remarkably well on the stage of this mundane existence He scattered his winsome

charm in all quarters and finally left his name immortal to adorn the luminous pages of the annals of the great souls.

Great men, indeed, in all ages and countries, have identified themselves with some noble cause or the other and died in harness for the achievement of the same Sri Durga Prasad ji, likewise, dedicated his whole span of life to no small cause of education. He acted the priest, sitting at the feet of the goddess of Learning and finally gave a concrete form to his revered father's sacred desire by giving birth to a wide famed institution like L D A V. Inter. College It was but in the preceding college-session that we would discover this priest of the Temple of Learning, sitting in the one sided quarter of the college-campus, known as the Manager's Office, with keenly observant eyes poring over the files of papers Sometime he was busy either dictating letters to the clerk concerned or making a round to supervise the work of the labourers engaged in the construction of the present Science Block Cane in hand, white Kurta and 'Dhoti' on body, and spectacles on eyes, he would be seen on the road, directing his poised steps towards the college, with a majestic gait which signified his edifying thoughts and stalwart bent of mind But alas this dominating figure, under whose patronizing care the college had flourished unhampered continuously for as many as forty-one years, was snatched away from amongst us by the tyrannous hands of destiny on the fateful day of 7th July, 1961

The sudden news of his passing away, gave rise to an atmosphere of gloom and sorrow throughout the nook and corner of the town, closed lips and grave faces, as if struck with bolt from the blue, were visible everywhere The denizens of the town appeared to be left friendless and guideless, robbed as they were of their precious treasure They could not help showing their homage to the noble soul by closing the whole market and joining the wide stretched line of the procession organised in honour of the sacred ashes of Babooji (an epithet which was given to Sri Durga Prasad ji)

Sri Durga Prasad ji is no more, but his untiring efforts and his unflagging enthusiasm have earned him a place which stands by itself Right from the wake of his youth down to the end of his life, he remained absorbed in sponsoring the diversified plans, which went a long way in furthering the cause of education He perpetually believed in the motto such as "सर्वेषामेव दानाना ब्रह्म-दान विशिष्यते"

"of all charities that of knowledge is the sublimest"; and being inspired with this ideal, he created in himself a yearning passion for knowledge which found its sublimest outlet in the form of two educational institutions—one for the boys and the other for girls, both running together on sound efficient lines That the L. D. A. V. Inter College today ranks among the best institutions of our province is due to the consummate zeal and efficient management of our late worthy Manager Sri Durga Prasad ji. Unlike this there are ther institutions, recent as well as old, which are the means of the fulfilment of the self-seeking ends of certain persons; but never in the history of the college do we find an illustration, when Baboojı was motivated by a desire other than that for its overall good He maintained contact with the galaxy of the intellectual luminaries and the responsible authorities of the various departments of this province and wielded an enormous influence on them This turned out a boon to this institution, bringing about a good many facilities in its headway He always counted more on a well-equipped first rate Inter. college rather than the so-called Degree colleges of the recent mush-room growth, employing underhand means for their bare up-keep This was why he spared no pains towards the progress of this college

L D A V College cannot, at any cost, consign to oblivion the manifold services done by Baboojı, whether in the capacity of the honorary teacher or that of the Manager. His efficient teaching in the class room proved him to be as good a teacher as a capable Manager in his office The girl-students of our sister institution G D A V. Kanya Vidyalaya (Higher Secondary School) have enshrined the sweet memory of Sri Baboojı, who, notwithstanding the burden of old age, would teach them English in the class with a rare sense of pleasure and bring them home the crude technicalities of English Grammar in an utterly simple way Besides being well-versed in Hindi, Urdu and Persain, with an excellent command of the English language, he had a rich fund of practical wisdom and sagacity He won laurels in solving the knotty problems whenever put before him and turned them to his advantage by virtue of his uncanny wit

For the last few years since the girls' school came into being, he had developed a whole hearted desire to witness it thriving well just along the same lines as the L D. A V. College ran Hence he

shifted his attention from every where else to this centre of interest. He did all what ever he could, in this short span of time at his disposal with the result that the institution was soon raised from the Junior standard to the Higher Secondary standard with a set of qualified teachers on its staff He was always alive to the least possible short-coming from which the institution suffered and united all his efforts for its immunity Once, in the absence of a Music teacher on the staff of this institution for a little more than a couple of months, and his endevours failing to get hold of a good candidate for the job, he sent for me in his office and asked me to fetch a relative of mine in order to fill up the vacancy, providing her with all sorts of facilities and favours he could For certain reasons, the appointment could not be held, yet this is an adequate proof of his assiduity and devotion to the cause of education

Had this lover of knowledge been spared to live a few years more, we would have found his invaluable services reaching the zenith and would have immensely been profited by them No doubt, Anupshahr has lost a prominent personality in him and the loss caused by it is far from being reparable He was one of those judicious planners who work out their plans in a set manner, not in a hurrying over-night but after a careful study of the matter in hand These were the attributes actuated by nobility of purpose and the spirit of self effacement which made him work even against heavy odds Sri Durga Prasad ji is physically no more with us, but his elevated ideals will ever inspire the coming generation of Anupshahr to prefer the spirit of common good to that of self-aggrandizement Physically he was destined to decay and hence let no body give too much thought to it, but he is survived by his monumental achievements like the two educational instutions which will carry his name down to an inconceivable length of time, illumining it with a glow, that will never, never fade

Lakshmanprasad D A V Inter College,
Anupshahr, U P

A TRUE DEVOTEE

Pratap Singh, M A., M.Sc.

Lives of Great Men all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing leave behind us,
Foot-prints on the sands of time.

Sri Durga Prasad's death has been a very great loss to the L D.A.V. College which he had served long and well. He was rich in wisdom and experience but richest in satisfaction that to hunderds of youngmen he had imparted not only the light that comes from knowledge but some fraction of the nobility and strength of his character. He thought of the student community as a corporate body of which each member owed a duty to the others, intellectually, morally and socially. Although he was so very busy with ,the administration of a large and premier college of Bulandshahar district, he was still the life and blood of so many sister institutions. A gentleman of ideal character, a thorough disciplinarian, a fast and dependable friend, a fearless but helpful critic, broad-minded and enthusiastic, Sri Durga Prasad was loved and admired by those who knew him or who might have come in contact with him. Those who have knowledge or experience of privately-managed and State-aided educational institutions know well that exertion and ability are needed to retain, for such a long period of time, the confidence and support of the authorities of the Education Department, particularly during period of political stress of which Sri Durga Prasad had seen many during his stay as Manager That he had managed to have his way all along is eloquent testimony to his sagacity and essential worth

In a city like Anupshahr where there is neither wealth nor attraction it was difficult to get good teachers on modest salaries. Yet he had not only enlisted a band of devoted teachers but had also succeeded in making them work harder than in other institutions. Whether they did it for the sake of the distinction which the college thereby acquired or under the influence of the Principal, it reflects ͜eat credit on him. The college soon established a reputation for being a cheap educational centre in that backward corner of the district. Large number of students from the rural areas of the neighbouring districts and some even from longer distances flocked

to Anupshahr to receive education which their limited means would not enable them to receive elsewhere, and to have the '*Darshan*' of that great benefactor. The institution had seen many pitfalls and financial anxieties but through the masterful steering of Sri D. Prasad it sailed clear of them and in their inspection reports the successive Directors of Education had spoken in highly appreciative terms of praise of the all round important progress and efficiency of the institution They were all praise for his missionary zeal and indefatigable energy. The generations of students and their succeeding generations will bless this philanthropist, man of faith and self devotion, who had given his best — his life — in the service of this institution and infused a healthy spirit of service and sacrifice among the teachers and the taught alike No one who came in contact with this coarse-khadi clad sage could fail to be impressed by the prestige of his presence, his dynamic personlity and the earnestness of his conviction and feelings which were ever bursting forth and he won all along the line by sheer dint of merit and force of character I had ample opportunities of meeting and watching him at close quarters both in private and in his office in the college premises He had ever been a believer in plain living and high thinking which was reflected in every sphere of his career. In the college every line of his physiognomy and every shade of his manner imprinted themselves on the minds of the boys and the teachers His well balanced exhortations his grace and sombre but all the same affectionate messages conveyed through his series of chits to the college office were of incalculable help

There was hardly any file which he did not see nor any teacher whose records of achievement or otherwise he did not carry at his finger's ends He had through out his career been a strict disciplinarian but he had been easily accessible to all and sundry and who-so ever approached him, felt assured that he was going to a friend, philosopher, guide and would receive a sympathetic and affectionate hearing He kept cool at all times, even under the most trying circumstances, was patient in hearing, sweet of speech and slow to wrath. He had reared up the L D A.V. College almost from its infancy and in it he had raised to himself a memorial which will reflect more lustre on his name than any titles or orders which he never sought and for which he never cared.

He had profound views on many subjects. He hated politics. An election scene was no more than a *Tamasha* for him. Though a staunch Arya Samajist, he considered the mechanical chanting of hymns as croacking of frogs A puritan by nature, he disliked music personally, although he had introduced this subject in the junior classes of the college and in all classes of the Kanya Vidyalaya of which he was the moving spirit In the city he neither joined any marriage party nor any feast Although he had scanty college education he could easily coach a student in M A English Literature. He taught me the first four parts of Milton's *Paradise Lost.* Tennyson was his pet poet He was generally seen reading '*Enoch Arden*' a sailors woeful tale, in leisure Once I saw him weeping with this book opened before him when asked about that sudden outburst of emotions, he started repeating its lines

'Not to tell her, never to let her know'

His admiration for Mahatmaji and his technique of passive resistance was unbounded. He loved the writings of Dr Radha Krishnan very much In V. K. Krishna Menon he saw the image of a true patriot, especially since Mr Menon's eloquence in the U N.O on the Kashmir issue. A very old turban and a long coat were his dear possessions People say, although I doubt their correctness, that he celebrated his marriage with these clothes fifty years ago He would come in this dress to the college on the 15th of Feb —the Founder's Day or when he was to receive some V I P's in connection with the college affairs His personal belongings may not be more than a few rupees but they would be kept as relics of the great man who, by his tireless energy and spirit of sacrifice, kindled the internal fire of '*Jnana*' in an area hopelessly backward, illiterate, and immune to progress He was the torch bearer, the pioneer, the ace personality who slowly consumed himself to dust so that the down trodden people might be raised up from dust to fresh fields and pastures of life

Birla College,
Pilani

LATE LALA DURGA PRASAD JI

N R Gupta, M.A.

The sad and untimely demise of Mahashaya Durga Prasad ji has given me a great shock. In him we have lost a great lover of education and a devoted servant of humanity, who strongly believed in "Let work be thy duty and reward is not thy concern"

I came in contact with Sri Durga Prasad ji for the first time in 1932 when the Anupshahr college was only a High School He was then the Manager of the school Although I was then only a beginner in the line and unacquainted visitor to the place, it impressed me very much to find that Sri Durga Prasad ji, even with his vast experience, had an open mind and welcomed frank discussions on educational problems with inexperienced youngsters like me That only showed the magnanimity of his heart and understanding

During my stay at Anupshahr for a couple of days, I could study him from very close quarters The great respect—that he had for the teachers – and the burning desire – that he showed for educational expansion in the country – both developed in me a great reverence for that noble soul

His perseverance and sincerity brought him success and the Anupshahr college will always show to posterity how unflinching and sincere devotion to a noble cause results in ever lasting satisfaction

For the last ten years I have had frequent occasions of meeting him when he used to stay with his son Shri Milindji in the Birla Cotton Mills His faith in the spread of good education being the greatest service of man-kind was constantly reflected in all that we talked Even upto the last moment of his life, the one thing that occupied his mind was the progress of the Anupshahr colleges It is difficult to find another substitute with such deep sense of selfless service, firm convictions and clear understanding

May his devotion and sacrifice give us courage to bring prosperity to the institutions so generously founded and fondled by him

Assistant Director of Education,
Delhi Administration,
Delhi-8.

THIS WAS A MAN

Jagdish Prasad Misra, M.A., L.T.

"His life was gentle, and the elements
So mixed in him that Nature might stand up,
And say to all the world, 'This was a man".

—*William Shakespeare*

Man's life is a fragment of the wider sweep of life in which all sorts of influences make themselves felt as vital factors We are what we are largely due to the impact of other personalities on us. The influence of these tenuous contacts cannot always be dissected or demonstrated as it gets settled into the very fabric of our being and shapes our ends and means. And when a personality of this kind passes away, we feel that a part of our ownself is dead. Some such were the pangs of pain when I got the news of the said demise of Mahshaya Durga Prasad

'Some are born great, some achieve greatness and some have greatness thrust upon them' says Shakespeare, in 'Twelfth Night'. Mahashayaji was neither born great nor had greatness thurst upon him, but certainly, had achieved greatness. He wove the stuff of life afresh, choosing his patterns with the eye of destiny, combining loyalty and adventure, belief in moral values with affirmation of personal experience If we are able to look beyond the amorphous humanity of our own time beyond the illusions of a mechanically organised life to man himself, we shall be able to cultivate reverence for those whose greatness lies in their power to make us great and Mahashayaji was one of them.

Let us picture before our mind's eye the aesthetic conception of man It is the harmony of Grace and Dignity Grace is beauty of movement, creative sensuousness which has a supersensuous origin. It is spontaneous, but comes into play where movement has some aim Dignity is restraint, the understanding and acceptance of necessity In this respect, Mahashayaji was a true man, a rare combination of grace and dignity. The two qualities offered him a vast field of intimate personal speculation. To him, they were means to a fulfilment that made him a more complete human being, better citizen of his country, touched with eternally youthful aspiration.

It was not only I, but the whole circle of his friends, admirers and followers, who felt a deeper sense of loss at the death of a quiet, retiring, unostentatious and unglamorous person, devoting his life to the cause of education He always kept himself aloof from pulling up or pulling down people in the game of power-politics and never allowed himself to stoop to the level of power-seekers and patronage-hunters. He did not let this canker feed upon his pure soul And he always advised us not to pass 'uncalled for aspersions' on others.

Mahashayaji had a good gift of drafting in English, his mind being trimly engined for it , sometimes a great lover of words with just the impelling touch of mania added to raise the doggedness of ambition to the point of fury We may picture him as a man digging, hewing, blasting through rugged natural obstacles, an inlet for the irrigating stream to be derived from an abundant reservoir that he has struck, not in the next valley, but in his own valley of intellect He had such a haunting passion for the right word in the right place that he did not rest until it was struck I remember an occasion when, due to the slackness on the part of the press, the word 'comity' was misprinted as 'committee' in the article of my friend and colleague Mr O P Bhatnagar in the college magazine Mahashyaji sent a chit—of which he was very fond—to him and asked for the right word. It was his love for the propriety that prompted him to do so

So, when such a soul left us in this dark and dreary world, there was a tense sense of irreparable loss I may say what Milton said in praise of Shakespeare—

> Thou in our wonder and astonishment
> Hath built thyself a lasting monument.
> For, as Goethe put it .
> The night he spent in wakeful thought
> Have given us a brighter day

Research Scholar,
Muslim University,
Aligarh.

THE MOVING SPIRIT

Tej Datt Sharma, M.A.

A preponderating majority of educational institutions the world over, owe their inception to the untiring toil of those great men, who perceived the welfare of man in the upliftment of society and set themselves with single minded devotion, to the task of infusing new life into it, sparing neither wealth nor health Conscious of the prime importance of the right type of education in awakening the nation from its sleep, Swami Dayanand exhorted many millionaires, social workers and organizations to establish educational institutions. Today the country is thronged with D A V institutions which have been serving the motherland for nearly a century.

One such great man was Shri Lakshman Prasad who dowered his whole wealth for the foundation of an Anglo-Vedic High School in the unprogressive and effete tract of Anupshahir his worthy son, popularly known as Mahashayaji for his Aryasamajist affiliations, by stupendous efforts, converted the legacy of his father into a first rate college

The sad demise of Durga Prasadji took away one of the stalwarts of the city's community life. His way of life, doric simplicity, perseverance, and self-effacement shall always serve as an inspiration to others

My work as warden of the hostel brought me into intimate contact with this towering personality. The day started for the sweepers and chaprasis with his coming to the college at seven in the morning Like a skilled house-wife, he believed in tidiness and would usher the day's work with the cleanliness drive The allocation of college and hostel furniture was always vivid in his memory and he could tell without a moment's deliberation, what furniture had been repaired the previous year, how many chairs and tables broken and what thing was lying at what place.

In his discussions with me regarding expenses on food supplied to the boarders he would invariably emphasize the need for pruning them to the minimum, would chalk out schemes to this end, and to top it all would continuously strive to award free studentships to a larger number of hostelers He was ever alive to the monetary difficulties of students hailing from rural areas Never would he

permit slackness to creep in the evening 'Sandhya' and weekly 'Havan' Not a day passed when I would not receive five or six slips from his office advising me on matters pertaining to the hostel Construction work would start in May and with only an umbrella sheltering him from the sweltering sun he would be observed amongst the labourers The college work-table and the time-table would never be complete without his adjustments

He was the moving spirit behind every remarkable decision. His death has convulsed the college life out of joint and created a void which is not likely to be bridged

Lecturer,
Lakshmanprasad D A V Inter College,
Anupshahr (U.P)

A MAGNIFICENT DONOR

Ram Saran Das

Lala Durga Prasad ji was very intimately known to me since his marriage took place at Bulandshahr He was one of the rare personalities in our community I know fully well that he vowed his life's best energies to the cause of education in order to give chance to the illiterate brethren to pick up literacy and thus to acquire ways and means for a decent living He was held in high esteem and his life was a pattern of enlightened living He had his upbringing in a very advanced and cultured family He fulfilled his long cherished desire by giving a very magnificent donation of over sixty thousands towards the construction of a college at his place of residence at Anupshahr This act of his munificence will long be remembered by a host of his friends and future generations to come He was very thoughtful and imaginative and dedicated his life to the service of the people

May his soul rest in peace

General President,
Shree Sanatan Dharma Sabha,
New Delhi

'PROFESSOR' DURGA PRASAD

(As we called him during college days)

Madan Mohan Das

About 50 years have passed since we were separated, so I have very faint idea of those days It was perhaps on the 16th of July 1910 that I first saw his radiant face at the counter of the Agra College office, when we were taking our admissions in the I year class I was very much struck with his charming personality, good manners and neat conversation He spoke chaste Urdu at that time. He took up Science with Mathematics while I chose Biology. He got his seat in the Vaish Boarding House, while I could secure one in the 2nd house (a thatched bungalow) now replaced by Hewett Hostel Hardly had I lived for a month in the thatched house when Shri Durga Prasadji suggested to me to shift to the Vaish House. Not only did he suggest but he actually saw me change the house. In this connection he exerted his influence with B. Makhan Lalji who also hailed from Khurja I had a sigh of relief in the Vaish Boarding House which was comparatively much more comfortable than the thatched home There were two or three Durga Prasadas in the Vaish House so in order to distinguish him from others we designated him *Professor Durga Prasad* In the College as well he was known under this denomination

Biology section was opened in the Agra College that very year and for several months no professor was appointed to teach the class so I became tired and took arts by changing the course Thus in the college we could meet in English period only.

Professor Durga Prasad played hockey and tennis as well He took keen interest in the lathi game He took prominent part in the Debating Society of the Vaish Boarding House which was then headed by Dr Ishwari Prasadji

In the year 1911, when we reached the 2nd year class we, having been allotted seats in the same Boarding House, had an opportunity to know each other very closely In that very year, 1911, some five inmates of the Vaish House failed in Intermediate examination so he (Professor Durga Prasad) used a very figurative language *five fools from Firozabod factory failed* which amused us all exceedingly excepting those whom it concerned He had no malafide intention n using the words against any one of them.

He was friend of all and enemy to none. He bore no ill will against any person It was on account of these qualities of his that every body loved and admired him He was very intelligent, shrewd, and hard-working We used to study together Help's *Essays in English* over which he had complete mastery He could explain them to me very clearly

As regards religion he had firm belief in Arya-samaj while I was a Sanatanist but we never discussed religion On every Sunday he used to go to Arya-samaj Mandir in Moti Katara, Agra There were no picture houses in Agra at that time, so we never went to see the cinema He was not fond of walking and I never saw him going out for a walk. He used to tell me that walking was meant for old and sickly persons He had a mind to go to England for I C S but on account of the premature death of his elder brother (Shri Bhagwat Prasadji) his aged father could not remove him from his sight, and thus he was prevented from going to foreign countries for studies.

After our separation from each other, I could see him twice only once at Khurja and at another time at Anupshahr more than twenty years ago. At the latter time I had gone to Anupshahr, with my own purpose in view. I had three daughters and my friend had three sons, so I wanted to give the hand of one of my daughters to any one of his sons But Shri Durga Prasadji did not approve of the idea In the year 1953, I had invited him to attend the marriage of my nephew at Delhi but unfortunately I could not reach there having suddenly fallen ill, so we could not meet and he was very much disappointed After that we had no chance to meet

I never dreamt that he would retire before me.

In fact, he was the worthy son of a worthy father He carried out the wishes of his father by establishing and managing the two institutions sacrificing all his personal comforts and pleasures, at Anupshahr These institutions will always perpetuate his memory I remember one other point of the college days He subscribed lavishly from his own pocket towards the *Banaras Hindu University's Establishment Fund* on the appeal of Pt Madan Mohan Malviya, the founder.

Advocate and Ex.-Hony. Magistrate,
Shikohabad.

THE SAGE OF THE GUEST HOUSE*

R S Bajpai, M A.

"Flowers fade and fly,
And flying fill the sky
Their bloom departs their perfume gone,
Yet who stands pitying by ?

Many people are born crying, live complaining and die disappointed, while some are born great, some achieve greatness and some have greatness thrust upon them There is a tide in the affairs of men and this tide found its sublimest outlet in Durga Prasad—who, during the English regime, willingly scattered roses and lilies and dashed lucrative job's dream and idle fancies but kept his feet in rugged Alpine cliff where the toughest plants are reared. "A really greatman" adds Bismark, "is known by the signs of generosity in the design, humanity in the execution and moderation in success " After all, who fluctuates from opinion to opinion and veers like a weather-cock to every point never accomplishes any thing great or useful

Durga Prasadji hails from the notable Agrawal family which migrated from Khurja to Anupshahr, U.P Many of the great geniuses gave a promise of their greatness at a very early age and "Childhood" adds Milton in his '*Paradise Regained*', "shows the man, as morning shows the day" So the wheel of time moved on and on and Durga Prasadji inherited the responsibilities from his pious father Late Lakshman Prasad—the founder of Dayanand Anglo-Vedic College, Anupshahr No tyranny of circumstances can at all imprison a determined will so his confidence in himself tackled the critical situation without least display of sentiment. His task, since then, has been to illumine the dark corners of life and in this he has eminently succeeded

Just as a bright star cannot help but influence all the heavenly bodies around it, Durga Prasadji's great influence has not been confined to college Far from the madding crowd this distinguished intellectual gives his time, sometimes ranging from 7 A M to 6 P M. in Guest House, the donated memorial of his mother—a talented lady who preached the gospel of love, pity mercy and truth and who endeavoured to lift down-trodden up No matter how busy he may

*Contributed when Sri Durga Prasad was alive

be Durga Prasadji always provided time and opportunity to the members of the staff, friends, relatives, new-comers and the needy. He is always a willing guide to all who confide in him. No matter he is in his late sixties, still his energy is volcanic The old age, departure of certain near and dear and hernia has shattered his health, irrespective of these, his Homeric laughter shows what a cheerful and ever open heart he keeps Even today, he performs more than what is expected of him.

He is a great and untiring worker who believes that rest is rust His inner qualities are brighter than gold and diamond He is simple in his behaviour and thought In whatever he says or does, there is a simplicity of feeling which never relaxes.

It is not a cry into wilderness or Bacon's big boast but the reality that Durga Prasadji employed the cream of the Universities and that of the Training Colleges and even today our illustrious Principal Vikram Singh is an England returned Principal and we are proud of him Merit, fairplay and justice are his yard sticks regarding the appointments and the master key unlocks all puzzles, not only this, like a whirlwind it sweeps away 'all rubbish material It goes without saying that Durga Prasadji has the great skill of organising affairs and he knows the way of putting people in their proper places

Though I have hailed him as a prophet of nationalism or a preacher of internationalism, idealist or an educationalist, a leader of thought and a leader of men, he is essentially first and last a silent worshipper, a dreamer, a weaver of imageries, rich, rapturous and resonant and sensitive to every yearning in man and nature

He believes that the whole structure of subjection and tyranny depends on the foundation of ignorance He is of opinion that men should function as an animal tamer After all great prophets teach us the courage of suffering without inflicting pain We need love and kindness and this impulse will alone create new men and women whose loyalty will be to the human community.

He believes that present education is too bookish with no co-ordination of the head, heart and hand, no co-ordination of pen and spade, no co-ordination of theory and practice or practice and science The ghost of Macaulay still haunts the portals of our temples of learning in India, and, therefore, the worst consequences are indis-

cipline, unrest and disorderliness. He pleads that man's morality should be raised and his conscience should be awakened. Since this stage will not be achieved by dreaming alone, therefore he advocates Education and Religion. Above all, we must change with the times He advises that all wastefulness, show and luxury in all walks of life should be done away with

What Carlyle said of Dickens, we can say of Durga Prasad ji "The good, the gentle, high gifted, ever friendly, noble-every inch of him and honest man " He had too loving a heart to harm any one, he had too simple and frank a mind to enter into intrigues. He touches nothing that does not borrow health and longevity. There is no rose without a thorn, even the moon has dark spots on it He dislikes shedding of crocodile tears.

An hour with him is a rare experience, and one will not only feel satisfied but like a re-charged battery. There is nothing narrow in his approach to life He does a lot of work for others and for L D A V College in particular, inspite of this he does not consider himself to be the agent of the college destiny. The *Holy Bible* supports that there is selfishness in man. It dries up the stream of kindness But when selfishness is replaced by love and humanism every thing begins to smile He who climbs the Everest does not count the cost of shoes so he gave his days and night, heart and purse for the advancement of this college We can safely say that sincerity and real devotion towards duty are stamped plainly on his smallest activity

Ex-Teacher,
L D A V Inter. College,
Anupshahr, (U P.)

TALE OF TEARS

O.P. Verma, M A., L.T.

'He died that he may die no more'

So sad was the ninth day of July, nineteen sixty-one, as to wash the eyes of inhabitants of Anupshahr with tears Through the telescope of tears thousands of eyes were looking far on the road towards a buscoming fast from the side of Delhi. Hands of the

clock could make it strike three, when two persons, with a small pack in the hands of one of them, got down from the vehicle that had just arrived at the stand. Accent became absent from all the lips at that moment and hardly one or two could whisper with a deep breathing, Oh, Babooji, you have parted from us'.

The man, who was keeping the pack in his hands, hanging in-front of his breast, could not utter even a word. His throat was choked with sobbings and his eyes were clouded with tears, drops of which were running down his cheeks. He was, Dr. Om Prakash, the worthy son of his worthy father—Babu Durga Prasad.

Lala Lakshman Prasad was the man of the kind who had no preference for any particular quarter or square in which he lived, but an abounding generous feeling for the welfare of the society as a whole was streaming within him. To his mind, human heart is easily respective of guilt, and guilt is the avenging fiend that follows the guilty behind with whips and stings. The guilt is the road which leads the world towards sorrow and misery Sorrow and misery, that prevail in the world, are the rewards of guilts which man commits merely out of foolishness, and schools are the ways of their redress. So many more we have the latter, so many less must we have the former He, therefore, generously offered an amount of sixty two thousands of rupees for the foundation of an ideal educational institution This donation, if compared with the offer of those who gave lacs or more than this, counts not too much. But if a millionaire spares one lac from his immense wealth for the cause of education, it can never stand with the offer of a man who with his own free will spares what-so-ever he possesses This was the amount-be all and end all of Lala Lakshman Prasad who gave that without minding the interest of his own sons and daughters

One thing more is noteworthy that in giving anything men, often, seek the applause of the public, but as such they lose their reward Lala Lakshman Prasad gave his wealth with open hands, happy heart, and a closed mouth, though, now, innumerable lips are trumpeting of his gift Not only this, at the time of his departure from this world, he asked his sons, if any one of them could sacrifice his whole life-time undauntedly for the service of the institution. At the time of his death, as the eyes of Bindusara were stayed at the face of Ashoka, the Great, with the belief that only he would be

able to manage his kingdom, so the eyes of Lala Lakshman Prasad fell upon his worthy son Babu Durga Prasad, as if he was brought up only to foster the institution Babu Durga Prasad unhesitatingly pledged his whole life for the service of the institution and through it of the society.

To promise is as easy as it is difficult to keep it But the word of Babu Durga Prasad, which he gave to his father, was a bond His heart was as far from lie as heaven from earth All kinds of luxuries were easy for him to enjoy. But he kept his promise with his father, and wearing simple dhoti, kurta or an ordinary coat, and a white cap, was visible from early morning till late in the evening, sitting in the east corner room or moving westward towards the gate of the institution, with an umbrella or a stick. in his hand With the money of his father and sweat of his body, he got the walls of the L. D A. V. Inter. College raised high. Each and every brick of the institution bears a copious witness to the fact that Babu Durga Prasad had laboriously laid the foundation of such an institution which is now one of the best colleges of Uttar Pradesh. The college was a temple for him—his Kaba and Kashi—and for it, like the saint of Sabarmati, he spent his life as an ascetic refusing and renouncing all kinds of pleasures for the sake of the weal and prosperity of his fellow men

Greatness of the souls, does not rest on having no passion and all virtue, but it lies in having greater designs. Babu Durga Prasad was one of the great men as he could do, what he wished, and he was one of the wise persons, as he wished to do, what he could. God allotted him to pass nearly sixty-eight years in this world and he allocated about one and forty years like a true devotee in worshipping Saraswati, the goddess of knowledge To him life was neither pain nor pleasure, but a serious business to be entered upon with courage and in a spirit of self-sacrifice. Man always lives in deeds, not in years, in thoughts not in breaths He most lives, who thinks most and feels the noblest What Babu Durga Prasad lived, lived well, in thoughts and in deeds as well. He always looked on and lifted, onward and upward, the sacred burden which he solemnly bore in his life, and nothing could fail or falter him till he won the goal

Sixty-seven winters witnessed his sinews moving steadily in the path of action, but as a proverb runs—'that never grows old

who keeps a child in his heart'—and the heart of Babu Durga Prasad kept the future destiny of the children of the society in such a manner as to keep him always busy in planning high designs for imparting education to them L D A V Inter College, founded by him after the name of his father, and G D A V Girls High School, after the name of his cousin, are the living demonstration of this truth. In keeping with his age, as the wrinkles of his face would show, he was putting off his earthly garments one by one, and dressing himself for heaven, and grey hair could be seen, like the soft light of the moon, silvering over the evening of his life, yet he never seemed to grow old, as he always was active in thoughts, always ready to adopt new ideas, and he was never chargeable with fogyism.

The evening of a well spent life brings its lamp with it and what Babu Durga Prasad brought, others lighted their candles at it. But *time*, the old common arbitrator, ends one day the game of each and every life. As the seventh day of the seventh month, of nineteen sixty-one, could behold the face of the rising sun, the days of Babu Durga Prasad were numbered, and the silent hands of death robbed the soul of that priest of learning and took it to the eternal repose and sleep.

At the time of his sad demise, he was lying in the Nursing Home of Dr K C Mahajan in Darya Ganj, Delhi, as his abdomen was open due to a sudden attack of prostatic malady, While he was lying on his death-bed, still he had been talking about or framing time-table for his college and school But he could not survive his operation and breathed his last There are times when God asks nothing of his children except silence, patience, and tears As a telegram, bearing the sad news of his death, reached Anupshahr, people could not help peeping through their tears into the eyes of one another, and many of them ran with a grieved heart to bid him adieu for good. Before some persons could reach Delhi, his funeral rites were performed by his sons, Dr Om Prakash, Satya Prakash Milind, and Buddhi Prakash, who are in service at Delhi

On the ninth day of July, Dr Om Prakash and Buddhi Prakash, collecting the ashes of their revered father came to Anupshahr to offer them to the holy Ganga They would have not dreamt even that as they would reach Anupshahr a multitude might be waiting with mournful coutenances for the reception of the ashes of Babu

Durga Prasad It was a wet day, and millions of gods were soaring unseen on the wings of clouds pouring small drops for the welcome of one who had gone to join their line. Babu Durga Prasad had a kind of divinity within him, so it may be an interrogation whether he went to heaven or heaven came to him Breeze was destined to sound that day an echo of the invisible world, the harmonious voice of the deities, to ordain the unsuspected divinity that he possessed.

Long before the arrival of Dr. Om Prakash and Buddhi Prakash, the residents of Anupshahr had prepared a *doli* adorned with flowers, the garlands and buntings of green leaves, and a picture of Babu Durga Prasad was placed in it The whole city observed Hartal that day to pay homage to their benefactor. No sooner Dr Om Prakash put the pack containing the ashes of his father in the *doli*, all hands began to rain flowers, and covered the pack with them. After a while the inhabitants of Anupshahr, with their hearts full of esteem, raised the doli on their shoulders, and a calm procession proceeded on towards the river Ganga No din was audible save the gliding of steps. Ladies, watching the procession from the roofs dropped flowers with tender feelings on the *doli*. His own sons themselves might have not venerated their father to that extent and when they saw all that honour being paid to him, they could not help bursting into a torrent of scalding tears. A hysterical passion engrossed the heart of Buddhi Prakash and forced unbidden sighs and tears out of him, and out of emotion he reeled down on the road.

The holy Ganga was in its full swing, flowing rapidly to take the ashes of Babu Durga Prasad soon to sea so that through the waves each particle of it must spread his fame on every border of this planet. Dr Om Prakash offered the ashes to the Ganga and all was over He had gone but his actions, in passing, had not passed away, for his work is a grain of seed for eternal life. He was a man of unchanging nature, so constant in his views and vision as the Northern Star, of whose true-fixed quality there is no fellow in the firmament He lived with lofty purpose and his constancy was the secret of his success He took up a worthy purpose, and adopted a resoluteness and a patient energy for its accomplishment, and left behind him a monument that the ravages of time can never destroy He was a man of whole volition, and even though he had to advance on the roughest road, yet he reached his destination. He

had written his name in kindness on the hearts of millions He, his name and deeds, will shine as the stars of heaven

A work of real merit is sure to find favour at last A few of us may speak least of him here on this earth but he shall ever be best known by the gods as good deeds ring clear through heaven like a bell. What springs from earth dissolves to it again, and heaven-born things fly to their native seat He died that he might die no more and his immortality peels, into all ears, who had rated and recognised him, this truth—'Thou livest for ever'.

Lakshmanprasad D A V Inter College,
Anupshahr, U.P

RESPECTED LALA JI

Raja Lal Gupta, U P C S (Retd)

I knew Lala Durga Prasad ji for a pretty long time and was by his bed-side at the time he left for his heavenly abode in the ब्राह्म-मुहूर्त of 7-7-1961. Lalaji had dedicated his life to the service of his nation and was ever in fore front in the freedom struggle His keen interest in the cause of education is most praiseworthy for which he was widely respected. Only a few minutes before he took his last breath, he prayed to God to flourish the college at Anupshahr, of which he was the founder.

May he live in peace

2/75 Roopnagar,
Delhi-6.

AN OUTSTANDING PERSONALITY

Lakshmi Chand Gupta, M A , L T

As a student of A V. High School (now L D A V Inter-College) Anupshahr and as one who received guidance and inspiration from him in later life I have very pleasant, recollections of the late Sri Durga Prasad

In the midst of his arduous duties as Manager of the said institution, the late Sri Durga Prasad took pains in supervising the con-

truction work of the school building some times standing for hours in the hot sun with an umbrella over his head, while also taking two periods of teaching work per day.

I had the proud privilege of being one of his pupils. I still remember how efficiently he taught us English and Mathematics His teaching was very lucid and interesting.

As a student of Govt. Training College, Allahabad, I offered Mathematics as a special subject for the preperation of which I had to devote a lot of time I sought the advice and guidance of the late Sri Durga Prasad whether I could give up the special subject and devote my entire time to the preparation of the L. T course Prompt was the reply "Do not give up the special subject It is the age of specialization" I took heart and with greater zeal not only passed the L T Examination creditably but also got specialization in Mathematics. The passing of the L T. examination with specialization in Mathematics stood me in good stead in later life.

The late Sri Durga Prasad was very unassuming and led a simple life. He followed the principle of 'Plain living and High thinking'. He was very kind and affectionate though strict in official work

The late Sri Durga Prasad had a profound knowledge of departmental rules, regulations and circulars, copies of which he maintained in his personal files. He had a command over English language and his drafts were masterly As the Manager of a reputed institution, one would hardly find more persons of his calibre, experience and understanding.

The credit for spreading education at Anupshahr and the vicinity goes to him. Verily, he was a guide who inspired people with his learning and vast experience

In brief, the late Sri Durga Prasad was a 'Beacon light.' May his soul rest in peace.

Principal,
D. A. V. Inter. College,
Bulandshahr, U. P.

MY ASSOCIATE — MY FRIEND

E Lawrence

I had proud privilege of being closely associated with Sri Durga Prasad ji for more than three years during my stay at Anupshahr from 1954 to 1957 His polished manners, honesty of purpose, excellent views, sound thoughts, healthy and propitiatory attitude, brilliant gaze, zealous labours, ceaseless efforts, extra-ordinary worth, piercing understanding, wonderful planning coupled with never-failing execution of plans and programmes and organising capacity of high order were some of his many bright and sweet traits which cannot be easily lost sight of by those who came in contact with him As a matter of fact he dedicated his life for the cause of education in general and of the L D A V Inter. College, Anupshahr in particular. He was not only loved and respected by all those who were near and dear to him but even by those who had sharp differences with him. Sri Durga Prasad ji was a strict disciplinarian and a seasoned educationist and it is due to this that the indiscipline and rowdyism amongst students and party factions amongst teachers prevailing in numerous educational institutions were conspicuous by their absence in the L D. A V. Intermediats College, Anupshahr I am sorry Sri Durga Prasad ji left us when his valuable services were not only most needed but were indispensable. The most befitting tribute that the people of Anupshahr, for whose well being and advantage Sri Durga Prasad ji laboured day and night, can pay to him is to fufil his inner most desire of raising the L. D A. V. Intermediate college to the status of a Degree College which Anupshahr so richly deserves and badly needs

Deputy Collector,
Mathura.

LATE SHRI DURGA PRASAD JI

Founder and Builder of L. D. A. V. Inter. College Anupshahr (Bulandshahr)

Mahindra Singh Verma, M A , B T

There are exceptionally very few people who can be counted upon fingers for their great memorable and noble deeds—deeds of

national importance. Our late Shri Lala Durga Prasad ji ranked amongst such rare noble souls Undoubtedly, he dedicated his whole life to the establishment and growth of the present institution which occupies a unique position in the whole of the district.

Even before the era of independance he threw himself with his unfailing might, money and resources in educational development in the remote corner of the district It was he, who, indeed, did a great national service for spreading education in the rural masses. He cultivated and professed that a true democracy is based on faith in the dignity and worth of every single individual as a human being With this urge and zeal he, even at the cost of health, lived, worked and died for the progress of this college

In the course of my interviews with Sri Vikram Singh Principal, the Manager Dr Om Prakash M A, Ph. D, Sri Garg, Assistant Manager and other members of the college staff his name was mentioned every time with great respect, dignity and ever lasting memory. To me his pious soul enlightened the whole air of the college and from its every brick his echo came out to my ears To me he was a great soul to be remembered for times to come by our future generations. What great monument can we have other than this flourishing and ever rising college ? I wish that his godly spirit will always be guiding the worthy Principal, the fine team of the Trustees, the staff and the students of the institution

Principal,
Kisan Inter. College,
Alipur Kheri
(Muzaffarnagar)

MEMOIRS OF SRI DURGA PRASAD JI

C L Gupta M A., L T

After a lapse of one dozen years and a half, I still clearly recollect the figure of a grim, middle-aged, semi-bald headed man with trousers, closed collar coat and specs, passing through the compound of L D A V Inter College, Anupshahr, looking towards the earth yet seeing every thing Nothing could escape his notice.

The figure was none but Sri Durga Prasad, the founder and manager of this college.

I had a very close contact with him for thirteen years I passed B Sc examination in 1927 in Ist division and on account of my brilliant academic career he wanted to have me on the staff of the school but with no immediate success. But he kept me in view and succeeded in having me in his school as 1st assistant in July 1931 where I spent thirteen precious years of my youth, first as Second Master and then as Vice-Principal

Sri Durga Prasad was a thorough gentleman, having come of a rich and respectable family of Khurja. For his residence he purchased at Anupshahr a big palatial building said to belong to the Wazirs of Raja Ani Rai whose fort is still in ruins there He was highly intelligent with a keen foresight and ready to help every body. He was very economical with a motto of 'cheap living and high thinking'. He was calm and composed even at the time of great calamity. On the death of his wife, he did not shed a single tear but bore the calamity with gravity Even on issues of great importance almost all the prominent persons of the town sought his advice and acted according to it

He was a great, deep and wise politician and was a wielder of city politics All the local politicians of the time acted according to his advice 'Durga Buddhi' was a watch-word at Anupshahr

Sri Durga Prasad made his mark as founder and Manager of A V. High School, Anupshahr. He was considered to be one of the best managers with all the qualities essential for the manager of a school

He had a love for planned and massive building and got the construction work done under his own personal supervision The main school building, the hall, the hostels, the superintendent's quarters and the guest room are all a proof of his sound planning.

He had a thorough knowledge of the school building, even a brick lying in a remote corner was in his knowledge. He had his office on one side in the college compound where he used to work regularly with Sri Joshi as his clerk and Reoti as his office peon He kept himself well informed about the work going on in the school. He

knew full well about every teacher—his capabilities and short-comings.

His selection of teachers was excellent. He had an avowed policy of giving a higher start to a good and meritorious teacher. My own appointment was made on Rs. 120/- p m. when the usual rate of a trained hand was Rs. 100/- at the most. Another friend of mine Sri Anant Pandey who also had a first class career was appointed on Rs. 100/- p m. when at another place he was getting Rs 75/-

He knew full well about every teacher, and would appreciate good work He knew that local teachers are always a problem and avoided appointing such hands. He had a statistical brain. He prepared work-table for the staff and the time-table framer had to cast the time-table according to it He regularly collected full data and statistics about every item concerning the school.

Like Pandit Jawahar Lal Nehru, he was firm in carrying out his will. He forced me to take charge of the hostels quite against my will As I had already passed M.A. (Prev.) in Maths in 1929 I wished to complete it but he would not permit me for that and insisted upon my taking M. A. English as a result of which I was compelled to take M. A Degree in English, which, thanks to him, proved a boon to me.

He devoted himself whole-heartedly to the cause of this institution By his untiring efforts, he raised it to the Intermediate standard, naming it as L. D. A. V Inter. College after the name of his celebrated father L Lakshman Prasad. His ambition was to raise it to a Degree College but it could not be fulfilled. However, the institution stands on a firm foundation and is considered to be one of the premier Inter. Colleges of the Province. It is doing immense service of the town and the rural area round about it

Alas ! this noble and benevolent soul passed away on 7th July 1961 just on the eve of the new school session. I pay my humble homage and tribute to the departed soul. May his soul rest in peace.

Principal,
Shambhu Dayal Inter College,
Ghaziabad

IN MEMORY OF LATE LALA DURGA PRASAD

J. P Misra, M. A , L. T

Deep down in my heart, I feel
The floating pangs of pain.
A panting at a loss , a vacuum ,
Weaving webs in barren barrenness,
We try to solve this dark riddle.
No shimmer of the Aurora that Opens forth,
No light of a kindred spirit shines on our way,
So impoverished for ever we are left
To seek the 'foot prints' in the sands of time

In thought, in word, in deed how different was he.
Steadily he paced along life's weary way,
Being allured by no hope, preferment or applause.
If life is a dating, merry and free, he heeded it not
If life is a duty, enjoined by virtue how clinging to it was he.

Oh, had I been a Dorian shepherd,
I would have sung to Proserpine
But alas ! I have not the grace,
Nor Prosperine heard of Our holy Ganges !
She never tread its sacred banks ,
And hence the plaint in vain !

Still, still ring those walls, thine never dying glory ,
And even the bricks are haunted by the ever fresh memory.

Research Scholar,
Muslim University,
Aligarh.

REMINISCENCES

Om Prakash Gupta, B A ,L T

It was in June 1958 when I, being called for an interview, had the first occasion to eye a man whose personality and way of living left on me an indelible impression during my successive years of service in this reputed institution Usually the opinion that

formed by employment seeking candidates about managers of private or aided institutions, is not favourable and I too, on my part, was not an exception but the old man who leaned before me in a cane chair and whose eyes gleamed behind spectacles with profound learning and experience, inspired in me slight shivering of awe For half an hour, he investigated my personality by means of searching questions, thus creating a mental turmoil in me and resulting in as much that I had per force to change my customary opinion about Managers

The probation period of a teacher is a bridal night to him and an unexpected direct call from the Manager is anticipated to be his wreck so it was quite natural of me to presuppose nightmare when a summons was issued to me to see him at his house in the month of December 1958. I collapsed but managed to face his query once more I sheepishly made my way to his room and waited nervously for what would befall He had chuckled in response to my greetings. Peace reigned for a minute or so. Then came the thunderbolt :— "Do you belong to Bulandshahr ?" he asked. "Yes Sir," I muttered.

"When do you suppose, you are going to Bulandshahr ?"

"It is uncertain, Sir, as yet," was my humble reply.

"Well, if you happen to go very shortly, manage to find out whether or not . .. is willing to have an appointment in G D.A V. Girls' School."

"Readily, Sir,"

"Will you keep the address in your memory ?"

"Precisely well, Sir."

And once again silence followed during which my intelligence whispered to me :—

"Clear out. The business is over."

I asked "Any more service, Sir !"

"No, thank you," was the reply.

I felt my fear false and assumed my position more elevated and dignified since an important piece of work was assigned to me.

I began to feel less fear but more adoration unto respected late Babu Durga Prasad ji In fact, he had an emotion of deep affection, kindness and sympathy towards all his employees and

kith and kin. Our anxieties caused him sorrow When my youngest brother fell a prey to pleurisy, he expressed great sorrow on that account and advised me about so many things He had come to know that my old mother served in Kanya Shiksha Sadan at Bulandshahr Having deep compassion at my impoverished state, he very kindly offered her to run his Bal Mandir, a recognised Primary school attached to Govindram 'D A V. Girls' High School here, thus making me able to serve my mother but the education of my younger brother, then studying at Khurja, was an impediment in accepting this offer, hence we failed to gratiously acknowledge his kind favour.

There was a vacancy of a Music teacher in the Govindram Girls' High School at this place and he asked me if I was aware of some suitable candidate for the said post I nodded and the consequence was that I was allotted a duty to write to my friend a letter thereby relating some terms and conditions I drafted the letter and requested Babuji to give an ear to what I had penned down so that faults or irrelevancies may be eliminated but he smilingly assured me of his belief in my prudence and that I was at large to drop the letter. Heavens ! What a belief ? I am at a loss to know what made him so convinced of my ability when, he had, as far as I know, not come across any of my English drafts before that I had also learned from some of my colleagues that Mahashayaji (the psuedonym of respected Babuji) was an expert of English grammar and very keen on finding fault with usage of words Consequently, my fellows used to deliberate repeatedly before finalizing a draft in English.

In December 1960 I myself got an attack of pleurisy resulting in my serious illness for a considerable length of time In such trying circumstances he assured me of his help and though himself in ill health, notwithstanding, offered to go with me to Bulandshahr to get me acquainted with Dr S P Jain who was a close friend of his. I replied that only his introductory letter would do and this he did as a result of which Dr. Jain treated me with the utmost care, vigilance and sympathy Respected Garg Sahib too had a talk with Sri Jain about my treatment When I was cured and went to see him, I found him chuckling with pleasure at the restoration of my health

He used to have frequent attacks of hernia Eminent

persons of the town swarmed round him with good wishes in their hearts and worried countenance. One day I saw him and saw in an outburst of acute pain, however, by some divinely and uncommon restraint he was enduring it mildly and ungrudgingly Even in the state of ill health, he came to the school daily before 9 A.M. and retired back to the house after 5 P.M During this official time, he was to be seen travelling through the back view of the college building supervising and instructing the masons etc or drafting for the well-being of both of his institutions. He had no leisure at all. We were surprised to find him, even at his house bent upon papers or writing some thing Such selfless devotion to work is akin to only such persons who have lofty and ethical mission of life.

His voice was roarous and deep, like unfathomed sea, his eyes thoughtful and keen, his mind a shelter to wisdom and experience, his heart lined with paternal emotions, soul sophisticated and divinely, his frame made of steel and above all his conscience that of a saint and seer.

A man, nay, a divinely existence that alighted on this speck of earth to tinge us with a supernal light of knowledge and learning, has, having accomplished its mission, melted into oblivion but he has left his adorers as orphans

A giant among us has fallen from his sad demise. An epoch of learning has gloriously ended.

May he have all peace, he deserved.

Lakshmanparshad D A V Inter College,
Anupshahr, U.P.

LATE SHRI DURGA PARSAD

Jagat Singh Rajora, M.A

It is very painful indeed that the man of exceptional qualities and devoted worker of the college is no more in this world But the impress which he left on this College and on many hearts of men in whose contact he came, will never be obliterated throughout their lives. His devotion to duty, his sober nature and readiness to extend

his help to the needy have made him one of the beloved and venerable personalities of a high rank in society

He was modest, disciplined, true sympathiser of the simple, and well-behaved who could easily influence any one who had an opportunity to talk even for a minute Such was the impact of his character that the more was his contact the more the man was robbed off his place at heart

I came in his contact for a little time and I can firmly say that no one has ever influenced me so much as he and his courage to go on with a planned action and devotion to purpose Once when I required his guidance he wrote to me which shows me how much he regarded the work and what a fine advice is for the youths for the devolopment of their character He wrote to me "To me nothing more than the precept 'Work is Worship' has appealed in my life and it is more desirable in the early years of youth when the youth should fall into this habit and afterwards it would become his second nature and will give him no pain" It leaves no doubt that he was a sincere worker and a true pains-taking man for a good cause

Whenever we talked of L D A V College, he was so devoted and thoughtful of its progress that he was always anxious to add some thing for its glory and to make it truly a home of learning Whenever he saw any difficulty for the students the next day it was removed, whatever little or big it may be For example, in the hostel he saw us taking our meals in the kitchen and the next day he managed to provide us with dining tables and benches No work of the institution was beyond his sight and there was no work in which he did not give his co-operation So much was his affection to the college that I can say that if there was the image of Sita and Ram in the heart of Hanuman, there must be no other image except of this institution in the heart of late Sri Durga Prasad Under his guidance the college flourished and it was his last desire that the college should go on progressing

Whenever I saw him talking one thing I felt that he spoke gently and like a great saint He was constantly in touch with his soul and used to judge things first morally and then from other points. But when he decided to do some thing he used to become

the fearless warrior who could not be satisfied except with the accomplishment of the task he had undertaken to do.

I deeply regret that the man who was a sincere hard worker, and a true sympathiser has departed from this world and it is an irreparable loss to us all We should take a lesson from his life I earnestly desire that his departed soul may get perfect rest and peace in heaven

Lecturer,
Shambhu Dayal Inter College,
Ghaziabad

THE SUPREME SOUL

Shri Kanti C. Sen, B. A., LL. B.

When one sits to pay homage to the departed soul the idea invariably enters one's mind if he himself would ever be fortunate enough that similar homage is paid to him by his friends, admirers and relatives, when he ultimately leaves this world. But supreme are the souls that never care or bother for worldly praises but live to carry out their mission of service to the nation and their fellowmen. Such was the late lamented Sahu Durga Prasad, who was also affectionately called 'Mahashaya jee' Here in the Punjab the word denotes a person having Aryasamaji or rather reformist views or an educationist Shri Durga Prasad was a combination of both for he was not only an eminent educationist but a great social reformer also. Before preaching anything he would always practise it himself and this was obvious from the way he brought up his children and his strict adherence to the principles of simplicity and high ideals in the family itself

It was in the year 1941 that I first met him at Anupshahar and since then always felt greatly attached to him for no one ever felt a stranger in his company As a speaker he was impressive and concise while as a writer he was expressive and precise One could never overlook his erudite knowledge and his command over several languages

Whenever I happened to meet him thereafter and even at the time of his last illness, I always found the poor seeking his shelter,

help and guidance for he was throughout his life known as a 'terror for the tyrant' At the same time there was no individual, institution or organisation that did not run to him for succour and advice and when he is no longer with us we can well imagine their lot

Generations would come and go but hardly such a soul would ever tread this soil Anupshahr would always remember him for it was he and his great institution—the L D A V. College—which kindled little lights all over the area and produced great builders of the Nation in almost every sphere of life

District Public Relations Officer,
Patiala.

A TRIBUTE

Anant Pandey, M A

It was some day in the third week of July, 1934, when, travelling all the way from a small village in the district of Banaras I reached the small but attractive town of Anupshahr in the district of Bulandshahr to join as an Assistant Master in the then D A V High School, Anupshahr, and was introduced by the late revered Hotilal Vrati, Headmaster of the institution to Sri Durga Prasadji (called 'Mahashaiji' on account of the status he enjoyed and the respect he commanded in the town) Dressed plainly in a Parsee coat and semiloose trousers and a silk turban (safa) on his head, he gave me the impression that I was meeting a serious-minded, strait-laced person who meant business

Throughout my long stay in that institution, for over a decade during which it rose to the status of an Intermediate College, I was struck by Mahashaiji's general calibre, and his managerial skill and, above all, by his whole-hearted devotion to the welfare of the institution which enabled him to steer the ship successfully which would have foundered in less competent hands

Somewhat stern outwardly, particularly in his commands to his sons, Mahashai Durga Prasadji was very soft at heart I remember his having told me once that since the untimely demise of his wife, he had acted both as father and as mother to his children. And it was

the father in him that was stern, demanding strict observance of rules of puritanic life from his children.

A staunch Arya samajist in faith, he shared with Sri Hotilal Vrati, a liberality of outlook and breadth of vision that allowed no place to narrowness of any kind, or to sectarian or communal considerations in the appointments that were made in the institution. All that mattered to him was merit This quality in management was rare even then, and has, unfortunately, been getting rarer and rarer as time has passed.

Mahashai Durga Prasadji wrote chaste English. He took pains to use the word that would most appropriately convey the idea he wished to express And he wrote a beautiful hand

The last time that I met him was when he was kind enough to call at my place during his last visit to Lucknow in connection with the work of the College I then congratulated him on his fine health and wished him a long life of self-sacrifice for the cause of education. Little did I know then that it was the last occasion for me to see him

I was told when I was in Anupshahr that the late Lala Lakshman Prasad, father of Mahashai Durga Prasadji had donated a major portion of his property for founding the institution Mahashaiji nurtured it with his life-blood , and it is now for the public of Anupshahr and neighbouring areas to help the institution continue to serve the noble cause of education, so dear to its founder and to late Mahashai Durga Prasadji. That would be the fittest way of paying a tribute to their memory.

Head of the Department of Business Administration.
Faculty of Commerce,
Lucknow University,
Lucknow

My Nine Years with Late Shri Durga Prasad Ji

B. S. Saxena

I cannot adequately put into words what I felt about Sri Durga Prasad ji with whom I spent nine years of my life. In my boyhood I knew him as one of the great men of the town, but certainly did

not know much about him, for it takes one a certain amount of time to get to know a man full well I had begun to develop a feeling of respect for him, although I cannot say what prompted me to do so In brief, I can only say that I could not help being influenced by his character and chiefly by his personality

My father, I felt, was quite familiar with him and seemed to have a profound respect for him I also struck up an acquintance with him in my boyhood and fortunately enough, he rsponded to it and did nothing to make me feel that he was trying to repulse my early advances

Luckily enough he chose to buy a house, a palatial house, I must say, in my neighbourhood and this was what led to a closer and a deeper familiarity. An instance which is indispensable and without which the sketch of his habit of saying things plainly without embellishment, will be incomplete, merits mention It so happened that the college, I mean the L. D A V College got into litigation with the Anupshahr Estate on the question of college play ground He, being the manager of the college could not help indulging in the same Though the litigation lingered on for a considerably long period and resulted ultimately in a compromise yet it could not make him deviate from the path of truth and honesty which he rigidly followed

Years rolled by. One day, I happened to see him on my way to the market. He asked me how I would eke out a living as the Anupshahr Estate where I was employed, was crumbling down owing to the abolition of the Zamindari in the State, and in reply I told him that I would try to earn bread in some other way

I exactly do not know what he meant or intended when he talked to me in that sympathetic way, but what is still fresh in my memory is that he wanted to give me a job He sent a neighbour of mine to me, who sounded me and asked me if I would like to work as the Head Clerk in the college office in a temporary vacancy I readily jumped at the offer and thus came into a much closer contact with him

I must own, I was a tyro and naturally need much guidance, but did not know from which corner it would be given to me Fortunately enough, it was from my venerable Manager. He guided me whenever he felt I needed his guidance and in a nutshell, made

me do things which were quite new to me and which I had never attempted. To be more plain about it, I must say that he taught and trained me in every possible way, and besides, excited my interest in college work

I looked upon him as a true guide of mine and sincere benefactor I owe to him a lot, so far as this is concerned.

It is obvious that I had ample opportunities to come into close personal contact with him and to study his nature and disposition. He was a true gentleman, noble, amiable, benevolent, sympathetic and above all generous Never in his life did he speak a hard word or hurt any body He was all kindness and generosity. He had such habits as to go to make a full perfect man His indefatigable industry, assiduous habit of reading, clock-like regularity and punctuality combined to lead him to higher aims and nobler ideals. He had an inestimable love for our college and did all that was within the pale of possibility, to improve its condition The college found in him an an exemplary manager and a proficient organizer. It will be no exaggeration to say that he turned out to be an ornament to the college. He had, I am sure, no selfish motive and had never an axe to grind and was altogether selfless in the services he rendered

He loved to read, to think, and knew how to judge people and was never wrong in the choice he made. He was never influenced by caste and creed and was a true and unmistakable admirer of merit. He himself made the appointments of the teachers and selected only such as appeared to him meritorious and intelligent. He was above nepotism and could never be wheeled into making an imprudent choice

He was meek as all great men of the world are and have been, and never sought to lord his views or opinions over others He never let his subordinates feel that he was the manager of the college and that he wielded some power In his life he was surprisingly simple, in his tastes, wonderfully noble and in his behaviour thoroughly gentle

He generously contributed to the college in the shape of the services he rendered and the path that he himself followed and showed to others He was himself a literary person and this was undoubtedly a remarkable feather to his cap. He was not mercen-

ary, nor venal He rather shunned all this. He denied himself all possible comforts and luxuries and so the college very soon began to be ranked among the best institutions of the State He would come to college almost every day, ignoring his private and domestic affairs , and would remain in his office till late in the evening poring over the files of papers and supervising college work One could not help feeling that he took profound interest in the college and its welfare About the intellectual aspect of his life, I may say that he wielded a facile pen and wrote and spoke wonderfully well A voracious reader as he was he inspired in the teachers a desire to read and to learn, and in this endeavour of his, I think, he was admirably successful

He was a pious, God fearing, conscientious man who never stopped to sacrilegeous, ungodly or undesirable ways He had full faith in God, and I think his belief in HIM and HIS ways was firm and unshakable Charitable he undoubtedly was, and as such he delighted in any act that seemed to him so He was not in the least degree supercilious or assuming and never thought it a come-down to condescend even to the smallest and the most insignificant men He would listen sympathetically to the grievances even of an inferior and would do for him all that was possible Ostensibly he was the manager of the college, but truly speaking he was its guardian, who prized it more than his life and looked after it with father like care

But such men do not live in this mortal world, and go to their eternal home early and so did Sri Durga Prasad ji Destiny is always implacable and adopts its own ways A gruesome misfortune was in store for the college and it inevitably befell it

He was in his sixties All of a sudden he was taken ill His illness alarmed us terribly but he was ordained to succumb to it

For want of a better treatment he was taken to Delhi and was admitted to a nursing home and lay there for a week

No sooner did I learn of the operation he had undergone than I rushed to Delhi I was unutterably grieved to see this all, but nothing could be helped I visited him, exchanged a glance but fearing that strain on his part might worsen the trouble, did not make him talk I simply cannot express what I was feeling

Shri Durga Prasadji had ever been exact, thoughtful and that force could make him say (only about three hours before his

death) in reply to Dr. K. C. Mahajan's query as to how he felt "Thank you, Doctor. You have done your best and now let me lie in peace".

The inevitable moment did come and in the morning of 7th of July 1961 he breathed his last. We all were terribly cut up by the news of his death and we rushed to Delhi, we felt as if we had lost a father in him, but death is inevitable. It has laid its icy hands even on kings and princes The doctors and their efforts could not avert it

Although Shri Durga Prasad is no more and almost ten months have gone by since he joined the majority yet his memory is quite fresh and will remain fresh in our minds. The college, its staff and the people of Anupshahr can never consign to oblivion his meritorious services and his exemplary sacrifices.

I duly pay my tribute to the departed soul.

Lakshmanprasad D A.V. College,
Anupshahr, U P

A PIONEER

Biharilal Gupta, B A , A T.C.

B. Durga Prasadji was born in an illustrious Agarwal family of U P. He was specially looked after by his parents who infused in him the spirit of a lion. He made a mark in the class-room for puctuality, and discipline He had blind faith in the words of his parents, and had the greatest respect for his teachers. Due to this quality he rose to prominence

If he once made up his mind, he could not rest content till he accomplished it He assured his dying father and vowed that he would carry out his wish at the cost of every pie he had He made one of the biggest contributions in the history of obedient sons The L D A.V College is a glorious memorial to perpetuate the name of Lala Lakshman Prasadji as founder of this mighty institution

He sacrificed most of what he possessed, and worked as honorary teacher for more than 36 years teaching English, Mathematics

and Grammar. He imparted Moral Teaching once a week to different classes, and built in students character, the most precious ornament of life. His method of teaching was marvellous.

He set up a Girl's institution, called G.D A V Kanya Vidyalaya after the name of his cousin B. Govindramji. Here too he did enormous labour at the cost of his health He worked till the last moment for the cause of education. He did yeoman's service to the spread of education Still he never thought he had done what was expected of him He gave moral support, and aid to various other institutions.

He worked on, despite obstacles, till he got success. He believed in work. He was a practical man After the completion of the college hall he once more ran short of funds. Now he felt the necessity of the Biology Bhawan keenly. The collection of money was a problem before him He would not give way. He held doggedly on till he built up a first class laboratory, really a miracle under the circumstances He set an example to those who do not realize the dignity of labour. If he had lived a bit longer, we were sure to have a Degree College

He was a writer and a speaker both. He was a born accountant, and a far-sighted manager. His drafting was amazing. He was not only a fine scholar, not only a builder, but also a standing administrator as well. He was a noble soul. He was a master mind.

Although he was an Arya samajist, he loved every religion. He received every visitor, be he a Muslim or a Christian or a Harijan He was a broadminded saint Still he was a great donor. He performed Havan along with hostelers, and feasted hundreds of boarders whenever he feasted at the guest house

He beautified Anupshahr with noble institutions just as Mahamana Malviyaji did in Kashi. We would ever remember him He was a hero He was a pioneer in education

Ex-Teacher,
Lakshmanprasad D A V. In ter. College,
Anupshahr, U.P.

समवेदना पत्रों से आंशिक उद्धरण*

माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त, मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश, लखनऊ :—

"·····मुझे यह जानकर हार्दिक पीडा हुई कि आप के पिता जी का ७ जूलाई को देहावसान हो गया। उनके निधन से आप सबकी और विशेष रूप से अनूपशहर नगर की जो क्षति हुई है उसको पूरा करना सम्भव नही है। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।"

माननीय श्री जगजीवन राम जी, रेलमन्त्री, भारत सरकार :—

"··· ·आपके पिता जी के देहावसान का दुखद समाचार मिला। भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति दे और आपको धैर्य। मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।"

श्री जगदीश चन्द्र माथुर, आई.सी एस., तत्कालीन डायरेक्टर जनरल, आकाशवाणी, नई दिल्ली :—

" ··· आपके पिता जी के देहावसान का समाचार सुनकर बडा दुख हुआ। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं पिछले कुछ वर्षों मे उनके दर्शन नही कर पाया। उनका मेरे पिता जी से बहुत पुराना स्नेह-सम्बन्ध था और उनके देहान्त के साथ उसी पीढी के हमारे बुजुर्गों की सख्या और भी कम हो गई। समवेदना प्रकाशन के जो भी शब्द मैं लिखू वे मेरी अन्तर्भावना को व्यक्त नही कर सकते। ··· "

सर सीताराम जी, मेरठ :—

वह सदा ही विद्या-प्रेमी, निष्काम-सेवी और उच्च आदर्श वाले सज्जन रहे। आपत्ति के रहते हुए भी उन्होने शिक्षा-प्रसार के लिए भरपूर प्रयत्न और परिश्रम किया।

* ये मूलपत्र तथा इस ग्रन्थ मे सकलित अधिकाश लेख हमे श्री मिलिंद जी से प्राप्त हुए है।

—सम्पादक-मडल



अंतिम-दर्शन

श्री बनारसी दास जी, सूचना मत्री, उत्तर प्रदेश :—

"......आपके पूज्य पिता जी की मृत्यु का समाचार पाकर अत्यन्त दुख हुआ। वे निस्पृह सेवक, विद्यानुरागी और मूक समाज-सेवक थे। उनकी सेवाएँ चिर-स्मरणीय रहेगी। उनके वियोग मे आप अकेले ही नही हैं। उनकी क्षति हम सवकी क्षति है।"

माननीय पंडित अमरनाथ विद्यालंकार, तत्कालीन शिक्षा मत्री, पजाव सरकार —

"... यह जानकर कि आपके पिता जी का स्वर्गवास हो गया, मुझे दुख हुआ। परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि दिवगत आत्मा को सद्गति प्राप्त हो और दुखी परिवार को धैर्य मिले।... "

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त :—

पितृ वियोग ऐसी विपत्ति है जो मनुष्य को अनाथ सा कर देती है परन्तु वश क्या है।

जैसे बीते काल बिता देना ही होगा,
जो कुछ देता देव हमे लेना ही होगा।

मेरी हार्दिक सहानुभूति स्वीकार कीजिए।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र जी .—

"... मैं आपका दुख समझ सकता हूँ। कितना आतुर मैं रहता हूँ कि कोई अभिभावक मुझे अपने ऊपर प्राप्त होता। जिसे प्राप्त रहा और जो उसे खो बैठा उसने क्या खोया, यह मैं सहज अनुभव कर सकता हूँ। . .. सच ही पिता का सिर पर होना वडा वरदान है। आप अकस्मात् उससे वचित हुए। तैयारी का अवसर भी नही मिला, वल्कि उस वचना के दोप को भी आप अपना मान सकते हैं। यह सव मर्मान्तिक कष्ट का कारण हो सकता है। लेकिन मिलिंद! मैं आस्तिक हू, आप भी आस्तिक हैं। जीवन के अन्त मे जो मृत्यु की प्राप्ति है सो भगवान् की अनन्त कृपा का ही विधान है। कष्ट उस वियोग पर हम पाते है, पर आस्तिकता के स्पर्श से उस कष्ट को हम वल भी वना सकते हैं। दु ख ऐसे हमारी पू जी वन सकता है और अहता को गलाकर हमे सेवा के लिए अधिक समर्थ वना सकता है।.. ..."

डाक्टर हरवंश राय बच्चन :—

"..... 'आपके पूज्य पिता जी की मृत्यु का समाचार सुन कर दुखी हुआ। भगवान् उनकी आत्मा को अपनी शरण मे लें और आपको और आपके परिवार के अन्य सदस्यो को अनिवार्य वियोग सहने की शक्ति दे।

अटल भरत जीवन का साथा।
पुनि कत सोचि करसि धुनि माथा ॥

जिन्होने अपने जीवन मे इतना कार्य किया, जिनके पुत्र सब योग्य सिद्ध हुए, हो रहे हैं......"

श्री पडित हरिशकर जी शर्मा, डी.लिट. :—

प्यारे भाई दुर्गा प्रसाद जी के निधन के विषय मे पढकर घोर दुख हुआ। मेरा उनका परिचय सन् १९१२ या १३ से था। विधाता तैंने यह क्या किया। ......

परमात्मा दिवगत आत्मा को शान्ति और दुखित जनो को धैर्य प्रदान करें।

पुराने सहपाठी तथा मित्र, आचार्य प्रवर बाबू गुलाबराय, एम. ए., डी. लिट. :—

अस्मिन् परिवर्तनि ससारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वशः समुन्नतिम् ॥

इस परिवर्तन-शील ससार मे कौन मरता नही है और कौन पैदा नही होता। उसका ही पैदा होना सार्थक है जिससे वश उन्नति को प्राप्त हो। उनका वश रुधिर के सम्बन्धो से सीमित नही था। वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मानने वाले थे। उन्होने अपना धन शिक्षा सस्थाओ में लगाकर उसका सदुपयोग किया। उसको जन-हिताय लगाया। उनका स्कूल ही उनका सबसे अच्छा स्मारक है। आप लोग उस स्मृति-स्तम्भ को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे और उनके पद-चिन्हो मे चलकर जाति की सेवा करते रहेगे। आप लोगो के कार्य उनकी कीर्ति को द्विगुणित करेगे ..... ।"

सुप्रसिद्ध उपन्यास एव कहानी लेखिका, श्रीमती ऊषा देवी मित्रा, जबलपुर :—

"पिता जी के मृत्यु सम्वाद से अत्यन्त दुखी हुई। भैया मैं जानती हूँ— पिता-माता कितने भी वृद्ध हो उनके बिछुडने का आघात कैसा होता है। मेरी माता ७५ वर्ष की आयु मे ६ वर्ष पूर्व चल बसी हैं। मैं क्या लिखू। भाई! ईश्वर तुम्हे शक्ति देवे, सहन करने की शक्ति देवे ... ।"

डा० बाबूराम सक्सैना, एम. ए. डी. लिट, उपाध्यक्ष हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार :—

"... ... आप के पूज्य पिता जी के निधन की बात जानकर दुःख हुआ। श्री ओ३म् प्रकाश जी की पढाई के सिलसिले मे वे मुझ से प्रयाग मे मिले थे। उसके उपरान्त परिचय बढता ही गया। वे सच्ची लगन के कर्मठ आर्यसमाजी थे और मुझ से स्नेह करने वाले मित्र। अनूपशहर की जनता के हितार्थ जो काम उन्होने किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। आप लोगो के साथ मेरी समवेदना है। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति दे। ...."

पत्रकार-सम्राट् श्री पडित बनारसी दास जी चतुर्वेदी, ससद् सदस्य :—

" पूज्य पिता जी के देहान्त का समाचार पढकर दुख हुआ। आपकी जिम्मेदारी इससे बढ जाती है। मै उनसे व्यक्तिगत तौर पर परिचित भी नही हो पाया था। यहाँ के व्यस्त और अव्यवस्थित जीवन मे एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे आना मुश्किल हो जाता है। मुझे यह पता भी नही था कि वे सार्वजनिक कार्य-कर्ता थे। दिल्ली आने पर तो उनसे कभी भी मुलाकात हो सकती थी। दोनो कालिजो की चर्चा भी आप ने नही की।

We have lived quite apart as strangers Those who can work together for common causes don't even know each other I am really sorry for my negligence "

श्री रामप्रसाद जी पोद्दार, डाइरेक्टर, सेंच्युरी मिल्स, बम्बई —

" .. सहसा विश्वास ही नही हुआ कि श्री दुर्गाप्रसाद जी हमे छोडकर जा सकते हैं। बडी दुखद घटना हुई। मैंने तो एक बडा हितैषी खो दिया, और हमारे समाज ने एक कर्मठ कार्यकर्ता। उन्होने शिक्षा एव समाज सुधार के लिए जो प्रशसनीय कार्य किया है उसके लिए हमारा समाज सदा उनका ऋणी रहेगा। उनकी कीर्ति अमर है और फिर जीवन-मरण तो भगवान् के हाथ मे है। हमे ईश्वर पर ही भरोसा रखना चाहिए।"

यू. पी. बोर्ड आफ एज्यूकेशन के सैक्रेटरी, श्री श्रीनिवास शर्मा —

"आप के पूज्य पिता जी की मृत्यु का हृदयविदारक समाचार प्राप्त कर अत्यन्त दुख हुआ। वास्तव मे उनका त्याग, तपस्या, साधना और निष्काम

जीवन अन्य मनुष्यो के लिये उदाहरण-स्वरूप रहा । अनूपशहर नगर की पिछले पचास वर्षों मे जो सेवाएँ उन्होने की उनके लिए यह नगर चिर ऋणी रहेगा। उनका व्यक्तित्व इतना प्रबल और स्नेहमय था कि कोई भी सहसा उनका हो जाता था । अपने जीवन के बाल्यकाल मे मैंने उनसे जो प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की वह मेरे जीवन का एक विशिष्ट अङ्ग बन गई है । इधर कुछ दिनो से पुन. मुझे उनका सम्पर्क प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अन्तिम बार मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व यहाँ मुझे दर्शन देकर उन्होंने बहुत ही प्रोत्साहित किया । उनकी नि स्वार्थ सेवा और अपूर्व लगन उनके सभी विद्यार्थियो के लिये एक दिव्य ज्योति का काम करती रहेगी, इसमे कोई सन्देह नही है । उनके इस निधन से मैंने अपने जीवन का एक विशेष अग खो दिया । इस पारिवारिक दु ख मे मुझे भी आप सब अपने साथ समझे ।"

सुप्रसिद्ध कथाकार श्री राधाकृष्ण, रांची —

"...... आप के पिता जी की मृत्यु के समाचार से बडा दु ख हुआ । भगवान् से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति दे । मेरी समवेदनाएँ आपके साथ हैं ।"

डाक्टर ज्ञानवती दर्बार, एम. ए., पीएच. डी., तत्कालीन पर्सनल सैक्रेटरी टु दी राष्ट्रपति :—

"..... वडो का हाथ सिर पर रहता है तो सदा सुरक्षा रहती है और हिम्मत बधी रहती है । अब तो इस विपत्ति को सहने को धीरज भी चाहिये और अपने बल खडे रहने की हिम्मत भी । मैं तो छोटी हू, क्या दिलासा दूँ पर आत्मीयजनो के आत्म-भाव से दु ख मे थोडा सहारा मिलता है । मैं तो यही प्रार्थना करती हू कि ईश्वर उनकी दिबंगत आत्मा को शान्ति दे और हम सभी को विपत्ति सहने का धैर्य ।

डाक्टर सुखबासीलाल जी, रिटायर्ड सिविल सर्जन, बांदा —

"... यह तो दु ख की बात है कि बाबू जी हमारे मध्य मे नही रहे । भगवान् ही हमारे सब के आधार हैं। हमे उचित है कि यत्नशील रहे और उनके कार्य की पूर्ति करें जिससे उनकी महान् आत्मा को सन्तोष मिले ।"

स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद जी के देहरादून के अध्यापन काल के घनिष्ठ साथी श्री बी० एन० छिब्बर, आर्य नगर, देहरादून —

"....· श्री दुर्गाप्रसाद जी के स्वर्गवास होने का समाचार सुनकर दुःख हुआ। वे एक अत्यन्त सरल स्वभाव के आर्य पुरुष थे। ऐसे व्यक्तियो का दिन प्रति-दिन देश मे अभाव हो रहा है। उनके स्थान की पूर्ति कठिन है। वह शिक्षा प्रेमी और एक महात्मा थे। उनमे श्रद्धाभक्ति और भारतीयता की भावना परम सीमा पर थी। वह सच्चे अर्थों मे देशभक्त और देश-सेवक थे।

वह दो साल डी. ए वी. कालिज मे मेरे साथ रहे। वह सादा मिजाज थे। उन्होने शिक्षा की प्रगति के लिये अनूपशहर मे सदैव सलग्नता से काम किया। धनवान् होकर वह एक आदर्श जीवन बिताते थे। धन का सदुपयोग किया।"

सेठ कमल नयन बजाज .—

आप की चिट्ठी से जानकर बडा दुःख हुआ कि आप के पिता जी अनूपशहर निवासी श्री दुर्गाप्रसाद जी का स्वर्गवास कुछ दिनो पूर्व दिल्ली मे हो गया। इस तुम्हारे और परिवार के अतुल दुःख मे मेरी तरफ से हार्दिक समवेदना है। भगवान् से यही प्रार्थना है कि वह स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करें और परिवार के सभी लोगो को धीरज व हिम्मत दे जिससे इस महान् दुख को वह सहन कर सकें।"

मुझे और पूज्य माता जी आदि को अच्छी तरह से याद है जब तुम्हारे पिता जी करीब २५-३० साल पूर्व आये थे और कुछ रोज यहाँ रह गये थे।...."

आगरा कालिज के दिनो के साथी श्री श्यामलाल जी, फीरोजाबाद :—

" · जान पडता है कि भाई दुर्गाप्रसाद जी सरीखे कर्मठ राष्ट्र-सेवको की स्वर्ग मे भी काफी आवश्यकता है तभी तो वे हमारे देश मे अधिक काल तक नही रह पाये। भगवान् की इच्छा। सतोष की बात इतनी ही है कि वे जब तक स्वस्थ रहे अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहे। जिस समय मैं वैश्य बोर्डिंग हाऊस मे निवास करता था उस समय तीन छात्र श्री दुर्गाप्रसाद जी के नाम के थे, एक दुर्गाप्रसाद जी बुलन्दशहर के थे, दूसरे दुर्गाप्रसाद कादला के थे तीसरे आपके पिता अनूपशहर के थे। आपका पत्र आते ही उनका ठिगना कद सामने आ गया। स्वास्थ्य उनका तब भी ठीक नही चलता था। वे आरम्भ से आर्य समाजी विचार-धारा के थे। मेरे साथ कमरे मे तो कादला के दुर्गाप्रसाद रहते थे। हम लोग सैण्ट्रल मेन बिल्डिंग मे थे। आपके पिता जी उत्तरी विंग के कमरे मे

निवास करते थे । वैसे हम लोगों का यह प्रोग्राम रहता था कि बहुधा रविवार के दिन अपने कमरे मे हवन किया करते थे । और श्री दुर्गाप्रसाद जी उसमे शामिल होते थे । एक शादी मे हमे अनूपशहर जाने का भी अवसर मिला था तब हमने दुर्गाप्रसाद जी द्वारा चलाया जाने वाला स्कूल देखा था ।"

श्री हसराज अग्रवाल, एम. ए , पी.ई.एस. (रिटायर्ड), चण्डीगढ़ :—

पूज्यपाद पिता जी के आकस्मिक निधन का समाचार पाकर वज्राघात हुआ मैं ऐसे समाचार के लिये कदापि तैयार न था । प्रभु की इच्छा । सिवाय धैर्य के कोई भी उपाय नही । 'सयोगा वियोगान्ता' । प्रभु स्वर्गीय आत्मा को सद्गति प्रदान करे और सब सम्बधियो को धैर्य । उनकी समाज-सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेगी ।

Shri Janki Prasad Ji Singhal, Aligarh :—

"........ It has given me real pain to learn of the death of your dear father. I feel hurt. I recall the old days when Sri Durga Prasad Ji, the worthy son of a worthy father, joined the college. Calm quiet, unassuming, mindful of his own duty, obliging, well-behaved and mannerly, he commanded the affection, admiration, good wishes and regards of all he came across He was self-sacrificing, careful to serve By his qualities, he endeared himself to all He was a jewel among boys in his teens, among youngmen during his youth and among all in his advanced age.

It is sad to learn of his demise, but it is said that those whom gods love die young . ..."

Shri R. R. Gupta, Principal Education Officer, Simla:—

"... ....I am really shocked to know about the sad demise of your respected father I remember that about a month or so back I received a letter in his own hand, reminding me of my visit to Anupshahr. May Almighty God grant peace to his soul and give strength to the bereaved family to bear this loss "

Shri Babulal Agrawal, B.A., LL.B., Ekri Villa, Rly. Road, Aligarh :—

My brother Shri Munna Lal Ji, Retd Overseer, living on the banks of the Ganges at Anupshahr, informed me that your fathre

passed away at Delhi. His death has come as a great shock to me. We were fast friends though distantly related also, Shri Durga Prasad dedicated all his life and property in the cause of education and the L D.A V College Anupshahr is his living monument I have also been associated for the last 25 years as the Secretary and Manager of the Tika Ram Girls College, Aligarh and as Managers of educational institutions, we came closer and closer and used to exchange notes. May God grant peace to the departed soul."

Shri Krishna Prasad, I. C. S. (Retd.), Secretary General, Bharat Sewak Samaj, New Delhi :—

" ..I am sorry to hear that Sri Durga Parsad Ji of Anupshahr, has passed away. Please accept my sympathy in your bereavement.

I knew him nearly 30 years back when I was District Magistrate of Bulandshahr. He was Manager of the leading High School in that place and whenever he came he used to speak to me about it with great favour. He took me more than once to his institution which he regarded as a child of his He was also greatly interested in the civic problems of the town and I remember that I treated his opinion with much respect . "

Dr. L. P. Mathur, Ex-Vice Chancellor Agra University :—

" .. .I am very sorry to learn about Shri Durga Prasad Ji's death He was a good soul and a very good worker in the field of education May God grant peace to his soul."

Shri Ayodhia Prasad, Additional District Magistrate (Retd) Aligarh :—

"I am shocked to learn of the sad demise of your respected father and offer you my sincerest condolence on your bereavent. I do not remember to have met your father after leaving college But I remember full well that Mr Durga Prasad was an embodiment of all good pualities that a student can possess. A child is the father of a man All his good qualities of head and heart had their full effect in his youth and he proved to be a benefactor of mankind, He was of a charitable disposition and very social indeed .."

हिन्दी साहित्य परिषद अनूपशहर द्वारा पारित शोक प्रस्ताव

हिन्दी साहित्य परिषद, अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश के सदस्यगण नें अपनी १६ दिसम्बर, १९६१ की मीटिंग में श्रद्धेय स्वर्गीय श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी को श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए निम्न शोक प्रस्ताव पास किया :—

"हिन्दी साहित्य परिषद् अनूपशहर की कार्य-कारिणी समिति के सदस्य इस सत्र की सर्वप्रथम बैठक मे सर्वप्रथम प्रस्ताव मे सर्व सम्मति से निम्नलिखित शोक प्रस्ताव स्वीकृत करते हैं.—

शिक्षा क्षेत्र मे सतत सेवी, उदार-चित्त, कर्त्तव्यनिष्ठ, त्यागमूर्ति, तपस्वी माननीय श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के अतीव दु:खद एव हृदय-द्रावक निधन पर हम शोकाकुल एवं दुखार्त सभी सदस्य हार्दिक समवेदना प्रकट करते है और परम पिता परमेश्वर से प्रगाढ प्रार्थना करते हैं कि वह श्री बाबू जी की दिवगत आत्मा को परम शान्ति तथा उनके शोक-सतप्त एव अत्यधिक विह्वल सुयोग्य पुत्रो, तथा परिवार को सहनशीलता, साहस, सन्तोष, तथा धैर्य प्रदान करें।

मान्यवर ! हमारी सहानुभूति, सहयोग तथा सेवा सदैव आपके लिएप्रस्तुत हैं।'

एल०डी०ए०वी० कालिज अनूपशहर के शिक्षक वर्ग शिक्षार्थी समुदाय द्वारा समवेदना प्रकाशन

"श्रद्धेय श्री बाबू दुर्गाप्रसाद जी के असामयिक निधन पर एल. डी. ए. वी. इण्टर कालिज का शिक्षक वर्ग एव विद्यार्थी-समुदाय अवर्णनीय एव असहनीय शोक सागर मे निमग्न है। स्वर्गीय श्री बाबू जी इस सस्था के मेरुदड थे। उनका देहावसान इस सस्था के जीवन मे एक ऐसी क्षति हुई है जिसकी पूर्ति होना प्राय. असम्भव है। यह उन्ही के त्याग तपस्या एव अथक कर्मठता का फल है कि यह संस्था आज आदर्श रूप मे शोभित है। समवेदना की इन घड़ियो मे हम सभी उनके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना एव सहानुभूति प्रकट करते हैं तथा परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि श्री बाबू जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करें।"

प्रतिलिपि सेवा मे प्रेषित—

१. श्रीमती मधुरी देवी, द्वारा श्री मिलिन्द, दिल्ली।

२. डाक्टर ओम् प्रकाश जी, एम. ए., पीएच. डी., दिल्ली।

३. श्री सत्यप्रकाश जी मिलिन्द, चीफ लेबर आफिसर, दिल्ली।
४. श्री बुद्धि प्रकाश जी, ६९, मीर दर्द रोड, नई दिल्ली।

आर्य समाज अनूपशहर द्वारा पारित शोक प्रस्ताव

आर्य समाज अनूपशहर ने दिनाक ९-७-६१ को साप्ताहिक अधिवेशन मे माननीय महाशय दुर्गा प्रसाद जी मैनेजर एल. डी. ए. वी. इण्टर कालिज अनूपशहर के निधन पर शोक तथा सहानुभूति का प्रस्ताव पास किया तथा परम पिता परमात्मा से प्राथना की कि उनकी आत्मा को सद्गति तथा शान्ति दे और उनके परिवार को धैर्य प्रदान करे।

बिडला मिल के श्रमिकों द्वारा समवेदना प्रकाशन

बिडला मिल श्रमिक शिक्षा केन्द्र की कार्य-कारिणी के सदस्य तथा मिल के चीफ वैलफेयर आफिसर श्री मिलिन्द साहब के पिता जी की आज दिनाक ७-७-६१ को अचानक मृत्यु हो गई। उस पर हम शिक्षको को तथा श्रमिको को गहरा आघात पहुचा है।

हम परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि मृत आत्मा को शान्ति प्रदान करे, और कुटुम्ब के सदस्यो के साथ गहरी सहानुभूति रखते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते है कि उन्हे सान्त्वना प्रदान करें।

श्रमिक शिक्षा केन्द्र 'ए' बैच
बिडला मिल, देहली।

समाचारपत्रों से

'हिन्दुस्तान' १२ जूलाई १९६१ :—

अनूपशहर के एक समाज सेवी का निधन

अनूपशहर। यहाँ के लोक-प्रिय समाज सेवी श्री दुर्गाप्रसाद का ७ जूलाई को दिल्ली के एक नर्सिंग होम मे देहान्त हो गया। दुर्गाप्रसाद जी की शिक्षा खुर्जा व आगरा मे हुई। कुछ समय तक उन्होंने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज देहरादून मे कार्य किया तथा अपना शेष जीवन अनूपशहर मे अधिकतर समाज सेवा व शिक्षा प्रसार

मे लगाया । उन्होने अपने पिता की स्मृति में लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज स्थापित किया तथा अपने भाई से गोविन्दराम दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कन्या उच्चतर माध्यमिक शिक्षा विद्यालय स्थापित करवाया । वे कई वर्षो तक स्थानीय आर्यसमाज के प्रधान तथा नगर-पालिका के अध्यक्ष भी रहे ।

मृत्यु के समय उनकी अवस्था ६८ वर्ष की थी । यहाँ की जनता ने ७ जूलाई को नाज मण्डी और ९ जूलाई को समस्त शहर की दुकानें बन्द करके उनके प्रति अपने शोक का प्रदर्शन किया । यहाँ उनके स्मारक के रूप मे दुर्गाप्रसाद पुस्तकालय बनाने का तय पाया है । स्थानीय नागरिको ने वहाँ की एक मुख्य सड़क का नाम 'दुर्गाप्रसाद मार्ग' रखा है ।

'नवभारत टाइम्स' दिल्ली मे १२ जूलाई १९६१ को प्रकाशित :—

शिक्षा सेवक का निधन*

(हमारे नगरप्रतिनिधि द्वारा)

दिल्ली मगलवार। दिल्ली की कई सामाजिक सस्थाओ ने शोक सभा करके स्व० दुर्गाप्रसाद के निधन पर शोक प्रगट किया ।

हाल मे ही स्व० दुर्गाप्रसाद का निधन दिल्ली के अस्पताल मे हो गया । उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलो मे शिक्षा क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया ।

अनूपशहर मे उनके निधन पर अनाज मण्डी बन्द रही और उनकी स्मृति मे एक पुस्तकालय स्थापित करने का निश्चय किया गया ।

उत्तर प्रदेश सरकार, को समय-समय उन्होने शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ प्रस्तुत करके सहयोग दिया था । अपने प्रयत्न से ही छात्रो तथा छात्राओ के लिये अलग-अलग कालिज अनूपशहर तथा अन्य स्थानो पर खुलवायें थे ।

'अमर भारत' (साप्ताहिक), दिल्ली, १५ व २२ जूलाई १९६१ :—

अनूपशहर, उत्तर प्रदेश निवासी श्री दुर्गाप्रसाद जी का ७ जूलाई, १९६१ को प्रात काल ८ बज कर ४० मिनट पर दिल्ली के एक नर्सिग होम मे निधन हो गया ।

श्री दुर्गाप्रसाद जी की शिक्षा खुर्जा व आगरा मे हुई । कुछ समय तक उन्होने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज, देहरादून मे कार्य किया । उन्होने अपना समस्त जीवन

---

*इसी आशय का एक लेख 'शिक्षा, सुधा धनौरा (मुरादाबाद) के अगस्त १९६१ के अङ्क मे प्रकाशित हुआ ।

अनूपशहर मे समाज सेवा कार्य व शिक्षा प्रसार मे लगा दिया । अपने पिता जी की स्मृति मे उन्होने लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज स्थापित किया । अपने भाई से उन्होने कन्याओ के लिये गोविन्दराम दयानन्द ऐंग्लो वैदिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्थापित कराया । इन दोनो सस्थाओ की सेवा उन्होने तन-मन-धन लगाकर की । वे कई वर्षों तक स्थानीय आर्य समाज के प्रधान तथा नगर पालिका के अध्यक्ष भी रहे । श्री दुर्गाप्रसाद जी अपने उदार विचारो और दृढ सकल्प के लिए प्रसिद्ध थे । कठिनाइयो से लडना तो उनके जीवन का ध्येय ही वन गया था ।

शिक्षा-सुधार की अनेक योजनाएँ उन्होने उत्तर प्रदेश सरकार के पास भेजी । जिनसे वहाँ के शिक्षा विभाग ने बहुत लाभ उठाया । पदलोलुपता तो उन्हे छूकर भी नही गई थी । कई बार आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने का प्रस्ताव हुआ जिसे उन्होने बडी नम्रता से अस्वीकार किया ।

मृत्यु के समय श्री दुर्गाप्रसाद जी की अवस्था ६८ वर्ष थी । उनकी निस्वार्थ सेवाएँ भुलाई नही जा सकती । अनूपशहर की जनता ने ७ जूलाई को अनाज मण्डी वन्द करके और ६ जूलाई को समस्त शहर की दूकाने बन्द करके अपने शोक का प्रदर्शन किया ।

उनकी अस्थियो का प्रभावशाली जुलूस निकाल कर उनके स्मारक के रूप मे दुर्गाप्रसाद पुस्तकालय बनाने का निश्चय करके और एक मुख्य सडक का नाम, 'दुर्गाप्रसाद मार्ग' रखकर उनकी सेवाओ का मान किया । ईश्वर दिवगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे । और उनके परिवार के व्यक्तियो को इस महान् दुख को सहन करने की शक्ति दे ।

'हिन्द समाचार,' जालन्धर, (१४-७-६१)

श्री दुर्गाप्रसाद का स्वर्गवास

यहाँ के डिस्ट्रिक्ट पब्लिक रिलेशन्स आफिसर श्री कान्ति चन्द्र सेन के ससुर श्री दुर्गाप्रसाद ६८ वर्ष की उमर मे मामूली अलालत के वाद स्वर्गवासी हो गये । आप का देहली के एक नर्सिंग होम मे आपरेशन हुआ था । आप ने अनूपशहर यू.पी. मे दो कालिज कायम किये थे और मरते दम तक आप इन इदारो की सेवा करते रहे आप की रस्म तेरहवी १९ जुलाई को विड़ला काटन मिल्स, देहली मे होगी ।

'प्रभात' मे (१५-७-६१)

पटियाला—१४ जूलाई । श्री कान्ति चन्द्र सेन डिस्ट्रिक्ट पब्लिक रिलेशन्स

आफिसर, पटियाला के ससुर श्री दुर्गाप्रसाद जी ६८ साल की उम्र गुजारने के बाद ७ जूलाई को नई देहली के नर्सिंग होम मे इन्तकाल फर्मा गये हैं । आपने अपने वालिद मरहूम की याद में दो कालिजो की बुनियाद अनूपशहर जिला बुलन्दशहर मे डाली थी । यह दोनो कालिज बडी कामयाबी के साथ चल रहे हैं । इन कालिजो मे से एक कालिज लडकियो का और एक लडको का है । आपकी रस्म क्रिया १६ जुलाई शाम के ६ बजे बिडला काटन मिल्स, सबजी मण्डी, देहली मे अदा की जायेगी ।

'मिलाप', ११ जुलाई १६६१

श्री कान्ति चन्द्र सेन को सदमा

७ जूलाई को देहली के एक नर्सिंग होम मे श्री कान्तिचन्द्र सेन के ससुर लाला दुर्गाप्रसाद जी ६८ साल की उम्र मे स्वर्गवासी हो गये । आप एक बहुत बड़े माहिरे तालीम और सोशल रिफार्मर थे । देहरादून के कालिज की प्रोफेसरी से रिटायर होने के बाद अनूपशहर जिला बुलन्दशहर मे रिहायश पजीर हुए जहाँ अपने पिता की यादगार मे एक बहुत बडा कालिज जारी करवाया इसके अलावा लडकियो के लिए भी एक कालिज जारी करवाया जिनकी देखभाल अपनी निगरानी में करते थे । मरहूम अपने पीछे तीन लडके और दो लडकियो के अलावा दोस्तो का एक बहुत वसी हल्का छोड़ गये । इदारा मिलाप श्री और श्रीमती सेन के इस गम में बराबर का शरीक है ।

श्री दुर्गाप्रसाद लायक, महनती और गरीब-नवाज होने की वजह से तकरीबन सारे हल्को मे सत्कार की निगाह से देखे जाते थे । आपकी जूबान मे इतना मीठापन था कि आम गुफ्तगू करते वक्त बेगानो को अपना बनने पर मजबूर कर देते थे आपकी बहुत सराहना की जाती है कि आप एक नेक आदमी थे ।

Indian Express, New Delhi

MR Durga Prasad a prominent citizen of Anupshahr, U. P. died in Delhi today He was President of the Anupshar Arya Samaj and Chairman of Municipal Board for a number of years. He devoted most of his life to the cause of education.

He is survived by three sons, Dr. Om Prakash, S. Milind and B.P. Goyal.

Delhi Times dated 16. 8. 61.

Eminent U.P. Educationalist Passes Away

Durga Prasad 68, the founder Manager of L.D.A V. Inter College, Anupshahr, U. P , died in a Delhi nursing home on July 7.

Educated at Khurja and Agra, he served the D A V College Dehradun, for a short period after which he settled down in his native town Anupshahr dedicating his life to the service of the people.

Included among his many achievements are the founding of the L D A V Inter. College in the memory of his father and a girls' Higher Secondary School Besides being the Chairman of the Municipal Board for a number of years and also the President of the Local Arya Samaj, Durga Prasad was well known for his high ideals in life.

His many educational reform schemes submitted to the U. P Government were highly appreciated by the authorities

The citizens of Anupshahr closed their business on July 9 as mark of their love and gratitude for the deceased and took a decision of building a public library and renaming an important road after him

He is survived by three sons and two daughters

परिशिष्ट १

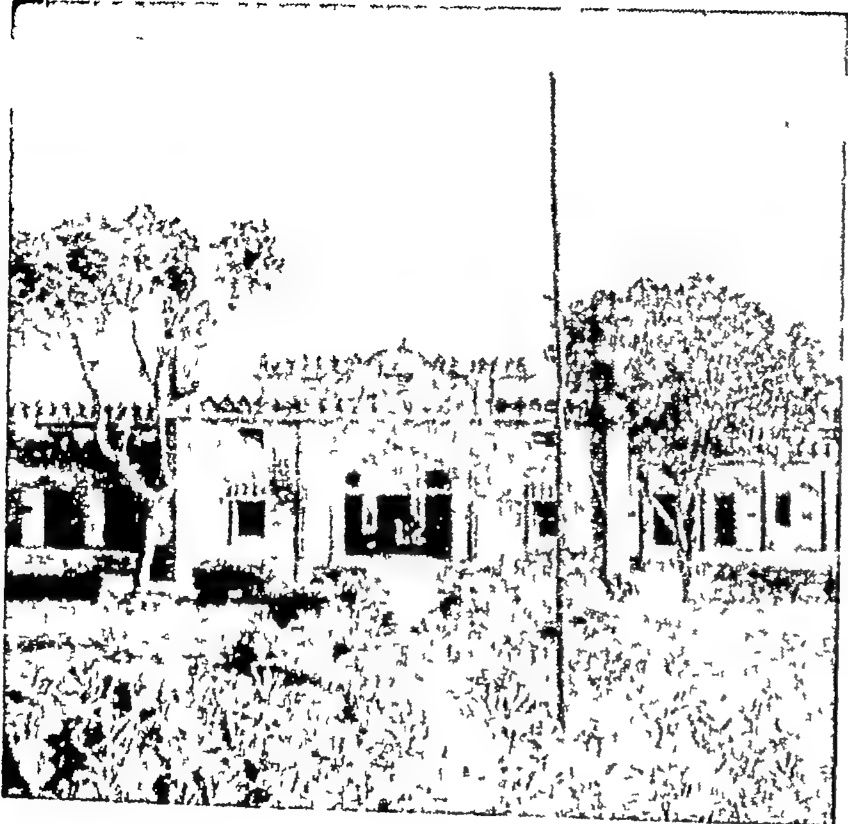
संक्षिप्त इतिहास

लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक इण्टर कालिज अनूपशहर

स्वर्गीय लाला लक्ष्मणप्रसाद जी रेल विभाग मे माल के बडे बाबू थे। उनका स्वर्गवास ६३ वर्ष की अवस्था मे १८ फरवरी १९१५ ई. को हुआ। अपने जीवन मे सचित अपार धन राशि को अपनी सन्तान मे बाँटने का विचार स्वाभाविक था। बडे पुत्र के देहावसान के बाद उन्होने अपनी मृत्युशय्या पर अपनी सम्पत्ति को चार भागों मे बाँटा। विधवा पुत्रवधू और अपनी धर्मपत्नी को यथेष्ट भाग दे पूज्य लाला जी कुछ असमजस मे पड़ गये परन्तु दुर्गाप्रसाद जी ने यह कर कि मुझे आपकी इस धनराशि मे से कौडी भी नही चाहिए आप इसे सहर्ष विद्या-दान मे लगादें, उन्हे असमजस मे निकाल दिया। लाला जी ने कुछ भाग दुर्गाप्रसाद जी को देकर शेष ६२५००) की सम्पत्ति अनूपशहर मे एक शिक्षण सस्था स्थापित करने के लिए दान मे दे दी। इसका बहुत कुछ श्रेय दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज, देहरादून के प्रिंसिपल लाला लक्ष्मणप्रसाद जी को है जो श्री दुर्गाप्रसाद जी के गुरू रह चुके थे। इस प्रकार अनूपशहर मे वर्तमान लक्ष्मणप्रसाद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज का सूत्रपात हुआ।

अनूपशहर में अरुण चन्द्र नामक एक मिडिल स्कूल चल रहा था। धनाभाव के कारण वह अपने दिन गिनता था। उसी के स्थान पर यह विद्यालय स्थापित हुआ था। इसका कार्य नोटीफाइड एरिया अनूपशहर की पक्की सराय को २५ रु० मासिक किराये पर लेकर प्रारम्भ किया गया। श्री धर्मदेव जी विद्यार्थी ऐंग्लो-वैदिक स्कूल के पहले प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। सरल जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का आदर्श था। उस समय अध्यापको या विद्यार्थियो मे से किसी को भी व्यर्थ की बात चीत के लिए लेश मात्र भी समय न था। श्रीयुत विद्यार्थी जी का शिक्षण-काल नियत्रण के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आप नियम-पालन तथा सत्य भाषण पर बड़ा जोर देते थे। इसलिए अध्यापक और विद्यार्थी सभी उनके विरुद्ध हो गये।

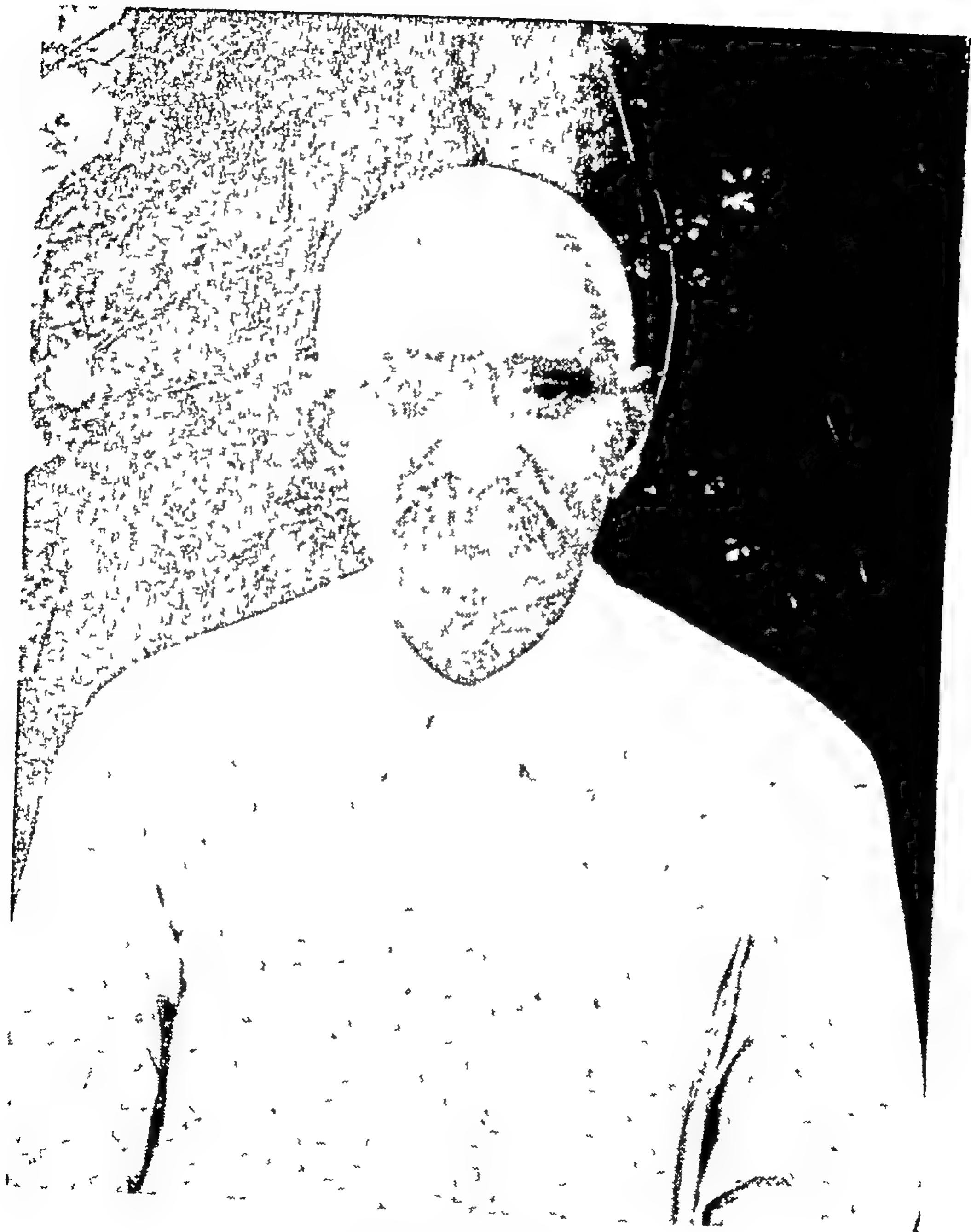
श्री दुर्गा प्रसाद जी इस समय प्रिंसिपल लाला लक्ष्मणप्रसाद जी के पास दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज देहरादून मे अध्यापन कार्य करते थे। अपने पिता जी द्वारा स्थापित अनूपशहर की शिक्षण सस्था की ऐसी परिस्थिति देखकर उन्होने प्रिंसिपल महोदय से अनूपशहर आने की अनुमति प्राप्त की।



बाबू जी द्वारा संस्थापित
लक्ष्मणप्रसाद डी० ए० वी० कालिज



बाबू जी की भाभी जी श्रीमती मथुरी देवी जी



भूतपूर्व प्रिंसिपल

स्व० श्री होती लाल जी व्रती

इधर श्री विद्यार्थी जी दु साध्य रोग के चगुल मे फस गये इसलिए श्री दुर्गाप्रसाद जी को प्रबन्ध कार्य के साथ शिक्षण कार्य भी अधिकतर स्वय ही करना पडा। इस वर्ष के हाई स्कूल परीक्षा के विद्यार्थियो की तैयारी भी श्री दुर्गाप्रसाद जी ने कराई।

२४ दिसम्बर १९१७ को इस सस्था के प्रधानाध्यापक स्व० श्री होतीलाल जी व्रती नियुक्त हुए। उनके नेतृत्व मे इस सस्था की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हुई। सन् १९१८ ई मे हाई स्कूल परीक्षा मे ७ विद्यार्थी सम्मिलित हुए। परन्तु कुछ दुष्टो ने इसी समय स्कूल के सामान मे आग लगा दी। जिससे स्कूल की बहुत हानि हुई। इस अग्निकाण्ड के पश्चात् श्री दुर्गाप्रसाद जी ने सस्था के निजी भवन बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। अनूपशहर के जमीदार श्री अरुणचन्द्र जी ने ३०० बीघा ज़मीन विद्यालय को दान मे दी। एक प्रबन्धकारिणी समिति का निर्माण हुआ जिसमे ३० जीवन सदस्य रखे गये। इस समिति के सभापति प्रिंसिपल महोदय श्री लक्ष्मणप्रसाद जी थे। जनता से धन एकत्रित करके श्री दुर्गाप्रसाद जी ने शीघ्र ही शान्तिभवन और सत्यभवन नाम के दो छात्रावासो का निर्माण कराया। इसके उपरान्त श्री दुर्गाप्रसाद जी की माता श्रीमती हरिदेवी जी ने एक अतिथिशाला तथा सीताराम जी अहार निवासी ने भोजनभवन बनवाये। इसके साथ ही अन्य दानियो की कृपा से छात्रावास के निरीक्षक के रहने का भवन, कुआँ, शौचालय आदि भी बनवाये गये।

छात्रावास के निर्माण होने के पश्चात् समस्त अध्यापन-कार्य इसी मे होने लगा। इसके बाद विद्यालय के भवन के लिये सरकारी अनुदान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया गया। बडा प्रयत्न करने पर विद्यालय के दोनो पार्श्वों के लिए कई किस्तो मे ५५०००) सरकार से प्राप्त हुए। इसके पश्चात् बीच का बडा कमरा बनवाया गया। यह सब भवन जिसके सौन्दर्य की सभी सरकारी और गैर सरकारी प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है श्री दुर्गाप्रसाद जी ने अपने निरीक्षण मे बनवाया। बडे कमरे के बनवाने के लिए स्वर्गीय श्री भोलादत्त जी ने एक पुष्कल धनराशि दी।

श्री दुर्गाप्रसाद जी की धर्म-पत्नी की अकाल मृत्यु जूलाई १९३३ मे हुई। इस महान् शोक के उपरान्त भी वे इस सस्था की सेवा मे पूर्ववत् लगे रहे। उनके प्रयत्न से यह सस्था १९३७ ई मे हाई-स्कूल परीक्षा का केन्द्र भी बन गई। परन्तु श्री दुर्गाप्रसाद जी इस सस्था को उत्तर प्रदेश का एक हाई स्कूल बनाकर ही सतुष्ट न थे। वे इसे एक श्रेष्ठ इटरमीजिएट कालिज बनाना चाहते थे, और सन् १९४० के बाद उन्होने अपनी सारी शक्ति इस कार्य मे लगा दी। उनके प्रयत्न से

सन् १९४२ मे इस सस्था को इन्टरमीजिएट आर्ट्स मे सरकार से मान्यता प्राप्त हो गई परन्तु देश के औद्योगिक विकास को देखकर विज्ञान की शिक्षा विद्यार्थियो को देना आवश्यक था। इस लिए श्री दुर्गाप्रसाद जी ने श्री नवलकिशोर जी भरतिया तथा श्री खेमराज जी से विज्ञान-सामग्री के लिए विशेष आर्थिक सहायता प्राप्त की और सन् १९४५ मे इस संस्थाको इण्टरमीजियट मे भौतिक और रसायन शास्त्र का शिक्षण करने की अनुमति मिल गई और इसके तीन वर्ष पश्चात् सन् १९४८ मे जीव-विज्ञान पढाने का भी प्रबन्ध हो गया। इसके लिए सामग्री जुटाने मे हमे श्री प्रभाकर श्रीलाल जी याज्ञिक से ८५००) की विशेष सहायता मिली जिसके लिए प्रबन्धक उनके आभारी हैं।

यह सब हो जाने पर भी श्री दुर्गाप्रसाद जी सस्था की प्रगति से सन्तुष्ट न हुए। वे सस्था के प्रबन्ध का कार्य किसी पूर्णतया प्रशिक्षित व्यक्ति के हाथो मे छोड देना चाहते थे इस लिए उन्होने जनवरी १९४७ मे अपने बड़े पुत्र ओम्प्रकाश का देहली से, जहाँ वे एक हायरसैकेण्ड्री स्कूल मे अध्यापक थे, त्यागपत्र देकर अनूपशहर बुला लिया। उन्होने १९४७ से १९५२ तक सस्था के प्रबन्ध-कार्य मे अपने पिताजी को पूर्ण सहायता दी। इस बीच मे श्री होतीलाल जी व्रती प्रिंसिपल महोदय ने १९४९ ई. मे अवकाश प्राप्त किया और १९४९ मे श्री विक्रम सिह जी एम. ए. डिप. एड. की नियुक्ति हुई। ये इगलैण्ड से अध्यापन मे विशेष उपाधि प्राप्त करके इस समय बलवन्त राजपूत कालिज के अध्यापको के प्रशिक्षण विभाग के अध्यक्ष थे। इनके कार्यकाल मे सस्था ने अभूतपूर्व उन्नति की है। सन् १९४९ ई. मे छात्रो की संख्या ३९५ थी और अध्यापको की १९ और १९६२ ई. मे छात्र संख्या ८२० और अध्यापको की संख्या २८ हो गई। सस्था का व्यय १९४९ ई. मे ४२,०७२ रु० था और १९६२ ई मे ७७,०४५ रु०। परन्तु सरकारी अनुदान मे उतनी वृद्धि नही हुई जितनी कि इस सस्था की आवश्यकता थी। १९४९ ई. मे सरकारी अनुदान ११४६० रु० था और १९६२ ई मे २३९६४ रु०। इसी लिये अध्यापको का नया वेतन-क्रम लागू होने के पश्चात् १९५९-६० ई. से सस्था की आर्थिक दशा गम्भीर होती चली गई।

सस्था के भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र और जीवविज्ञान मे मान्यता प्राप्त कर लेने पर भी श्री दुर्गाप्रसाद जी सतुष्ट न हुए। उन्हे सस्था में विज्ञान-भवन की कमी बहुत खटकती थी। इस लिए सन् १९५४ मे उन्होने इस सस्था के भूतपूर्व छात्रो से इस निमित्त आर्थिक सहायता करने की एक अपील की। इस कार्य के लिए कलकत्ते के प्रतिष्ठित धनी सर्व श्री बलदेव-राम बिहारी लाल जी ने ५००१) दान दिये और सस्था के पुराने छात्रो ने लगभग २०,०००) की धनराशि इस निमित्त

दान दी। सरकार से भी इस कार्य के लिये १२,०००) का विशेष अनुदान मिला। जून सन् १९६१ ई. मे श्री दुर्गा प्रसाद जी इसी भवन को पूरा कराने मे लगे हुए थे कि सहसा २५ जून १९६१ को वीमार हो गये और ७ जूलाई को उनका स्वर्गवास हो गया। उनके अन्तिम शब्द थे' कालिज का काम भी अधूरा रह गया'।

सस्था के पास इस समय कालिज, छात्रावास आदि की लगभग २ लाख रुपये की इमारत है। इसके अतिरिक्त लगभग ६०००) की लागत का विज्ञान-भवन है। खेल के मैदान का मूल्य लगभग एक हजार रु० हैं। और कृषि फार्म का लगभग पांच हजार रु० इसके अतिरिक्त आठ हजार रु० से अधिक की मेज कुर्सिया हैं। पूँजी खाते मे २६,०००) है जो पजाब नैशनल बेक और सरकारी बाण्डो मे लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त ५०००) सुरक्षित कोष मे है।

सस्था की आर्थिक स्थिति १९५९-६० से विशेष गम्भीर हो गई। मार्च १९६१ ई. मे सस्था के आय व्यय के हिसाब मे ६३००) का घाटा रहा। इस घाटे को पूरा करने के लिए विशेष अनुदान प्राप्त करने के लिए श्री दुर्गाप्रसाद जी और श्री भगवतीप्रसाद जी गर्ग जनवरी ६१ मे इलाहावाद भी गये किन्तु सरकार से कोई सहायता न मिल सकी।

अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर श्री दुर्गाप्रसाद जी ने अपने वडे पुत्र डा. ओम्प्रकाश का भी जो इस समय देहली विश्वविद्यालय के किरोडीमल कालिज मे इतिहास के प्राध्यापक हैं सन् १९५६ मे सस्था का प्रवन्धक निर्वाचित करा दिया। १९६० मे श्री भगवतीप्रसाद जी गर्ग सहायक-प्रवन्धक और श्री प्रेमशकर जी मेहता कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए। ये दोनो व्यक्ति श्री दुर्गाप्रसाद जी के स्वर्गवास के पश्चात् वडी तन्मयता से सस्था का प्रवन्ध चला रहे हैं। श्री भगवती प्रसाद जी के विशेष प्रयत्न से सन् १९६१-६२ ई० मे सरकारी अनुदान मे ४२७२ रु० की वृद्धि हो गई। इसका श्रेय विशेष रूप से उन्ही को है।

श्री दुर्गा प्रसाद जी की पुण्य तिथि ७ जूलाई १९६२ को उनकी भावज श्री मथुरी देवी जी ने अध्यापको के लिये एक अलग कमरा वनवाने के लिये ५ हजार का दान दिया।

इस समय सस्था में दो आवश्यकताएँ प्रमुख हैं एक तो विज्ञान भवन मे गैस प्लाण्ट और पानी के नल लगने की है और दूसरे श्री दुर्गाप्रसाद जी के स्मारक के रूप मे एक पुस्तकालय भवन वनाने की। इन दोनो योजनाओ को सफल वनाने के लिये सस्था की प्रवन्ध-समिति के प्रधान श्री प्रभाकर जी याज्ञिक पूर्ण प्रयत्न कर कर रहे हैं। आशा है जनता के सहयोग से यह योजनाएँ पूरी हो जायेंगी और सन् १९६१-६२ मे घाटे की पूर्ति भी हो जायेगी।

परिशिष्ट २

संस्थाओं के विषय में सम्मतियां

हिन्दी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट आलोचक, आचार्य प्रवर बाबू गुलाबराय, एम.ए.डी.लिट. के १७ २. १९५२ के निरीक्षण नोट से :—

कालिज का भवन इतना अच्छा है कि वह किसी अच्छे शहर मे गौरव का विषय हो सकता है । अध्यापन कक्ष सुव्यवस्थित और हवादार हैं । कुछ मे बिजली के पखो का भी प्रबन्ध है । यहाँ का वातावरण बडा शान्त है और बड़े शहरो के कोलाहल और फिजूल खर्चियो से मुक्त है ।

श्री दुर्गाप्रसाद जी बड़ी लगन के साथ अपने पूज्य पिता जी के कार्य को अग्रसर कर रहे हैं । सौभाग्य से उनको एक अच्छे अनुभवी प्रिंसिपल और कई अध्यापक मिले हुए है । साइन्स के अध्यापन कक्ष प्रयोगसामग्री से सम्पन्न और सुसज्जित हैं । ड्राइग की क्लास मे विद्यार्थियो के हाथ की तस्वीरे उनकी सुरुचि और हस्तकौशल की परिचायक है । अब व्यवस्थापक महोदय विज्ञान का पूरा ब्लाक नये ढ ग से बनवा रहे हैं । उसके बन जाने पर विज्ञान का अध्यापन और भी अच्छा हो जायगा ।........ जो कुछ कार्य हो रहा है बडी लगन के साथ हो रहा है । उसके लिए व्यवस्थापक महोदय तथा प्रिंसिपिल महोदय को हार्दिक बधाई देता हूँ ।

सूचना मंत्री
उत्तर प्रदेश

लखनऊ
२४. ११. १९६२

एल डी. ए. वी. इन्टर कालिज अनूपशहर को देखने का मुझे सुअवसर मिला । यह स्कूल स्व. बा. दुर्गाप्रसाद जी के जीवन का एक स्मारक है, जिन्होने शिक्षा प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया । यह कालिज जिले की सर्व प्रथम शिक्षण सस्थाओ मे से है, जिसने अनूपशहर क्षेत्र मे शिक्षा के क्षेत्र मे बडा सराहनीय कार्य किया है । इस विद्यालय के भूतपूर्व विद्यार्थियो के सहयोग से विज्ञान कक्ष के निर्माण से बहुत वडे अभाव की पूर्ति हुई है ।

मैं इस सस्था की उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूँ ।

ह० बनारसी दास

Extract from the visit note of Sri Kushal Pal Singh, Minister for Education, U. P. : —

It was a great pleasure to me to pay a visit to the Anglo-Vedic High School, Anupshahr I never knew that a small out of the way town like Anupshahr possessed such a fine institution with a remarkable record of steady progress behind it ... . The institution has a bright future before it

Sd/Kushal Pal Singh,
Raja Bahadur,
Minister for Education, U P.

Camp Anupshahr,
April 8, 1929.

Inspection Notes from Collectors —

We are proud to possess the A. V High School, Anupshahr The boys live a fresh and open-air-life and thrive. B Durga Prasad, the Manager, lives for it Not content with looking to the administrative work, he actually takes classes His example is most commendable.

Oct. 10, 1931.

(Sd) K Prasad, I C S.
District Magistrate, Bulandshahr.

I paid a visit to the A V. High School, Anupshahr yesterday accompanied by B Durga Prasad, the Manager and B. Hoti Lal the Head Master I was pleasantly surprised to find the school housed in such an excellent building and to find that it is so excellently equipped. The class rooms are well constructed, clean and spacious and there is ample room for recreation There is excellent accomodation for boarders and I consider Anupshahr fortunate in having the school within its limits. It is obvious that the Manager pays considerable attention to the working of the school and the Head Master appears to have a well trained and capable staff I am glad to see that a course in carpentry is being incluaed in syllabus and that full attention is given to Drawing, Natural Science and Music

I wish the institution every success

(Sd) Collector
Bulandshahr

Camp Makhena,
December 19, 1934.

Extract from Visitors Remarks :—

I have soldem, if ever, seen such good class-rooms in India

(Sd) W. Christic, I C S

Jan 21, 1938. District Magistrate, Bulandshahr.

Extract from letter dated Oct 1, 1954 from Shri Parmanand. Secretary, University Gtants Committee U. P., Lucknow .—

My dear Shri Durga Prasad Ji,

I trust the colege is flourshing and I am confident it has a bright future. It is fortunate, as few colleges are to have such an enlightened and zealous guardian as your self.

With kindest regards,

Gopy of the letter No. 345 VC 55 dated 5/6 July 1959 from Shri B. N. Jha Vice-Chancellor, Allahabad University, Ex. Director of Education :—

My dear Shri Durga Prasad Ji,

Kindly refer to your letter of 28th As I was out of station. I could not reply in time. I am happy to find that you have completed full forty years of service in laying the foundation of a great institution and seeing it grow I have no doubt in the hands of your able son, it will grow more and more. Shri Om Prakash has inherited the great qualities of his father and I have no doubt that he will be able to make the job a greater success.

Copy of Inspection Note dated August 23, 1959 by Shri S N. Mehrotra, Deputy Director, Ist Region, Meerut —

It was a very great pleasure indeed to visit this college. Its building, equipment, discipline and tone, management and staffs all are really excellent, and should act as a model to our Higher Secondary Schools ahe new Science Block is a great acquisition and would, I hope, lead on to higher classes in course of time. This institution has been doing a great service in the interior of Bulandshahr district. I wish it all success in all its multifarious activities.

Extract from the Panel Inspection Report dated 23rd Dec. 1959 —

Of the many insititutions inspected by us during the last several years, the inspection of no one so far has given us so much pleasure as this institution has done *It is one of the best Intermediate colleges* of the state and the management, the principal, and the members of the staff deserve our hearty congratulations But for some defects which are found mostly due to the paucity of funds we would have very gladly labelled it a Public School The management the Principal and the teacher work in a harmonious atmosphere of team work and the rapid strides which the institution has made are due to this factor. The discipline of the institution is excellent The collage has a grand building which a few privately managed institutions have got in our state, and the prinscipal has taken great pains to maintain it well. The furniture and equipment of the college is also satisfactory On an inspection of the classes, we found that generally the teachers followed the training college methods including those who were not trained, Thi has been due to the fact that the Principal has taken great pains, he himself having been trained in the United Kingdom, to impress upon the teachers the necessity of following correct training college method The results of the institution at the Board's Examination have been very satisfactory and many students have been getting first division and distinction every year

Extract from the visit note of Shri A. R. Pachauri, Deputy Director of Education, 1st Region, Meerut —

The college possesses one of the best buildings which is strongly built and well planned, including the new science block which is quite commodiouns The college has also got a hostel

The staff is adequate and trained including a trained Libarian .. . The College devotes attention to extra curricular activities and has distinguished itself in the District rallies and competitions and also in Regional competitions.

The tone and discipline of the college is quite satisfactory The institution has earned a name for itself and every effort is being

made to maintain its present standard . .. .. The institution is progressive and meets the needs of a particularly backward area.

1—Region, Meerut, (Sd.) A R. Pachauri
Dated 18 2. 1952 Deputy Director of Education

Extract from the Inspectiou note dated Janaury 11, 1959 by Km. I. D.Bonifacius, Regional Inspectress of Girls School, Ist Region, Meerut on the Inspection of Govindram D.A.V. Kanya Vidyalaya, Anupshahr :—

Permission for opening class IX was granted from July 1958. The school is recognised in Literary Group for Hindi, English, Home Science, Civics, History, Art and Music. The school has made very quick progress It was started in 1957.

The enrolment in the Junior section is low, but since the school is just a year old, I presume the enrolment is bound to go up, as the school has a good start

I went round each class room and saw the girls at work. It was a pleasure to see the School House neatly arranged and clean. was glad to see some flower pots in the surrounding

The authorities are keenly interested in developing the school and for building traditions of good work and industry. Km Pushpa Sharma has given a good start My good wishes are with the school.

Copy of D. O. letter dated Nov. 26, 1959 from Km. C Phillips Regional Inspectess of Girls School, III Region, Allahabad :—

Dear Shri Durga Prasad Ji,

Thank you for your letter of October 8, 1959 informing me that your Govindram Girls Higher Secondary School has come on the permanent grat-in-aid list I am happy to learn this and hope that the School will continne to grow and render valuable services to the Anupshahr community.

परिशिष्ट ३

एल०डी०ए०वी० इन्टर कालिज अनूपशहर के विज्ञान विभाग सम्बन्धी दानदाताओं की सूची*

		रुपये
१. श्री प्रभाकर श्रीलाल जी याज्ञिक, रईस, अनूपशहर	...	८५००
२. सर्वश्री वलदेव राम विहारी लाल जी, बकर्स, कलकत्ता	...	५००१
३. श्री नवल किशोर जी भरतिया, कानपुर	...	५०००
४. श्री प्रधान भट्टा समिति, बुलन्दशहर	...	५०००
५. श्रीमती रामकली देवी जी, धर्मपत्नी श्री खेमराज जी कैमिस्ट, कानपुर	...	२६३१
६. सर्वश्री लक्ष्मी नारायन ब्रजमोहन जी रूइया, बम्बई	...	११०१
७. श्री रघुवर दयाल जी ठेकेदार अनूपशहर	...	१००१
८. श्री सत्यव्रत जी शर्मा, इजीनियर, अनूपशहर	...	१०००
९. सर्वश्री दीनदयाल मुरारीलाल जी कोटद्वार	..	१०००
१०. श्री भगवती प्रसाद जी गर्ग	...	६०१
११. श्री खेमचन्द जी मारीवाल	...	५०१
१२ सर्वश्री केशवशरण प्रकाशचन्द जी (श्री राजेन्द्रप्रसाद गोयल द्वारा)	...	५०१
१३. सर्व श्री रतनलाल श्रोम् प्रकाश जी रईस फीरोजाबाद	...	५००
१४. श्रीमती सुखदेवी जी, धर्मपत्नी श्री होती लाल जी व्रती, प्रिंसिपल, अनूपशहर	...	५००
१५ श्री शीलचन्द जी पौरारेवाले	..	५००
१६. श्री रामेश्वरदयाल जी ,,	...	५००
१७. श्री श्यामलाल जी बागवाले	...	४५०
१८. सर्वश्री हुकमचन्द सेवकचन्द जी अनूपशहर	...	४००
१९. सर्व श्री शिव सहाय छोटे लाल जी, रईस, आगरा	...	३२५
२०. श्रीभगवती प्रसाद जी गुप्त, बम्बई	...	२५१
२१. श्री त्रिलोक चन्द्र जी' ड्राइग मास्टर, अहमदाबाद	...	२५१

---

*सभव है इस सूची मे कुछ दान दाताओ के नाम भूल से छूट गये हो। प्रबन्धक इसके लिए क्षमा प्रार्थी है। सूचना आने पर भूल सुधार कर दिया जायगा।

२२. श्री के. ईश्वरी प्रसाद जी' रईस, बंगलोर	...	२५०
२३. श्री गुलाबसिंह जी, रईस, जिरोली	...	२००
२४. श्री देवदत्त जी शर्मा मुख्तार, एम एल. ए., अनूपशहर	...	१००
२५. श्री नरेन्द्रनाथ जी गगोली, मुख्तार, अनूपशहर	...	१००
२६. श्रीप्रेम शकर जी मेहता, अनूपशहर	...	१००
२७. श्री उदय शकर जी मेहता, प्राईवेट प्रैक्टीशनर, अनूपशहर	...	१००
२८. श्री त्रिभुवन शकर जी मेहता, प्रोफैसर गवर्नमे ट ट्रेनिंग कालिज, इलाहाबाद	...	१००
२९. श्री रमेश चन्द्र जी गुप्ता, ओवरसीयर पी. डबल्यू. डी. आगरा	...	१००
३०. श्री नरेशचन्द्र जी मुदगल, प्राईवेट प्रैक्टीशनर, अनूपशहर	...	१००
३१. सर्वश्री रघुबीरसरन केसवसरन जी, आढती' अनूपशहर	...	१००
३२. सर्वश्री कन्हैयालाल मोहनलाल जी, पसारी ,,	...	१०१
३३. सर्वश्री रामचन्द्र श्याम सुन्दर जी, सर्राफ ,,	...	१००
३४. सर्वश्री श्री सुन्दर लाल प्रेमशकर जी, सर्राफ ,,	...	१००
३५ सर्वश्री रघुवीर सरन शिवचरन लाल जी. सर्राफ ,,	...	१००
३६. श्री लल्लूमल विधिचन्द जी बजाज अनूपशहर	...	१००
३७ श्री गोपी लाल जी कश्यप, मुख्तार, ,,	...	१००
३८. सर्वश्री देवीदास गगासहाय जी, पन्सारी, ,,	...	१००
३९. श्री मोतीराम जी वैश्य, अण्डर सैक्रेटरी होम डिपार्टमेट, ग्वालियर	...	१००
४०. श्री आनन्दकुमार जी बसल, एकाउन्टेण्ट, सैन्ट्रल बेंक ग्वालियर	...	१००
४१ श्री रमेशचन्द्र जी गर्ग, सिगनलर, अनूपशहर	...	१००
४२. श्री फहीमुल्ला खाँ, रजिस्ट्रेशन क्लर्क ,,	...	१००
४३. श्री हरीशकर जी गुप्त कैमिस्ट ,,	...	१००
४४. श्री पदमसिंह जी रस्तोगी, बुकसेलर ,,	...	१०१
४५. श्री प्रतापसिंह जी एम.एस.सी., ,,	...	१००
४६. श्री भगवानसरन जी सक्सेना मुजपफरनगर	...	१०१
४७. श्री एस मिलिन्द, लेवर आफीसर बिडला मिल, देहली	...	१००
४८. सर्वश्री गोपीचन्द रतनचन्द जी जैन, सर्राफ, अनूपशहर	...	१०१
४९. सर्वश्री हुकमचन्द रमेशचन्द, टिम्बर मर्चेण्ट, ,,	...	१०१

५०.	सर्वश्री लीलाधर विहारीलाल एण्ड कं०, टिम्बर मर्चेण्ट, अनूपशहर	...	१००
५१.	प्रोफेसर श्रीराम मित्तल, वाइस प्रिंसिपल, बिरला कालिज, पिलानी	...	१००
५२.	श्री धर्मदत्त जी दीक्षित, एस.आई. पुलिस, गाजियाबाद	...	१००
५३.	श्री रामशकर जी बजाज जहाँगीराबाद,	...	०००
५४.	श्री डा० अनूपलाल जी बन्सल, प्रैक्टीशनर, जहाँगीराबाद	...	१००
५५.	श्री नन्दकिशोर जी बन्सल, आइरन मर्चेण्ट, लखनऊ	...	१००
५६.	श्री गजराज सिंह जी, तहसीलदार, बिसौली	...	१००
५७.	श्री भूपसिंह जी, प्रिंसिपल, जटपुरा	...	१००
५८.	श्री चिरञ्जीलाल जी गुप्ता, इंस्पेक्टर, रुड़की विश्वविद्यालय	...	१००
५९.	श्री नौनिहालसिंह जी, सबरजिस्ट्रार, अतरौली	...	१००
६०.	श्री रघवीरसिंह जी, सर्किल इंस्पेक्टर, उन्नाव	...	१००
६१.	श्री डा० चिरजीलाल जी गर्ग, प्राइवेट प्रैक्टीशनर, अनूपशहर	...	१००
६२.	श्री प्रोफेसर प्रकाशचन्द जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय	...	१००
६३.	श्री रमेशचन्द जी मिश्रा, गार्ड, गाजियाबाद,	...	१०१
६४.	श्री दीनदयाल जी गुप्त कोटद्वार	...	१०१
६५.	श्री प्रकाशचन्द जी, अमृत बनास्पति मिल्स, गाजियाबाद	.	१००
६६.	श्री ब्रह्मदेव जी भूतपूर्व इंजीनियर	...	१००
६७.	श्री विश्वनाथ जी रावत, ट्रैफिक इन्सपैक्टर, एन. आर., मुरादाबाद	...	१००
६८.	श्री राधेश्याम जी अग्रवाल, असिस्टेन्ट इंजीनियर एन.ई.आर., गोरखपुर	...	१००
६९.	श्री रमेशचन्द जी गर्ग, सहायक इंजीनियर, अलीगढ	...	१००
७०.	श्री दामोदर लाल जी, डिवीजनल इञ्जीनियर, एन.ई. आर., गोरखपुर	...	१००
७१.	श्री देवेन्द्रनाथ जी रावत, गार्ड रेलवे, वदेल जक्शन	...	१००
७२.	श्री वृद्धि प्रकाश जी गोयल, एलैक्ट्रिक इन्सपैक्टर, देहली	...	१००
७३.	श्री केसर चन्द गर्ग, एकाउण्टैन्ट दून स्कूल, देहरादून	...	१००
७४.	श्री महेश दत्त जी पांडेय, सैकशन ओफिसर, देहली	...	१००
७५	श्री लक्ष्मी चन्द्र जी अग्रवाल, प्रिंसिपल डी. ए. वी. कालिज, बुलन्दशहर	...	१००

७६. प्रो. सुरेश चन्द्र मीतल, इन्जीनियरिंग कालिज पिलानी	...	१००
७७. श्री कन्हैयालाल जी शर्मा, प्रिंसिपल अग्रवाल मण्डी मेरठ	...	१००
७८. श्री रमेश चन्द्र जी गर्ग सुपरवाइजर कानूनगो मथुरा	...	१००
७९. श्री भोलानाथ जी क्लर्क वाई. एम. सी. ए. नई देहली	...	१००
८०. श्री धर्मपाल जी गुप्ता बम्बई	...	१०१
८१. श्री ओम्प्रकाश जी कन्ट्रैक्टर अनूपशहर	...	१००
८२. श्री ओम्प्रकाश जी देहली	...	१००
८३. श्री राममनोहर लाल जी परचूनी अनूपशहर	...	१००
८४. श्री केहर सिंह श्याम लाल जी टिम्बर मरचैन्ट अनूपशहर	...	१००
८५. श्री केसरी सिंह गंगा सहाय जी टिम्बर मरचैण्ट अनूपहर	...	१००
८६. श्री मही पाल जी गुप्ता डिप्टी कलैक्टर आगरा	...	१०१
८७. श्री बाबू राम जी अग्रवाल, आयरन मरचैण्ट लखनऊ	...	१००
८८. श्री ज्योति प्रसाद जी, पी. ए. टू अधीक्षक कारागार, लखनऊ	...	१००
८९. श्री डा० नरेन्द्र, नगायच देहली विश्वविद्यालय देहली	...	१०१
९०. श्री सूरजभान जी शर्मा, प्रिंसिपल नैशनल हायर सैकन्डरी स्कूल, खालौर	...	१००
९१. श्री हर प्रसाद जी, मुखतार डरौरा	...	१०१
९२ डा० मक्खन लाल जी शर्मा, डी.एम.सी.एच. मुरादाबाद	...	१००
९३. श्री सतीश चन्द्र जी अग्रवाल एग्जीक्यूटिव आफिसर नगर पालिका चन्दौसी	...	१००
९४. श्री छेद बिहारी लाल जी, नाइब तहसीलदार, मुरादाबाद	...	१००
९५. श्री बनवारी लाल जी पन्सारी, अनूपशहर	...	१००
९६. श्री चुन्नीलाल जी गर्ग, एसिस्टैन्ट कस्टोडियन, पीलीभीत	...	१००
९७. श्री के. जी. शाह बम्बई द्वारा श्री प्रभाकर जी याज्ञिक	...	१०१
९८. श्री छन्नू लाल जी सक्सैना, रिटायर्ड एस.एस.पी. नई देहली	...	१०१
९९. विश्वेश्वर दयाल जी, ओवरसीयर, कानपुर	...	१००
१००. श्री भगवत प्रसाद जी अग्रवाल, ओवरसीयर नहर, बिलसन्दा	...	१००
१०१. श्री डा० ब्रज वासी लाल जी, प्रो. गवर्नमैंट कालिज, थापर	...	१०१
१०२. गुम नाम द्वारा श्री प्रभाकर जी याज्ञिक	...	१०१

१०३. श्री सतीश चन्द जी मीतल, रईस, भिरावटी	...	१०१
१०४. श्री हरनाथ जी अस्थाना, एसिस्टेन्ट सैटिलमेण्ट आफिसर, लखनऊ	...	१००
१०५. डा० रघुवीर सरन गुप्ता, मैडिकल आफिसर, गगोह	...	१०१
१०६. प्रो० अम्बा दत्त जी पन्त, एन.आर.ई.सी. कालेज, खुर्जा	...	१००
१०७. सर्वश्री जगदीश राय, के. सी. टण्डन, कण्ट्रैक्टर	...	१०१
१०८. श्री मदन लाल जी शर्मा, स्टेशन मास्टर, हापुड	...	१०१
१०९. श्री दुर्गाप्रसाद जी, एसिस्टैण्ट एकाउण्टस आफिसर, देहली	...	१००
११०. श्री हेम चन्द्र जी चतुर्वेदी, प्रोविशल केन इन्सपैक्टर, लखनऊ	...	१००
१११. श्री जयनारायण जी गौड, एसिस्टेन्ट ड्राईंग मास्टर, अहमदाबाद	...	१००
११२. श्री मगल सिह जी, ग्राम खनौंदा	...	१०१
११३ श्री देवी शकर वर्मा, एसिस्टैण्ट इन्जीनियर बलरामपुर	...	१०१
११४. श्री लाडली प्रसाद जी चतुर्वेदी, ब्रोकर, कलकत्ता	...	१०१
११५. श्री लक्ष्मी नारायण जी, तौली	...	१००
११६ श्री जमुना प्रसाद जी शर्मा, डिप्टी सुपरिटेण्डेण्ट पुलिस	...	१००
११७. श्री श्रीराम जी मित्तल, वाइस प्रिंसिपल, पिलानी	...	१००
११८. श्री नन्हामल जी, अनूपशहर	...	१००
११९. श्री गगासहाय आदि, अनूपशहर	...	१०५
१२०. श्री गणेश शकर मेहता	...	१००
१२१ श्री रामगोपाल जी, दौलतपुर	...	१००
१२२. श्री जगत सिह, राजौरा	...	१००
१२३. श्री रामचन्द्र बजाज	...	१००
१२४. सर्वश्री रामलाल मनोहरलाल, ठेकेदार, अनूपशहर	...	१००
१२५. श्री गोपी चन्द्र जी, प सारी, अनूपशहर	...	१००
१२६. श्री धीरेन्द्र कुमार जी, सुपरिटेण्डेण्ट पुलिस, हरदोई	...	१००
१२७. श्री इकराम उल गनी, काजी, इन्जीनियर	...	१००
१२८. श्री रामकुमार बजाज	...	१००
१२९. श्री रघुनाथ सहाय भार्गव	...	१००
	योग	४७२८१

एल०डी०ए०वी० इंटर कालिज अनूपशहर के छात्रावास आदि के भवन-निर्माण के लिए दान देने वाले महानुभावों की सूची

			रुपये
१.	श्री मथुरी देवी जी, धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री भगवत प्रसाद जी, अनूपशहर	...	७४००
२.	लाला सीताराम जी, अहार	...	३०००
३.	श्री सेठ बालूशकर जी नागर, रईस, अनूपशहर	...	८००
४.	लाला हीरालाल जी, रईस, गंवा	...	८००
५.	लाला शिवसहाय छोटेलाल साहू, अनूपशहर	...	८००
६.	सेठ सूरजमल बाबूलाल जी, रईस, खुर्जा	...	८००
७.	रायसाहिब प. पन्नालाल जी वकील, बुलन्दशहर,	...	५००
८.	लाला गिरधारी लाल मोहन लाल, साहू, अनूपशहर	...	५००
९.	महाशय राम स्वरूप जी, रईस, अनूपशहर	...	५००
१०.	रायसाहिब लाला प्रभुदयाल जी, रईस, जहागीराबाद		५००
११.	सेठ गौरी शकर जी, रईस, खुर्जा	...	५००
१२.	लाला लक्ष्मण प्रसाद जी मैनेजर लाला दुर्गाप्रसाद जी सैक्रेटरी		५००
१३.	लाला शिवदयाल जी, बजाज, जहागीराबाद	...	५००
१४.	लाला श्योदर्शन लाल लाला विशेश्वर दयाल जी, रईस, हापुड़		५००
१५.	श्रीमती चम्पा देवी जी, धर्म पत्नी कुंवर डिगम्बरसिंह, रईस, डिबाई	...	५००
१६.	लाला सूरजमल बाबूलाल जी, रईस, खुर्जा	...	५००
१७.	चौ० रघुवीर सिह जी, रईस, तौली	...	६५०
		योग	१९२५०

विनीत श्रद्धांजलि

श्री श्रोदत्त शर्मा, शास्त्री, एम. ए., (स.हि.), एम.श्रो.एल.

जिन पुण्यश्लोक महाशय के पार्थिव शरीर के दर्शन करने का भी सौभाग्य न पा सका, उनकी गुणगरिमा के यशःसौरभ से श्राप्लावित हो मैं उनके प्रति नतमस्तक हो अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

गगा पाप शशी ताप दैन्य कल्पतरुस्तथा ।
पापं ताप दैन्य च हन्ति छात्राणां महाशय ॥

गगा केवल पाप को, चन्द्रमा गर्मी को तथा कल्पवृक्ष दीनता को ही दूर करता है, परन्तु महाशय जी छात्र-जगत् के पाप, ताप श्रौर दैन्य सभी को दूर करने वाले थे । तभी तो अन्त समय मे 'मृत्योर्माऽमृत गमय' की मूक प्रार्थना के अवसर पर भी वह 'कालिज की अपूर्णता' का ही चिन्तन करते रहे ।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पद्मजालम् ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त, हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ।

रात्रि बीतेगी, प्रातःकाल होगा, सूर्य निकलेंगे, कमल खिलेगा—इस प्रकार चिन्तन करने वाले शिक्षा-कमलिनी मे बन्द उस भ्रमर महात्मा को यमराज के क्रूर हार्थो ने हम से छीन लिया ।

अब उस दिवगत श्रात्मा के अधूरे कार्य को पूरा करते हुए ही हम मनसा अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के अधिकारी है।

श्रो३म् पूर्णमिदम्

८८-सी, तिमार पुर
दिल्ली

Regd. No. 4679/58

एल. डी. ए. वी. इंटर कालिज पत्रिका (हिन्दी-अंग्रेजी) के सम्बन्ध में वक्तव्य

१. प्रकाशक का स्थान	...	अनूपशहर (बुलन्दशहर)
२. प्रकाशन की अवधि	...	वार्षिक*
३. मुद्रक का नाम	...	श्री विक्रमसिंह
राष्ट्रीयता	...	भारतीय
पता	...	प्रधानाचार्य, एल.डी.ए.वी. इंटर कालिज अनूपशहर
४. प्रकाशक का नाम	...	श्री विक्रमसिंह
राष्ट्रीयता	...	भारतीय
पता	...	प्रधानाचार्य, एल.डी.ए.वी. इंटर कालिज अनूपशहर
५. सम्पादक का नाम	...	श्री महावीर सिंह 'माहिर'
राष्ट्रीयता	...	भारतीय
पता	...	प्राध्यापक, एल.डी.ए.वी. इण्टर कालिज अनूपशहर

६. उन व्यक्तियों के नाम पते जो इस समाचार पत्रिका के मालिक हैं और जो इस समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के भागीदार या हिस्सेदार है—

विक्रमसिंह, प्रधानाचार्य, एल. डी. ए. वी. इण्टर कालिज, अनूपशहर

मैं, विक्रमसिंह, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर विक्रमसिंह
मुद्रक प्रकाशक के हस्ताक्षर

*विशेषांक होने के कारण 'ज्योत्स्ना' का यह अंक दो वर्षों अर्थात् १९६१-६२ और १९६२-६३ का प्रकाशन है।